पहचान

मोहन राकेश

उन्नीस कहानियां

भूमिका

सन् १९६७ से १९६९ के बीच मेरी लिखी छियालीस कहानियों का प्रकाशन
ार जिल्दों में हुआ था। विचार था कि इस तरह प्रायः सभी कहानियां एक जगह
पलब्ध हो सकेंगी। परन्तु चारों जिल्दों के अलग-अलग समय पर प्रकाशित होने
 कारण बाद की जिल्दें आने तक पहले की जिल्दों के संस्करण लगभग समाप्त
ो गए जिससे उन्हें एक साथ एक सेट के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य पूरा नहीं
ुआ। क्योंकि पहले के प्रकाशित अलग-अलग संग्रह भी अब उपलब्ध नहीं थे,
सलिए बहुत-से पाठकों के पत्र आने लगे कि अमुक-अमुक कहानियों की तलाश
उन्हें कहां से करनी चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि पूरी कहानियों को एक साथ
ीन जिल्दों में प्रकाशित करने की वर्तमान योजना से इस जिज्ञासा का समाधान
ो जाएगा। जो पाठक विशेष रूप से मेरे पहले कहानी-संग्रह 'इन्सान के खंडहर'
ी कहानियां पढ़ना चाहते रहे हैं, उन्हें भी अन्यत्र कहीं उन कहानियों को नहीं
ोजना होगा। वे सब कहानियां भी (कुछ सम्पादित रूप में) इन तीन जिल्दों
ी तिरपन कहानियों में सम्मिलित कर दी गई हैं। इनके अतिरिक्त इधर की
लिखी 'क्वार्टर' तक की कहानियां भी। प्रारम्भिक रूप से कौन कहानी किस
ंग्रह में प्रकाशित हुई थी, इसका ब्यौरा एक तालिका में दे दिया गया है।

परन्तु आज के संदर्भ में जब कि कहानी-नयी कहानी की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं के स्तम्भों से आगे कई एक पुस्तकों का विषय बन चुकी है, उन भूमिकाओं की वह प्रासंगिकता नहीं रही। इसका एक अर्थ यह भी है कि एक लेखक का वास्तविक कथ्य उसकी रचना है, वास्तविक प्रासंगिकता भी उसके इसी कथ्य की होती है। शेष सब यात्रा का गुबार है जो धीरे-धीरे बठ जाता है। इसके अतिरिक्त इस विधा की सम्भावनाओं तथा इसके साथ अपनी आज की प्रयोगशीलता के सम्बन्ध को लेकर कई-एक प्रश्न मन में हैं जो मेरे आज के लेखन को निर्धारित कर रहे हैं। परन्तु वे सब एक व्यक्ति-लेखक द्वारा अपने ही लिए अपने सामने रखे गए प्रश्न हैं जिन्हें सामान्य प्रश्नों के रूप में प्रस्तावित करने का मुझे कोई आग्रह नहीं है।

अपनी कथा-यात्रा का संक्षिप्त विवरण मैंने 'मेरी प्रिय कहानियां' शीर्षक संकलन की भूमिका में दिया है जिसे वहां से देखा जा सकता है।

आर—८०२,
न्यू राजेन्द्र नगर
नई दिल्ली-६०

—मोहन राकेश

पहचान

एक ठहरा हुआ चाकू

अजीब बात थी कि खुद कमरे मे होते हुए भी बाली को कमरा खाली लग रहा था।

उसे काफी देर हो गई थी कमरे में आए—या शायद उतनी देर नहीं हुई थी जितनी कि उसे लग रही थी। वक्त उसके लिए दो तरह से बीत रहा था—जल्दी भी और आहिस्ता भी'''उसे, दरअसल, वक्त का ठीक अहसास हो नहीं रहा था।

कमरे में कुछ-एक कुरसियां थी—लकडी की। वैसी ही, जैसी सब पुलिस-स्टेशनों पर होती है। कुरसियों के बीचोबीच एक मेजनुमा तिपाई थी जो कि कुहनी ऊपर रखते ही भूलने लगती थी। आठ फुट और आठ फुट का वह कमरा इनसे पूरा घिरा था। टूटे पलस्तर की दीवारें कुरसियों से लगभग सटी हुई जान पडती थीं। शुक्र था कि कमरे में दरवाजे के अलावा एक खिड़की भी थी।

बाहर अहाते मे बार-बार चरमराते जूतों की आवाज सुनाई देती थी—यही वह सब-इन्स्पेक्टर था जो उसे कमरे के अन्दर छोड़ गया था। उस आदमी का चेहरा आंखों से दूर होते ही भूल जाता था, पर सामने आने पर फिर एकाएक याद हो आता था। कल से आज तक वह कम से कम बीस बार उसे भूल चुका था।

एक ठहरा हुआ चाकू

अजीब बात थी कि खुद कमरे में होते हुए भी वादी को कमरा खाली लग रहा था।

उसे काफी देर हो गई थी कमरे में आए—या शायद उतनी देर नहीं हुई थी जितनी कि उसे लग रही थी। वक्त उसके लिए दो तरह से बीत रहा था—जल्दी भी और आहिस्ता भी'''उसे, दरअसल, वक्त का ठीक अहसास ही नहीं रहा था।

कमरे में कुछ-एक कुरसियां थी—लकड़ी की। वैसी ही, जैसी सब पुलिस-स्टेशनों पर होती हैं। कुरसियों के बीचोबीच एक मेजनुमा तिपाई थी जो कि कुहनी ऊपर रखते ही झूलने लगती थी। आठ फुट और आठ फुट का वह कमरा इनसे पूरा घिरा था। टूटे पलस्तर की दीवारें कुरसियों से लगभग सटी हुई जान पड़ती थीं। शुक्र था कि कमरे में दरवाजे के अलावा एक खिड़की भी थी।

बाहर अहाते में बार-बार चरमराते जूतों की आवाज सुनाई देती थी—यही वह सब-इन्सपेक्टर था जो उसे कमरे के अन्दर छोड़ गया था। उस आदमी का चेहरा आंखों से दूर होते ही भूल जाता था, पर सामने आने पर फिर एकाएक याद हो आता था। कल से आज तक वह कम से कम बीस बार उसे भूल चुका था।

उसने [illegible] के लिए सिगरेट केस के [illegible], पर [illegible] [illegible] ही [illegible] हुई [illegible] हो चुके हैं, [illegible] केस के [illegible] [illegible] सिगरेट [illegible] से [illegible] था। [illegible] सोचा था कि [illegible] दूसरा सिगरेट [illegible] देगा। [illegible] सिगरेट [illegible] कि खिड़की के ठीक नीचे [illegible] [illegible] [illegible] पारान का [illegible] रहे हैं। उसके बाद फिर [illegible] वह खिड़की के पास नहीं गया।

[illegible] कमरे में वक्त काटने के लिए सिगरेट पीने के अलावा जो [illegible] किया जा सकता था, वह कर चुका था। जितनी कुरसियाँ थीं, उनमें से हर पर एक-एक बार बैठ चुका था। उनके गिर्द चहलकदमी कर चुका था। [illegible] का पलस्तर दो-एक जगह से उखाड़ चुका था। मेज़ पर एक बार पेंसिल से [illegible] जाने कितनी बार उसमें से अपना नाम लिख चुका था। एक ही काम [illegible] उसने नहीं किया था—वह था दीवार पर लगी क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर को थोड़ा तिरछा कर देना। बाहर बहाने से लगातार जूते की चरमर सुनाई दे रही होती, तो अब तक उसने यह भी कर दिया होता।

उसने अपनी नब्ज़ पर हाथ रखकर देखा कि बहुत तेज़ तो नहीं चल रही [illegible] फिर हाथ हटा लिया—कि कोई उसे ऐसा करते देख न ले।

उसे लग रहा था कि वह थक गया है और उसे नींद आ रही है। रात को ठीक से नींद नहीं आई थी। ठीक से क्या, शायद बिलकुल नहीं आई थी। [illegible] शायद नींद में भी उसे लगता रहा था कि वह जाग रहा है। उसने बहुत कोशिश की थी कि जागने की बात भूलकर किसी तरह सो सके—पर इस कोशिश में [illegible] पूरी रात निकल गई थी।

उसने जेब से पेंसिल निकाल ली और बायें हाथ पर अपना नाम लिखने लगा—बासी, बासी, बासी। सुभाष, सुभाष, सुभाष।

आज सुबह यह नाम प्रायः सभी अखबारों में छपा था। रोज़ के अखबार के अलावा उसने तीन-चार अखबार और खरीदे थे। किसी में दो इंच में खबर दी गई थी, किसी में दो कॉलम में। जिसने दो कॉलम में खबर दी थी, वह रिपोर्टर उसका परिचित था। वह अगर उसका परिचित न होता, तो ...

वह अब अपनी हथेली पर दूसरा नाम लिखने लगा—वह नाम जो उसके नाम के साथ-साथ अखबारों मे छपा था—नत्थासिह, नत्थासिह, नत्थासिह।

यह नाम लिखते हुए उसकी हथेली पर पसीना आ गया। उसने पेंसिल रखकर हथेली को मेज से पोंछ लिया।

जूते की चरमर दरवाजे के पास आ गई। सब-इन्स्पेक्टर ने एक बार अन्दर झांककर पूछ लिया, "आपको किसी चीज की जरूरत तो नही ?"

"नही," उसने सिर हिला दिया। उसे तब ऐश-ट्रे का ध्यान नहीं आया।

"पानी-आनी की जरूरत हो, तो माग लीजिएगा।"

उसने फिर सिर हिला दिया—कि जरूरत होगी, तो माग लेगा। साथ पूछ लिया, "अभी और कितनी देर लगेगी ?"

"अब ज्यादा देर नहीं लगेगी," सब-इन्स्पेक्टर ने दरवाजे के पास से हटते हुए कहा, "पन्द्रह-बीस मिनट मे ही उसे ले आएंगे।"

इतना ही वक्त उसे तब भी बताया गया था जब उसे उस कमरे मे छोड़ा गया था। तब से अब तक क्या कुछ भी वक्त नही बीता था ?

जूते के अन्दर, दायें पैर के तलवे मे, खुजली हो रही थी। जूता खोलकर एक बार अच्छी तरह खुजला लेने की बात वह कितनी ही बार सोच चुका था। पर हाथ दो-एक बार नीचे झुकाकर भी उससे तस्मा खोलते नहीं बना। उस पैर को दूसरे पैर से दबाए वह जूते को जमीन पर रगड़कर रह गया।

हाथ की पेंसिल फिर चल रही थी। उसने अपनी हथेली को देखा। दोनों नामों के ऊपर उसने बड़े-बड़े अक्षरों मे लिख दिया था—अगर।

अगर···।

अगर कल सुबह वह स्कूटर की बजाय बस से आया होता···।

अगर बर्फ खरीदने के लिए उसने स्कूटर को दायरे के पास न रोका होता···

अगर···

उसने जूते को फिर जमीन पर रगड़ लिया। मन मे मिन्नी का चेहरा उभर आया। अगर वह कल मिन्नी से न मिला होता···

वह, जो कभी सुबह नौ बजे से पहले नही उठता था, सिर्फ मिन्नी की वजह से उन दिनों सुबह छह बजे तैयार होकर घर से निकल जाता था। मिन्नी ने

मिलने की जगह भी क्या बताई थी—अजमेरी गेट के अन्दर हलवाई की एक दुकान ! जिस प्राइवेट कॉलिज में वह पढ़ने आती थी, उसके नज़दीक बैठने लायक और कोई जगह थी ही नहीं । एक दिन वह उसे जामा मस्जिद से गया था—कि कुछ देर वहां के किसी होटल में बैठेंगे । पर उतनी सुबह किसी होटल का दरवाज़ा नहीं खुला था । आखिर मेहतरों की उड़ाई धूल से सिर-मुंह बचाते वे उसी दुकान पर लौट आए थे । दुकान के अन्दर पन्द्रह-बीस मेज़ें लगी रहती थीं । सुबह-सुबह लस्सी-पूरी का नाश्ता करनेवाले लोग वहां जमा हो जाते थे । उनमें से बहुत-से तो उन्हें पहचानने भी लगे थे—क्योंकि वे रोज़ कोने की मेज़ के पास घण्टा-घण्टा-भर बैठे रहते थे । मिन्नी अपने लिए सिर्फ कोकाकोला की बोतल मंगवाकर सामने रख लेती थी—पीती उसे भी नहीं थी । लस्सी-पूरी का ऑर्डर उसे अपने लिए देना पड़ता था । जल्दी-जल्दी खाने की आदत होने से सामने का पत्ता दो मिनट में ही साफ़ हो जाता था । मिन्नी कई बार दो-दो पीरियड मिस कर देती थी, इसलिए वहां बैठने के लिए उसे और-और पूरी मंगवाकर खाते रहना पड़ता था । उससे सुबह-सुबह उतना नाश्ता नहीं खाया जाता था, पर चुपचाप कौर निगलते जाने के सिवा कोई चारा नहीं होता था । मिन्नी देखती कि खा-खाकर उसकी हालत खस्ता हो रही है, तो कहती कि चलो, कुछ देर पास की गलियों में टहल लिया जाए । सड़क पर वे नहीं टहल सकते थे; क्योंकि वहां कॉलिज की और लड़कियां आती-जाती मिल जाती थीं । हलवाई की दुकान के साथ से गली अन्दर को मुड़ती थी—उसके आगे गलियों की लम्बी भूल-भुलैया थी, जिसमें वे किसी भी तरफ़ को निकल जाते थे । जब चलते-चलते सामने सड़क का मुहाना नज़र आ जाता, तो वे वहीं से मौट पड़ते थे ।

"इस इतवार को कोई देखने आनेवाला है," उस दिन मिन्नी ने कहा था ।

"कौन आनेवाला है ?"

"कोई है—काठमाण्डू से आया है । दस दिन में शादी करके लौट जाना चाहता है ।"

"फिर ?"

"फिर कुछ नहीं । आएगा, तो मैं उससे साफ़-साफ़ सब कह दूंगी ।"

क्या कह दोगी ?"

"यह क्यों पूछते हो ? तुम्हें पूछने की जरूरत नहीं है।"

"अगर उस वक्त तुम्हारी जबान न खुल सकी, तो ?"

"तो समझ लेना कि ऐसे ही बेकार की लड़की थी•••इस लायक थी ही नहीं कि तुम उससे किसी तरह की रास्त रखते।"

"पर तुमने पहले ही घर में क्यों नहीं कह दिया ?"

"यह तुम जानते हो कि मैंने नहीं कहा ?" कहते हुए मिन्नी ने उसकी उंगलियां अपनी उंगलियों में ले ली थीं। "अभी तो तुम दूसरे के घर में रहते हो। जब तुम अपना घर ले लोगे, तो मैं•••तब तक मैं ग्रेजुएट भी हो जाऊंगी।"

एक बहते नल का पानी गली में यहां से वहां तक फैला था। बचने की कोशिश करने पर भी दोनों के जूते कीचड़ से लथपथ हो गए थे। एक जगह उसका पांव फिसलने लगा तो मिन्नी ने बांह से पकड़कर उसे संभाल लिया। कहा, "ठीक से देखकर नहीं चलते न ! पता नहीं, अकेले रहकर कैसे अपनी देखभाल करते हो ?"

अगर•••

अगर मिन्नी ने यह न कहा होता, तो वह उतना खुश-खुश न लौटता। उस हालत में जरूर स्कूटर के पैसे बचाकर बस से आया होता।

अगर घर के पास के दायरे में पहुंचने तक उसे प्यास न लग आई होती•••

उसने स्कूटर को वहां रोक लिया था—कि दस पैसे की बर्फ खरीद ले। महीना जुलाई का था, फिर भी उसे दिन-भर प्यास लगती थी। दिन में कई-कई बार वह बर्फ खरीदने वहां आता था। दुकानदार उसे दूर से देखकर ही पेटी खोल लेता था और बर्फ तोड़ने लगता था।

पर तब तक अभी बर्फ की दुकान खुली नहीं थी।

बर्फ खरीदने के लिए उसने जो पैसे जेब से निकाले थे, उन्हें हाथ में लिए वह लौटकर स्कूटर के पास आया, तो एक और आदमी उसमें बैठ चुका था। वह पास पहुंचा, तो स्कूटरवाले ने उसकी तरफ हाथ बढ़ा दिया—जैसे कि वहां उतरकर वह स्कूटर खाली कर चुका हो।

"स्कूटर अभी खाली नहीं है," उसने स्कूटरवाले से न कहकर अन्दर बैठे आदमी से कहा।

"गाली नहीं से मतलब ?" उस आदमी का चेहरा सहसा तमतमा उठा। वह एक लम्बा-तगड़ा सरदार था—लुंगी के साथ मलमल का कुरता पहने। लम्बा शायद उतना नहीं था, पर तगड़ा होने से लम्बा भी लग रहा था।

"मतलब कि मैंने अभी इसे गाली नहीं दिया है।"

"गाली नहीं दिया, तो मैं अभी कराऊं तुमसे गाली ?" कहते हुए सरदार ने दांत भींच लिए। "जल्दी से उसके पैसे दे, और अपना रास्ता देख, वरना…"

"वरना क्या होगा ?"

"बताऊं तुझे क्या होगा ?" कहते हुए सरदार ने उसे कॉलर से पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और उसके मुंह पर एक झापड़ दे मारा—"यह होगा। अब आया समझ में ? दे जल्दी से उसके पैसे और दफा हो यहां से।"

उसका खून खौल गया—कि एक आदमी, जिसे कि वह जानता तक नहीं, भरे बाजार में उसके मुंह पर थप्पड़ मारकर उससे दफा होने को कह रहा है ! उसका चश्मा नीचे गिर गया था। उसे ढूंढ़ते हुए उसने कहा, "सरदार, जरा जबान संभालकर बात कर।"

"क्या कहा ? जबान संभालकर बात करूं ? हरामजादे, तुझे पता है मैं कौन हूं ?" जब तक उसने आंखों पर चश्मा लगाया, सरदार स्कूटर से नीचे उतर आया था। उसका एक हाथ कुरते की जेब में था।

"तू जो भी है, इस तरह की बदतमीजी करने का तुझे कोई हक नहीं," कहते न कहते उसने देखा कि सरदार की जेब से निकलकर एक चाकू उसके सामने खुल गया है। "तू अगर समझता है कि…" यह वाक्य वह पूरा नहीं कर पाया। खुले चाकू की चमक से उसकी जबान और छाती सहसा जकड़ गई। उसके हाथ से पैसे वहीं गिर गए और वह वहां से भाग खड़ा हुआ।

"ठहर मादर…अब जा कहां रहा है ?" उसने पीछे से सुना।

"पैसे साहब !" यह आवाज स्कूटरवाले की थी।

उसने जेब में हाथ डाला और जितने सिक्के हाथ में आए निकालकर सड़क पर फेंक दिए। पीछे मुड़कर नहीं देखा। घर की गली बिल्कुल सामने थी, पर उस तरफ न जाकर वह जाने किस तरफ को मुड़ गया। कहां तक और कितनी देर तक भागता रहा, इसका उसे होश नहीं रहा। जब होश हुआ, तो एक अपरिचित मकान के जीने में खड़ा हांफ रहा था…

× × ×

उसने पेंसिल हाथ से रख दी और हथेली पर बने शब्दों को अँगूठे से मल दिया। तब तक न जाने कितने शब्द और वहाँ लिखे गए थे जो पढ़े भी नहीं जाते थे। सब मिलाकर आड़ी-तिरछी लकीरों का एक गुंजल था जो मल दिए जाने पर भी पूरी तरह मिटा नहीं था। हथेली सामने किए वह कुछ देर उस धपधुँधले गुंजल को देखता रहा। हर लकीर का नोक-नुक्ता कहीं से बाकी था। उसने सोचा कि वहाँ कहीं एक वाश-बेसिन होता, तो वह दोनों हाथों को अच्छी तरह मलकर धो लेता।

"हलो...!"

उसने सिर उठाकर देखा। महेन्द्र, जिसके यहाँ वह रहता था, और वह रिपोर्टर जिसने दो कॉलम में खबर दी थी, उसके सामने खड़े थे। सब इन्स्पेक्टर के बूट की खटखट दरवाज़े से दूर जा रही थी।

"तुम इस तरह बुझे-से क्यों बैठे हो?" महेन्द्र ने पूछा।

"नहीं तो," उसने कहा और मुसकराने की कोशिश की।

"वे लोग उसे लॉक-अप से यहाँ ले आए हैं। अभी थोड़ी देर में उसे शनाख्त के लिए इधर लाएँगे।"

उसने सिर हिलाया। वह अब भी वाश-बेसिन की बात सोच रहा था।

"थानेदार बता रहा था कि सुबह-सुबह उसके घर जाकर इन्होंने उसे पकड़ा है। ये लोग कब से उसके पीछे थे—पर पकड़ने का कोई मौका इन्हें नहीं मिल रहा था। कोई भला आदमी उसकी रिपोर्ट ही नहीं करता था।"

उसने अब फिर मुसकराने की कोशिश की। पेंसिल उसने मेज़ से उठाकर जेब में डाल ली।

"मैं आज फिर अखबार में उसकी खबर दूँगा," रिपोर्टर बोला—"जब तक इस आदमी को सज़ा नहीं हो जाती, हम इसका पीछा नहीं छोड़ेंगे।"

उसे लगा कि उसके कान गरम हो रहे हैं। उसने हाथ से एक कान को सहला लिया।

"तय हुआ है," महेन्द्र ने कहा, "कि उसे साथ लिए हुए चार सिपाही कमरे के दाईं तरफ से लाएँगे और बाईं तरफ से निकाल ले जाएँगे। उसे यह पता नहीं चलने दिया जाएगा कि तुम यहाँ हो। तुम यहाँ बैठे-बैठे उसे देख लेना और बाद

में बता देना कि हां, यही आदमी है जिसने तुमपर चाकू चलाना चाहा था। व थानेदार के सामने इतना तो मान गया है कि कल उसने स्कूटर को लेकर झगड़ किया था, पर चाकू निकालने की बात नहीं माना। कहता है कि चाकू-चाकू तो उसके पास होता ही नहीं—उसके दुश्मनों ने खामखाह उसे फंसाने के लिए रिपोर्ट लिखवा दी है। यह भी कह रहा था कि वह तो अब इस इलाके में रहना नहीं चाहता—दो-एक मुकदमों का फैसला हो जाए, तो वह इस इलाके से चला जाएगा।"

वह कुछ देर क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर को देखता रहा। फिर अपनी उंगलियों को मसलता हुआ आहिस्ता से बोला, "मेरा खयाल है, हमें रिपोर्ट नहीं लिखवानी चाहिए थी।"

"तुम फिर वही बुजदिली की बात कर रहे हो?" महेन्द्र थोड़ा तेज हुआ। "तुम चाहते हो कि ऐसे आदमी को गुण्डागर्दी की खुली छूट मिली रहे?"

उसकी आंखें तस्वीर से हटकर पल-भर महेन्द्र के चेहरे पर टिकी रहीं। उसे लगा कि जो बात वह कहना चाहता है, वह शब्दों में नहीं कही जा सकती।

"आपको डर लग रहा है?" रिपोर्टर ने पूछा।

"बात डर की नहीं···।"

"तो और क्या बात है?" महेन्द्र फिर बोल उठा। "तुम कल भी कम्प्लेंट लिखवाने में आना-कानी कर रहे थे···।"

"मैंने यह बात भी अपनी रिपोर्ट में लिखी है," रिपोर्टर ने कहा और एक सिगरेट सुलगा लिया।

"खैर, रिपोर्ट तो अब हो गई है और उस आदमी को गिरफ्तार भी कर लिया गया है," महेन्द्र बोला। "तुम्हें डरना नहीं चाहिए। इतने लोग तुम्हारे साथ हैं।"

"मैं समझता हूं कि गुण्डागर्दी को रोकने में आदमी की जान भी चली जाए, तो उसे परवाह नहीं करनी चाहिए," रिपोर्टर ने कश खींचते हुए कहा। "इन लोगों के हौसले इतने बढ़ते जा रहे हैं कि ये किसीको कुछ समझते ही नहीं। पिछले दो साल में ही गुण्डागर्दी की घटनाएं पहले से पौने तीन गुना हो गई हैं—यानी पहले से एक सौ पचहत्तर फीसदी ज्यादा। अगर अब भी इनकी रोक-थाम न की गई, तो पांच साल में आदमी के लिए घर से निकलना मुश्किल हो जाएगा।"

ग्रौर भी जिस-जिससे पूछा, ... के बारे में कुछ नहीं जानता। सिर्फ मेडिकल स्टोर के इंचार्ज ने दबी ग्रावाज में कहा, "नत्थासिंह को यहां कौन नहीं जानता? ग्रभी कुछ ही दिन पहले उसके ग्रादमियों ने पिछली गली में एक पानवाले का कत्ल किया है। वे तीन-चार भाई हैं ग्रौर इस इलाके के माने हुए गुण्डे हैं। खैरियत समझिए कि ग्रापकी जान बच गई, वरना हममें से तो किसीको इसकी उम्मीद नहीं रही थी। ग्रब बेहतरी इसी-में है कि ग्राप इस चीज़ को चुपचाप पी जाएं ग्रौर बात को ज्यादा बिखरने न दें। यहां ग्रापको एक भी ग्रादमी ऐसा नहीं मिलेगा, जो उसके खिलाफ गवाही देने को तैयार हो। ग्रगर ग्राप पुलिस में रिपोर्ट करें ग्रौर पुलिस यहां तहकीकात के लिए ग्राए, तो सब लोग साफ मुकर जाएंगे कि यहां पर ऐसा कुछ हुग्रा ही नहीं।"

पर महेन्द्र का कहना था कि रिपोर्ट जरूर करेंगे—ऐसे ग्रादमी को सज़ा दिलवाए बगैर नहीं छोड़ा जा सकता।

थानेदार से बात करने पर उसने कहा, "हां-हां, रिपोर्ट ग्रापको जरूर लिख-वानी चाहिए। इन गुण्डों से मत्था लेने में यूं थोड़ा-बहुत खतरा तो रहता ही है—ग्रौर कुछ न करें, ग्रापपर एसिड-वेसिड ही डाल दें। ऐसा उन्होंने दो-एक बार किया भी है। पर हम ग्रापकी हिफाजत के लिए हैं, ग्रापको डरना नहीं चाहिए। एक ग्रच्छे शहरी होने के नाते ग्रापका फर्ज है कि ग्राप रिपोर्ट जरूर लिखवाएं। हम लोगों को भी तो इनके खिलाफ कारवाई करने का मौका इसी तरह मिल सकता है।"

रिपोर्ट लिखवाने के बाद वे लोग ग्रखबारों के दफ्तरों में गए—एस० पी० ग्रौर डी० एस० पी० से मिले। उस दौरान कई बातों का पता चला—कि उस ग्रादमी का मुख्य धन्धा लड़कियों की दलाली करना है—कि ऊंचे सरकारी ग्रौर राजनीतिक हलके के ग्रमुक-ग्रमुक व्यक्तियों को वह लड़कियां सप्लाई करता है—कि उसकी कितनी भी रिपोर्टें की जाएं, कभी उसके खिलाफ कारवाई नहीं की जाती—कि नीचे से ग्रमुक-ग्रमुक लोग उससे पैसे खाते हैं—कि नीचे से कार-वाई कर भी दी जाए, तो ऊपर से ग्रमुक-ग्रमुक का फोन ग्रा जाता है जिससे कारवाई वापस ले ली जाती है...।

"वह तो बेचारा सिर्फ दलाली करता है," डी० एस० पी० ने ज़रूरी फाइलों

पर दस्तखत करते हुए कहा, "कत्ल-ग्रत्ल करने का उसका हौसला नहीं पड़ सकता। *हम उसके खिलाफ कार्रवाई करेंगे—ग्रापको डरना बिलकुल नहीं चाहिए।"*

ग्रखबारों के चीफ-क्राइम रिपोर्टर ने तीस हज़ारी कैण्टीन की ठण्डी चाय के लिए छोकरे को डांट-फटकार करते हुए सलाह दी, "ग्राप पहला काम यही कीजिए कि जाकर ग्रपनी रिपोर्ट वापस ले लीजिए। थानेदार मेरा वाकिफ है, ग्राप चाहे तो उससे मेरा नाम ले सकते हैं—कि पण्डित माघोप्रसाद ने यह राय दी है। वह ग्रकेला नहीं है, एक बहुत बड़ा गिरोह उसके साथ है। हम लोग इनसे उलझ लेते हैं क्योंकि एक तो हम इन सबको पहचानते हैं ग्रौर दूसरे हिफाज़त के लिए रिवाल्वर-ग्राल्वर ग्रपने साथ रखते हैं। वे भी जानते हैं कि जितने बड़े गुण्डे ये दूसरों के लिए हैं, उतने ही बड़े गुण्डे हम इनके लिए हैं। इसलिए हमसे डरते भी हैं। पर ग्राप जैसे ग्रादमी को तो ये एक दिन में साफ कर देंगे—ग्रापको इनसे बचकर रहना चाहिए ···।"

ग्रपनी ग्रनेक राजनीतिक व्यस्तताग्रों से समय निकालकर उस विभाग के मंत्री ने भी ग्रपने लॉन में चहलकदमी करते हुए शाम को एक मिनट उनसे बात की। छूटते ही पूछा, "किस चीज़ की ग्रदावत थी तुम लोगों में?"

"ग्रदावत का तो कोई सवाल नहीं था," वह जल्दी-जल्दी कहने लगा, "मैं सुबह स्कूटर में घर की तरफ ग्रा रहा था···।"

"तुम ग्रपनी शिकायत एक कागज़ पर लिखकर सेक्रेटरी को दे दो," उन्होंने बीच में ही कहा, "उसपर जो कार्रवाई करनी होगी, कर दी जाएगी।" ग्रौर वे लॉन में खड़े दूसरे ग्रुप की तरफ मुड़ गए।

रात को घर लौटने पर उसे ग्रपने हाथ-पैर ठण्डे लग रहे थे। पर महेन्द्र का उत्साह कम नहीं हुग्रा था। वह ग्राधी रात तक इधर-उधर फोन करके तरह-तरह के ग्राकड़े जमा करता रहा। "उसे कम से कम तीन साल की सज़ा होनी चाहिए," उसने सोने से पहले ग्राकड़ों के ग्राधार पर निष्कर्ष निकाल लिया।

महेन्द्र के सो जाने के बाद वह काफी देर साथ के कमरे से ग्रानी सांसों की ग्रावाज़ सुनता रहा था—उस ग्रावाज़ में उसको सुरक्षा का ग्रहसास उसे पहले कभी नहीं हुग्रा था। वह ग्रावाज़—एक जीवित ग्रावाज़—उसके बहुत पास था

और लगातार चल रही थी। जितनी जीवित वह आवाज़ थी, उतना ही
था उसे सुन सकना—चुपचाप लेटे हुए, बिना किसी कोशिश के, अपने क
सुन सकना। गरमी और उमस के बावजूद रात ठण्डी थी—कुछ देर प
हलकी-हलकी बूँदें पड़ने लगी थीं। कभी-कभी उसे सन्देह होता कि जो आवा
सुन रहा है, वह रात की ही तो आवाज़ नहीं—सिर्फ पत्तों के हिलने और
के गिरने की आवाज़। कि सुनना भी कहीं सुनना न होकर अपने से बाहर
कोरा शब्द ही तो नहीं। तब वह करवट बदलकर अपने हाथ-पैरों का 'हो
महसूस करता और फिर से सासों का शब्द सुनने लगता ··

खिड़की से कभी-कभी हवा का झोंका आता जिससे रोंगटे सिहर जाते थे
उस सिहरन में हवा के स्पर्श के अतिरिक्त भी कुछ होना—शायद रोंगटों में अप
अस्तित्व की अनुभूति। एक झोंके के बीत जाने पर वह दूसरे की प्रतीक्षा करता
जिससे कि फिर से उस स्पर्श और सिहरन को अपने में महसूस कर सके। उस
सिहरन के बाद उसे अपना हाथ खाली-खाली-सा लगता। मन होता कि हाथ में
कसने के लिए एक और हाथ उसके पास हो—मिन्नी का पतली और चुभती
उंगलियों वाला हाथ। कि हाथ के अलावा मिन्नी का पूरा शरीर भी पास में
हो—इकहरा, पर भरा हुआ शरीर—जिसके एक-एक हिस्से से अपने सिर और
होंठों को रगड़ता हुआ वह अपने नाक-कान-गालों से उसकी सांसों का शब्द और
उतार-चढ़ाव महसूस कर सके। पर मिन्नी वहा नहीं थी—और उसके हाथ ही
नहीं, पूरा अपना-आप खाली था। उसकी आँखें दर्द कर रही थीं और कनपटियों
की नसें फड़क रही थी। अगर वह रात रात न होकर सुबह होती—एक दिन पहले
की सुबह—वह अभी मिन्नी से बात करके उससे अलग न हुआ होता, और स्टैंण्ड
पर आकर अभी स्कूटर मे न बैठा होता···!

कोई चीज़ हलक मे चुभ रही थी—एक नोक की तरह। वह बार-बार थूक
निगलकर उस चुभन को मिटा लेना चाहता। कभी-कभी उसे लगता कि किसी
हाथ ने उसका गला दबोच रखा है और यह चुभन गले पर कसने नाखूनों की है।
तब वह जैसे अपने को उन हाथों से छुड़ाने के लिए छटपटाने लगता। उसे अपने
अन्दर से एक हौलनाक-सी आवाज़ सुनाई देती—अपनी तेज़ चलती सांसों की
। रात तब दिन में और कमरा सड़क में घुल-मिल जाता और वह अपने
सांस और अकड़ी पिण्डलियों से बेतहाशा सड़क पर भागने पाता। सड़क

है—सिर्फ़ सफ़ेदी सड़क—जिसका कोलतार···जहाँ में पिघल रहा है। उसपर जैसे उसके आगे-आगे, दो पैर हैं—उसके अपने पैर। जूते के फीते खुले हैं। पर जूते के पायचे जूते में अटक-अटक जाते हैं। पर वह सरपट भाग रहा है—जैसे जूते और पायचों के ऊपर-ऊपर से। आस-पास दूर-दूर में दरख्त मकान हैं, नालियाँ हैं, लोग हैं। सब उसके रास्ते में हैं—पर कोई भी कुछ भी, उसके रास्ते में नहीं है। सिर्फ़ सड़क है, वह है, और भागना है।

आँख खुल जाती, तो बाहर बिजली चमकती दिखाई देती। फिर मुँद जाती तो कोई चीज़ अन्दर कौंधने लगती।··· एक टीन की सीढ़ियों ने उसे रस्सियों की तरह लपेट रखा है। एक तेज़ धार का चाकू उन रस्सियों को काटता आता है। उसके पास आने से पहले ही उसकी धार जैसे शरीर में चुभने लगती है। यह उसकी पीठ है···पीठ नहीं, छाती है। चाकू की नोक सीधी उसकी छाती की तरफ़···नहीं, गले की तरफ़··· आ रही है। वह उस नोक से बचने के लिए अपना सिर पीछे हटा रहा है···पर पीछे आसमान नहीं, दीवार है। वह कोशिश कर रहा है कि उसका सिर दीवार में गड़ जाए···दीवार के अन्दर छिप जाए। पर दीवार दीवार नहीं रस्सियों का जाल है, और जाल के उस तरफ़···फिर वही चाकू की नोक है। जाल टूट रहा है। सीढ़ियाँ पैरों के नीचे से फिसल रही हैं। क्या वह किसी तरह सीढ़ियों से—रस्सियों से—उलझा रहकर अपने को नहीं बचा सकता?

आँख फिर खुल जाती, तो उसे तेज़ प्यास महसूस होती। पर जब तक वह उठने और पानी पीने की बात सोचता, तब तक आँख फिर झपक जाती।

चाप् चाप् चाप्···।

जूते की आवाज़ फिर दरवाज़े के पास आ गई। वह कुरसी पर सीधा हो गया।

"आप तैयार हैं?" सब-इन्स्पेक्टर ने अन्दर आकर पूछा।

उसने सिर हिलाया। उसे लग रहा था कि रात से अब तक उसने पानी पिया ही नहीं।

"तो अपनी कुरसी ज़रा तिरछी कर लीजिए और बाहर की तरफ़ देखते रहिए। हम लोग अभी उसे लेकर आ रहे हैं," कहकर सब-इन्स्पेक्टर चला गया।

चाप् चाप् चाप्…।

उसे लगा कि उसके हाथों की उंगलियां कांप रही हैं—ऐसे जैसे वे हाथों से ठीक से जुड़ी न हों।

साथ के कमरे में एक आदमी रो रहा था—धौल-धप्पे से कोई चीज़ उससे कबुलवाई जा रही थी।

क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर जैसे दीवार से थोड़ा आगे को हट आई थी—उसके और ज़मीन के बीच का फासला भी अब पहले जितना नहीं लग रहा था।

चाप् चाप् चाप्—यह कई पैरों की मिली-जुली आवाज़ थी। साथ के कमरे में पिटाई चल रही थी : "बोल हरामज़ादे, तू किस रास्ते से घुसा था घर के अन्दर?" और इसके जवाब में आती आवाज़ : "नहीं, मैं नहीं घुसा था। मैं उस घर की तरफ गया भी नहीं था…।"

चार सिपाही कमरे के बाहर आ गए थे, और उनके बीच था वही सरदार उसी तरह लुंगी के साथ मलमल का लम्बा कुरता पहने। हथकड़ी के बाव उसके हाथ बंधे हुए नहीं लग रहे थे।

पल-भर के लिए वाशी को लगा जैसे उसे उस आदमी का नाम भूल गया हो कल दिन में कितनी ही बार, कितने ही लोगों के मुंह से, वह नाम सुना था। जि किसीसे बात हुई थी, वह उस आदमी को पहले से ही जानता था। अभी कु ही देर पहले उसने वह नाम अपनी हथेली पर लिखा था। क्या नाम था वह?

दरवाज़े के पास आकर वे लोग रुक गए थे—जैसे किसी चीज़ का पता करने के लिए। थानेदार और सब-इन्स्पेक्टर में से कोई उनके साथ नहीं था।

"कहां चलना है? इस तरफ?" कहता हुआ सरदार उसी दरवाज़े की तरफ बढ़ आया। अब वे दोनों आमने-सामने थे। चारों सिपाही पीछे चुपचाप खड़े थे।

वाशी को अचानक उसका नाम याद हो आया। नत्थासिंह। सुबह प्रायः सभी अखबारों में यह नाम पढ़ा था। तब उसे इस आदमी की सूरत याद नहीं आ रही थी। सोच रहा था कि उसे देखकर पहचान भी पाएगा या नहीं। पर अब वह सामने था, तो उसकी सूरत बहुत पहचानी हुई लग रही थी। जैसे कि वह से एक मुद्दत से जानता हो।

वह आदमी सीधी नज़र से उसकी तरफ देख रहा था—जैसे कि उसका चेहरा आँखों में बिठा लेना चाहता हो। पर बाशी अपनी आँखें हटाकर दूसरी तरफ देखने की कोशिश कर रहा था—खिड़की की तरफ। खिड़की के बाहर पेड़ के पत्ते हिल रहे थे। पेड़ की डाल पर एक कौआ पंख फड़फड़ा रहा था।

वह एक लम्बा वक्फा था—खामोश वक्फा—जिसमें कि उसके कान ही नहीं गाल भी दहकने लगे। पैर में तेज़ खुजली उठ रही थी, फिर भी उसने उसे दूसरे पैर से दबाया नहीं। उसकी आँखें खिड़की से हटकर ज़मीन में धंस गई और तब तक धंसी रहीं जब तक कि वह वक्फा गुज़र नहीं गया। उन लोगों के चले जाने के कई क्षण बाद उसने आँखें दरवाज़े की तरफ मोड़ीं। तब थानेदार अहाते में खड़ा सब-इन्स्पेक्टर को डाँट रहा था, "मैंने तुमसे कहा नहीं था कि उसे यहाँ रोकना नहीं, चुपचाप दरवाज़े के पास से निकालकर ले जाना ?"

सब-इन्स्पेक्टर अपनी सफाई दे रहा था कि कसूर उसका नहीं, सिपाहियों का है—उन लोगों ने, लगता है, बात ठीक से समझी नहीं।

थानेदार माफी मांगता हुआ उसके पास आया, और आश्वासन देकर कि उसे फिर भी डरना नहीं चाहिए, वे लोग उसकी हिफाज़त करेंगे, बोला, "उसे पहचान लिया है न, आपने ? यही आदमी था न जिसने आपपर चाकू चलाना चाहा था ?"

बाशी कुरसी से उठ खड़ा हुआ। उठते हुए उसे लगा कि उसके घुटनों में खून जम गया है। उसे जैसे सवाल ठीक से समझ ही नहीं आया—वे जैसे अलग-अलग शब्द थे जिन्हें मिलाकर उसके दिमाग में पूरा वाक्य नहीं बन पाया था।

"यह वही आदमी था न ?"

उसके पैरों में पसीना आ रहा था। बगलों में भी। साथ के कमरे में ठुकाई करते हुए पूछा जा रहा था, "तू नहीं था, तो कौन था कुत्ते के बीज ? सीधे से बता दे—क्यों अपनी पसलियाँ तुड़वाता है ?" जवाब में मार खानेवाला न जाने क्या कहने की कोशिश कर रहा था।

अब तक वाक्य उसके दिमाग में स्पष्ट हो गया था। जो सवाल पूछा गया था, उसका जवाब उसे 'हाँ' में देना था। यह बात पहले से ही तय थी—तब से ही जब कि उसे उस कमरे में लाया गया था। वह आदमी वही है, यह सब जानते थे—वह भी, थानेदार भी और दूसरे लोग भी। फिर भी उसके 'हाँ' कहने पर ही

सब कुछ निर्भर करता था।

उसने कमीज़ के सिरे से किसी से बालों का पसीना पोंछ लिया। फिर उसे अहसास हुआ कि वह दो दिन से नहाया नहीं है और कि मिन्नी हमेशा उसे सुबह नहाकर ही आने के लिए ताना देती है। आज सुबह मिन्नी ठीक वक्त पर वहां पहुंची होगी। उसके वहां न मिलने से उसने जाने क्या सोचा होगा!

उस वक्त भी मन रहा था कि वह जाने कोट-टाई पहन कर क्यों आता है— उसे क्या थाने में नौकरी के लिए दरख्वास्त देनी थी?

"आप क्या सोच रहे हैं?" थानेदार ने पूछा, "आपने उस आदमी को पह-चाना नहीं?"

यह एक नया विचार था। अगर सचमुच उसने उस आदमी को न पहचाना होता?...और पहचानने के बाद भी इस वक्त अगर वह कह दे कि उसने नहीं पहचाना?

पर इस विचार के दिमाग में ठीक से बनने के पहले ही, पहले की तय की बात उसके मुंह से निकल गई, "हां, यही आदमी है यह।"

जवाब सुनते ही थानेदार व्यस्ततापूर्वक वहां से हट गया। सब-इन्स्पेक्टर पल-भर उसकी तरफ देखता रहा, फिर यह कहकर कि 'अब आप घर जा सकते हैं। चाकू, शनाख्त के लिए, आपके पास वहीं भेज दिया जाएगा,' वह भी वहां से चला गया।

वह अपने में उलझा हुआ थाने से बाहर आया। बाहर की तेज-खुली धूप उसे अपना-आप बहुत असुरक्षित और नंगा-सा लगा। लगा, जैसे वह अपना ब कुछ उस कमरे में छोड़ आया हो—कल तक का सारा संघर्ष, मिन्नी का चेह और आगे की सब योजनाएं। फुटपाथ, सड़क और खम्भे पहले कभी उसे इत सपाट और नंगे नहीं लगे थे। सामने जो पहली इमारत नज़र आ रही थी, औ जिसकी ओट में जाकर वह अपने को कुछ ढका हुआ महसूस कर सकता था, वह भी सौ गज से कम फासले पर नहीं थी। खुले में चारों तरफ से सबको दिखाई देते हुए, उतना फासला तय करना उसे असम्भव लग रहा था। 'अब मैं उस इलाके में नहीं रह पाऊंगा,' उसने सोचा। 'और वह घर छोड़ देना पड़ा, तो और कहां रहूंगा? नौकरी तो अब तक मिली नहीं...।'

उसने एक असहाय नज़र से चारों तरफ देख लिया। एक खाली टैक्सी पीछे

से आ रही थी। उसने जेब के पैसे गिने और हाथ देकर टैक्सी को रोक लिया। फिर चोर नज़र से आस पास देखकर उसमें बैठ गया। टैक्सी वाले को घर का पता देकर वह नीचे को झुक गया जिससे खिड़की के बाहर सिवाय सिर के, जिस्म का और कोई हिस्सा दिखाई न दे।

पैर में खुजली बहुत बढ़ गई थी। वह उसी तरह झुके-झुके कांपती उंगलियों से जूते का फीता खोलने लगा।

सुहागिनें

कमरे में दाखिल होते ही मनोरमा चौंक गई। काशी उसकी साड़ी
सिर पर लिए ड्रेसिंग टेबल के पास खड़ी थी। उसके होंठ लिपस्टि
थे और चेहरे पर बेहद पाउडर पुता था, जिससे उसका सांवला चेहरा
लग रहा था। फिर भी वह मुग्धभाव से शीशे में अपना रूप निहार र
मनोरमा उसे देखते ही आपे से बाहर हो गई।

"माई," उसने चिल्लाकर कहा, "यह क्या कर रही है?"

काशी ने हड़बड़ाकर साड़ी का पल्ला सिर से हटा दिया और ड्रेसिंग
के पास से हट गई। मनोरमा के गुस्से के तेवर देखकर पल-भर तो वह स
रही, फिर अपने स्वांग का ध्यान हो आने से हंस दी।

"बहनजी, माफी दे दें," उसने मिन्नत के लहजे में कहा, "कमरा ठीक क
रही थी, शीशे के सामने आई, तो ऐसे ही मन कर आया। आप मेरी तनख
में से पैसे काट लेना।"

"तनखाह में से पैसे काट लेना!" मनोरमा और भी भड़क उठी, "पंद्रह
रुपये तनखाह है और बेगम साहब साढ़े छः रुपये लिपस्टिक के कटवाएंगी।
कम्बख्त रोज प्लेटें तोड़ती है, मैं कुछ नहीं कहती। घी, आटा, चीनी चुराकर
ल जाती है, और मैं देखकर भी नहीं देखती। सारा स्टाफ शिकायत
कुछ काम नहीं करती, किसीका

जान खाते हैं कि इसे दफा करो, रोज-रोज अपना रोना लेकर हमारे यहां आ मरती है। मैं फिर भी तरह दे जाती हूं कि निकाल दिया, तो दर-बदर मारी-मारी न फिरे—और उसका तू मुझे यह बदला देती है? कमीनी कहीं की!"

उसने बेंत की कुर्सी को इस तरह अपनी तरफ खींचा, जैसे उसीने कोई अपराध किया हो, और उसपर बैठकर माथे को अपने ठंडे हाथ से मल लिया। काशी चुपचाप खड़ी रही।

"चालीस की होने को आई, मगर बांकपन की चाह अब भी बाकी है!" मनोरमा फिर बड़बड़ाई। "छिनाल कहीं की!"

सिर को झटककर उसने आंखें मूंद लीं। दिन-भर की स्कूल की बकझक से दिमाग वैसे ही खाली हो रहा था। शरीर भी थका था। वह उस समय पब्लिक लाइब्रेरी से होकर मिलिट्री लाइन्ज का बड़ा राउंड लगाकर आई थी। निकली यह सोचकर थी कि घूमने से मन में कुछ ताजगी आएगी, मगर लौटते हुए मन पर अजब भारीपन छा गया था। क्वार्टर से आधी मील दूर थी जब सूरज डूब गया था। तब कुछ क्षणों के लिए उसे अपना-आप हल्का-हल्का-सा लगा था। हवा, पेड़ों के हिलते पत्ते और अस्तव्यस्त बिखरे बादलों के टुकड़े, हर चीज में एक मादक स्पर्श का अनुभव हुआ था। सड़क पर फैली सन्ध्या की फीकी चांदनी धीरे-धीरे रंग पकड़ रही थी। वह साड़ी का पल्ला पीछे को कसकर कई कदम तेज-तेज चल गई। मगर टंकी के मोड़ तक पहुंचते-पहुंचते सारा उत्साह गायब हो गया। जब स्कूल के गेट के पास पहुंची तो अन्दर पैर रखने को भी मन नहीं था। मगर उसने किसी तरह मन को बांधा और लोहे के गेट को हाथ से धकेल दिया। गर्ल्ज हाई स्कूल की हेड मिस्ट्रेस रात को देर तक सड़कों पर अकेली कैसे घूम सकती थी? बुझे मन से वह क्वार्टर की सीढ़ियां चढ़ी, तो यह माजरा सामने आ गया।

उसने आंखें खोलीं, तो काशी को उसी तरह खड़ी देखकर उसका गुस्सा और बढ़ गया। जैसे उसे आशा थी कि उसके आंखें बंद करने और खोलने के बीच काशी सामने से हट जाएगी।

"अब खड़ी क्यों है?" उसने डांटकर कहा। "जा यहां से।"

काशी के चेहरे पर डांट का कोई खास असर दिखाई नहीं दिया। वह बल्कि पास आकर फर्श पर बैठ गई।

[illegible]

"बहनजी, हाथ जोड़ रही हूँ, माफी दे दो।" उसने मनोरमा के पैर पकड़ लिए। मनोरमा पैर हटाकर कुर्सी से उठ खड़ी हुई।

"तुमसे कह दिया है इस वक्त चली जा, मुझे तंग न कर।" कहकर वह खिड़की की तरफ चली गई। काली भी उठकर खड़ी हो गई।

"चाय बना दूँ?" उसने कहा। "घूमकर थक गई होंगी।"

"तू जा, मुझे चाय-वाय नहीं चाहिए।"

"तो खाना ले आती हूँ।"

मनोरमा कुछ न कहकर मुँह दूसरी तरफ किए रही।

"बहनजी, मिन्नत कर रही हूँ माफी दे दो।"

मनोरमा चुप रही। सिर्फ उसने सिर को हाथ से दबा लिया।

"सिर में दर्द है तो सिर दबा देती हूँ।" काली अपने हाथ पल्ले से पोंछने लगी।

"तुमसे कह दिया है जा, मेरा सिर क्यों खा रही है?" मनोरमा ने चिल्लाकर कहा। काली चोट खाई-सी पीछे हट गई। पल-भर अवाक् भाव से मनोरमा की तरफ देखती रही। फिर निकलकर बरामदे में चली गई। वहां से कुछ कहने के लिए मुड़ी, मगर बिना कहे चली गई। जब तक लकड़ी के जीने पर उसके पैरों की आवाज़ सुनाई देती रही, मनोरमा खिड़की के पास खड़ी रही। फिर आकर सिर दबाए बिस्तर पर लेट गई।

उसे लगा इसमें सारा कसूर उसीका है। और कोई हेड मिस्ट्रेस होती, तो कब का इस औरत को निकालकर बाहर करती। वह जितना उसे तरह देती थी, उतना ही वह उसकी कमज़ोरी का फायदा उठाती थी। उसके बच्चों की भी वह कितनी शैतानियां बर्दाश्त करती थी! दिन-भर उसके क्वार्टर की सीढ़ियों पर शोर मचाते रहते थे और स्कूल के कम्पाउंड को गंदा करते रहते थे। उसने एक बार उन्हें गोलियां ला दी थीं। तब से उसे देखते ही उसकी साड़ी से चिपटकर गोलियां मांगने लगते थे। उसने कितना चाहा था कि वे साफ रहना सीख जाएं। बड़ी लड़की मुन्नी की तो चड्डियां भी उसने अपने हाथ से सी दी थीं। मगर उससे कोई फर्क नहीं पड़ा। वे उसी तरह गंदे रहते थे और उसी तरह गुलगपाड़ा मचाए रखते थे। पिछली बार इन्स्पेक्शन के दिन उन्होंने कम्पाउंड के फर्श पर कोयले से लकीरें खींच दी थीं जिससे दूसरी बार सारे

कम्पाउंड की सफाई करानी पड़ी थी। कई बार वे बाहर से आए अतिथियों के सामने जीभें निकाल देते थे। वही थी जो सब बर्दाश्त किए जाती थी।

कुछ देर वह छत की तरफ देखती रही। फिर उठकर बरामदे में चली गई। लकड़ी के बरामदे में अपने ही पैरों की आवाज़ से शरीर में कंपकपी भर गई। उसने मुंडेर के खम्भे पर हाथ रख लिया। अहाते में खुली चाँदनी फैली थी। ईंटों के फर्श पर सीमेंट की लकीरें एक इन्द्रजाल-सी लगती थीं। स्कूल के बरामदे में पड़े डेस्क-स्टूल और ब्लैक-बोर्ड ऐसे लग रहे थे जैसे डरावनी सूरतों-वाले भूत-प्रेत अपने गार के अन्दर से बाहर झांक रहे हों। देवदार का घना जंगल जैसे ठण्डी चाँदनी के स्पर्श से सिहर रहा था। वैसे बिलकुल सन्नाटा था।

काशी के क्वार्टर में इस वक्त इतनी खामोशी कभी नहीं होती थी। आम तौर पर नौ-दस बजे तक उसके बच्चे चीखते-चिल्लाते रहते थे। उस समय लग रहा था जैसे उस क्वार्टर में कोई रहता ही न हो। रोशनदान में गत्ते लगे रहने से यह भी पता नहीं चल रहा था कि अंदर लालटेन जल रही है या नहीं। मनोरमा ने खंभे को और भी अच्छी तरह थाम लिया जैसे पास में उसका वही एक आत्मीय हो जिसे वह अपने प्रति सचेत रखना चाहती हो। देवदारों के झुर-मुटों में से गुज़रती हवा की आवाज़ पास आई और दूर चली गई।

"कुन्ती!" मनोरमा ने आवाज़ दी।

उसकी आवाज़ को भी हवा दूर, बहुत दूर ले गई। जंगल की सरसराहट फिर एक बार बहुत पास चली आई। काशी के क्वार्टर का दरवाज़ा खुला और कुन्ती अपने में सिमटती-सी बाहर निकली। मनोरमा ने सिर के इशारे से उसे ऊपर आने को कहा। कुन्ती ने एक बार अपने क्वार्टर की तरफ देखा और और भी सिमटती हुई ऊपर चली आई।

"तेरी माँ क्या कर रही है?" मनोरमा ने कोशिश की कि उसकी आवाज़ रूखी न लगे।

"कुछ भी नहीं" कुन्ती ने सिर हिलाकर कहा।

"कुछ तो कर रही होगी...।"

"रो रही है।"

"क्यों, रो क्यों रही है?"

कुन्ती चुप रही। मनोरमा भी चुप रहकर नीचे देखने लगी।

"तुम लोगों ने रोटी नहीं खाई ?" पल-भर रुककर उसने पूछा।

"रात की बस से बापू को आना है। मां कहती थी, सब लोग उसके आने पर ही रोटी खाएंगे।"

मनोरमा के सामने जैसे सब कुछ स्पष्ट हो गया। तीन साल के बाद मजुध्या आ रहा है, यह बात काशी उसे बता चुकी थी। तभी आज आईने के सामने जाने पर उसके मन में पाउडर और लिपस्टिक लगाने की इच्छा जाग आई थी। उसके बच्चे भी शायद इसलिए आज इतने खामोश थे। उनका बापू आ रहा था···बापू···जिसे उन्होंने तीन साल से देखा नहीं था, और जिसे शायद वे पहचानते भी नहीं थे। या शायद पहचानते थे—एक मोटी सख्त आवाज़ और तमाचे जड़ने वाले हाथों के रूप में···।

"जा, और अपनी मां को ऊपर भेज दे," उसने कुन्ती का कंधा थपथपा दिया। "कहना, मैं बुला रही हूं।"

कुन्ती बाहें और कन्धे सिकोड़े नीचे चली गई। थोड़ी देर में काशी ऊपर आ गई। उसकी आखें लाल थीं और वह बार-बार पल्ले से अपनी नाक पोंछ रही थी।

"मैंने ज़रा-सी बात कह दी और तू रोने लगी ?" मनोरमा ने उसे देखते ही कहा।

"बहनजी, नौकर-मालिक का रिश्ता ही ऐसा है !"

"गलत काम करने पर ज़रा भी कुछ कह दो तो तू रोने लगती है !" मनोरमा जैसे किसी टूटी हुई चीज़ को जोड़ने लगी। "जा, अन्दर गुसलखाने से हाथ-मुंह धो आ।"

मगर काशी नाक और आखें पोंछती हुई वहीं खड़ी रही। मनोरमा एक हाथ से दूसरे हाथ की उंगलियां मसलने लगी। "मजुध्या आज आ रहा है ?" उसने पूछा।

काशी ने सिर हिला दिया।

"कुछ दिन रहेगा या जल्दी चला जाएगा ?"

"चिट्ठी में तो यही लिखा है कि ठेका उठाकर चला जाएगा।"

मनोरमा जानती थी कि मजुध्या की खानदानी ज़मीन पर सेब के कुछ पेड़ हैं, जिनका हर साल ठेका उठता है। पिछले साल काशी ने सवा सौ में ठेका

दिया था और उससे पिछले साल डेढ़ सौ थे। पिछले साल भजुध्या ने उसे बहुत सख्त चिट्ठी लिखी थी। उसका ख्याल था कि काशी ठेकेदारों से कुछ पैसे अलग से लेकर अपने पास रख लेती है। इसलिए इस बार काशी ने उसे लिख दिया था कि ठेका उठाने के लिए वह आप ही यहाँ आए; वह रुपये-पैसे के मामले में किसीकी बात सुनना नहीं चाहती। पाँच साल हुए भजुध्या ने उसे छोड़कर दूसरी औरत कर ली थी और उसे लेकर पठानकोट में रहता था। वहीं उसने एक छोटी-सी परचून की दूकान डाल रखी थी। काशी को वह खर्च के लिए एक पैसा भी नहीं भेजता था।

"सिर्फ ठेका उठाने के लिए ही पठानकोट से आ रहा है?" मनोरमा ने ऐसे कहा जैसे सोच कुछ और ही रही हो। "आने पैसे तो उसके आने-जाने में निकल जाएंगे।"

"मैंने सोचा इस बहाने एक बार यहाँ हो जाएगा, और बच्चों से मिल जाएगा!" काशी की आवाज़ फिर कुछ भीग गई, "फिर उसकी तसल्ली भी हो जाएगी कि आजकल इन सेबों का डेढ़ सौ कोई नहीं देता।"

"अजीब आदमी है!" मनोरमा हमदर्दी के स्वर में बोली, "अगर सचमुच तू कुछ पैसे रख भी ले तो क्या है? आखिर तू उसीके बच्चों को तो पाल रही है। चाहिए तो यह कि हर महीने वह तुझे कुछ पैसे भेजा करे। उसकी जगह वह इस तरह की बातें करता है।"

"बहनजी, मर्द के सामने किसीका वस चलता है?" काशी की आवाज़ और भीग गई।

"तो तू क्यों उससे नहीं कहती कि...?" कहते-कहते मनोरमा ने अपने को रोक लिया। उसे याद आया कि कुछ दिन हुए एक बार सुशील की चिट्ठी आने पर काशी उससे इसी तरह की बातें पूछती रही थी जो उसे अच्छी नहीं लगी थीं। काशी ने कई सवाल पूछे थे—कि बाबूजी आप इतना कमाते हैं तो उससे नौकरी क्यों कराते हैं? कि उनके अभी तक कोई बच्चा-अच्चा क्यों नहीं हुआ? और कि वह अपनी तनखाह अपने ही पास रखती है या बाबूजी को भी कुछ भेजती है! तब उसने काशी की बातों को हंसकर टाल दिया था, मगर अपने अन्दर उसे महसूस हुआ था कि उसके मन की कोई बहुत कमज़ोर सतह उन बातों से छू गई है और उसका मन कई दिन उदास रहा था।

"रोटी ले आऊं ?" काशी ने आवाज़ को थोड़ा सहेजकर पूछा।

"नहीं, मुझे अभी भूख नहीं है," मनोरमा ने काफी मुलायम स्वर में कहा जिससे काशी को विश्वास हो जाए कि अब वह बिलकुल नाराज़ नहीं है। "जब भूख लगेगी, मैं खुद ही निकालकर खा लूंगी। तू जाकर अपने यहां का काम पूरा कर ले, मजुश्या अब आनेवाला ही होगा। आखिरी बस नौ बजे पहुंच जाती है।"

काशी चली गई तो भी मनोरमा खंभे का सहारा लिए काफी देर खड़ी रही। हवा तेज़ हो गई थी। उसे अपने मन में बेचैनी महसूस होने लगी। उसे वे दिन याद आए जब ब्याह के बाद वह और सुशील साथ-साथ पहाड़ों पर घूमा करते थे। उन दिनों लगता था कि उस रोमांच के सामने दुनिया की हर चीज़ हेच है। सुशील उसका हाथ भी छू लेता तो शरीर में एक ज्वार उठ आता था और रोयां-रोयां उस ज्वार में बह चलता था। देवदार के जंगल की सारी सरसराहट जैसे शरीर में भर जाती थी। अपने को उसके शरीर में खो देने के बाद जब सुशील उससे दूर हटने लगता तो वह उसे और भी पास कर लेना चाहती थी। वह कल्पना में अपने को एक छोटे-से बच्चे को अपने में लिए हुए देखती और पुलकित हो उठती। उसे आश्चर्य होता कि क्या सचमुच एक हिलती-डुलती काया उसके शरीर के अंदर से जन्म ले सकती है। कितनी बार वह सुशील से कहती थी कि वह आश्चर्य को अपने अंदर अनुभव करके देखना चाहती है। मगर सुशील इसके हक में नहीं था। वह नहीं चाहता था कि अभी कुछ साल वे एक बच्चे को घर में आने दें। उससे एक तो उसका फिगर खराब होने का डर था, फिर उसकी नौकरी का भी सवाल था। सुशील नहीं चाहता था कि वह नौकरी छोड़कर बस घर-गृहस्थी के लायक ही हो रहे। साल-छः महीने में सुशील को अपनी बहन उम्मी का ब्याह करना था। उसके दो छोटे भाई कॉलिज में पढ़ रहे थे। उन दिनों उनके लिए एक-एक पैसे की अपनी कीमत थी। वह कम से कम चार-पांच साल एहतियात से चलना चाहता था। हज़ार चाहने पर भी वह सुशील के सामने हठ नहीं कर सकी थी। मगर जब भी सुशील के हाथ उसके शरीर को सहला रहे होते तो एक अजान शिशु उसकी बांहों में आने के लिए मचलने लगता। वह जैसे उसकी किलकारियां सुनती और उसके कोमल शरीर के स्पर्श का अनुभव करती। ऐसे क्षणों में कई बार सुशील का चेहरा

उसके लिए बच्चे का चेहरा बन जाता और वह उसे अच्छी तरह अपने साथ सटा लेती। उसका मन होता कि उसे थपथपाए और लोरियां दे।

सुशील की चिट्ठी आए इस बार बहुत दिन हो गए थे। उसने उसे लिखा भी था कि वह जल्दी जवाब दिया करे, क्योंकि उसकी चिट्ठी न आने से अपना अकेलापन उसके लिए असह्य हो जाता है। कई दिनों से वह सोच रही थी कि सुशील को दूसरी चिट्ठी लिखे, मगर स्वाभिमान उसे इससे रोकता था। क्या सुशील को इतनी फ़ुर्सत भी नहीं थी कि उसे कुछ पंक्तियां ही लिख दे?

हवा का तेज़ झोंका आया। देवदारों की सरसराहट कई-कई वादियां पार करती दूर के आकाश में जाकर खो गई। सामने की पहाड़ी के साथ-साथ रोशनी के दो दायरे रेंगते आ रहे थे। शायद पठानकोट से आखिरी बस आ रही थी। चांदनी में गेट की मोटी सलाखें चमक रही थीं। हवा धक्के दे-देकर जैसे गेट का ताला तोड़ देना चाहती थी। मनोरमा ने एक लंबी सांस ली और अंदर की चल दी। वह अपने को उस समय रोज़ से कहीं ज़्यादा अकेली महसूस कर रही थी।

अगली शाम मनोरमा घूमकर लौटी, तो कम्पाउण्ड में दाखिल होते ही ठिठक गई। काशी के क्वार्टर से बहुत शोर सुनाई दे रहा था। अजुध्या ज़ोर से गाली बकता हुआ काशी को पीट रहा था। काशी गला फाड़-फाड़कर रो रही थी। मनोरमा गुस्से से भन्ना उठी। कमेटी के नियम के मुताबिक किसी मर्द को स्कूल की चारदीवारी में रात को ठहरने की इजाज़त नहीं थी। उसने ख़ास रियायत करके उसे वहां ठहरने की इजाज़त दी थी। और वह आदमी था कि वहां रहकर इस तरह की हरकत कर रहा था! मनोरमा का ध्यान काशी को पड़ती मार की तरफ़ नहीं गया, इसी तरफ़ गया कि जो कुछ हो रहा है, उसमें स्कूल की बदनामी है और स्कूल की बदनामी का मतलब है हेड-मिस्ट्रेस की बदनामी...।

वह तेज़ी से क्वार्टर की सीढ़ियां चढ़ गई। खट्-खट्-खट्—उसके सैंडिल लकड़ी के ज़ीने पर आवाज़ कर उठे। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। काशी को बुलाकर कहे कि अजुध्या को फ़ौरन वहां से भेज दे? या अजुध्या को ही बुलाकर डांटे और कहे कि वह सुबह होने तक वहां से

चला जाए ?

बरामदे में पैर रखते ही उसने देखा कि कुन्ती एक कोने में सहमी-सी बैठी है और डरी हुई आंखों से नीचे की तरफ देख रही है। जैसे उसकी मां को पड़ती मार की चोट उसे भी लग रही हो। मनोरमा सोच नहीं सकी कि वह लड़की उस वक्त उसके क्वार्टर में क्यों बैठी है।

"क्या बात है ?" उसने अपना गुस्सा दबाकर पूछा।

"मा ने कहा था आपको रोटी खिला दूं···।" कुन्ती उसकी तरफ इस तरह डरी-डरी आंखों से देखने लगी जैसे उसे आशंका हो कि बहनजी अभी उसे बांह से पकड़ लेंगी और पीटने लगेंगी।

"तू मुझे रोटी खिलाएगी ?"

कुन्ती ने उसी डरे हुए भाव से सिर हिला दिया।

"तुम्हारे क्वार्टर में यह क्या हो रहा है ?" मनोरमा ने ऐसे पूछा जैसे जो हो रहा था, उसके लिए कुन्ती भी कुछ हद तक उत्तरदायी हो। कुन्ती के होंठ फड़कने लगे और दो बूंदें आंखों से नीचे बह आईं।

"वह किस बात के लिए तेरी मा को पीट रहा है ?" मनोरमा ने फिर पूछा।

कुन्ती ने कमीज से आंखें पोंछी और अपनी रुलाई दबाए हुए बोली "उसने मां के ट्रंक से सारे पैसे निकाल लिए हैं। मां ने उसका हाथ रोका, तो उसे पीटने लगा।"

"इस आदमी का दिमाग खराब है !" मनोरमा गुस्से से भड़क उठी। "अभी यहां से निकालकर बाहर करूंगी तो इसके होश दुरुस्त हो जाएंगे।"

कुन्ती कुछ देर सुबकती रही। फिर बोली, "कहता है, मां ने ठेकेदारों से अलग से पैसे ले-लेकर अपने पास जमा किए हैं। इस बार उसने दो सौ में ठका दिया है। मां के पास अपने साठ-सत्तर रुपये थे। वे सब उसने ले लिए हैं।"

कुन्ती के भाव में कुछ ऐसी दयनीयता थी कि मनोरमा ने उसके मैले कपड़ों की चिन्ता किए बिना उसे अपने से सटा लिया।

"रोती क्यों है ?" उसने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा। "मैं अभी उससे तेरी मा के रुपये ले दूंगी। तू चल अंदर।"

रसोईघर में जाकर मनोरमा ने खुद कुन्ती का मुंह धो दिया और मोढ़ा

लेकर बैठ गई। कुन्ती ने प्लेट में रोटी दे दी, तो वह चुपचाप खाने लगी। वही खाना काशी ने बनाया होता, तो वह गुस्से से चिल्ला उठती। सब चपातियों की सूरतें अलग-अलग थीं, और वे आधी कच्ची और आधी जली हुई थीं। दाल के दाने पानी से अलग थे। मगर उस वक्त वह मशीनी ढंग से रोटी के कौर तोड़ती और दाल में भिगोकर निगलती रही—उसी तरह जैसे रोज़ दफ्तर में बैठकर कागज़ों पर दस्तखत करती थी, या अध्यापिकाओं की शिकायतें सुनकर उन्हें जवाब देती थी। कुन्ती ने बिना पूछे एक और रोटी उसकी प्लेट में डाल दी, तो वह थोड़ा चौंक गई।

"नहीं, और नहीं चाहिए," कहते हुए उसने इस तरह हाथ बढ़ा दिया, जैसे रोटी अभी प्लेट में पहुँची न हो। फिर अनमने भाव से छोटे-छोटे कौर तोड़ने लगी।

नीचे शोर बन्द हो गया था। कुछ देर बाद गेट के खुलने और बन्द होने की आवाज़ सुनाई दी। उसने सोचा कि अजुध्या कहीं बाहर जा रहा है। कुन्ती रोटीवाला डब्बा बंद कर रही थी। वह उससे बोली, "नीचे जाकर अपनी माँ से कह देना कि गेट को वक्त से ताला लगा दे। रात-भर गेट खुला न रहे।"

कुन्ती चुपचाप सिर हिलाकर काम करती रही।

"और कहना कि थोड़ी देर में ऊपर हो जाए।"

उसका स्वर फिर रूखा हो गया था। कुन्ती ने एक बार इस तरह उसकी तरफ देखा जैसे वह उसकी किताब का एक मुश्किल सबक हो जो बहुत कोशिश करने पर भी समझ में न आता हो। फिर सिर हिलाकर काम में लग गई।

रात को काफी देर तक काशी मनोरमा के पास बैठी रही। उसे इस बात की उतनी शिकायत नहीं थी कि अजुध्या ने उसके ट्रंक से उसके रुपये निकाल लिए, जितनी इस बात की थी कि अजुध्या तीन साल बाद आया भी तो बच्चों के लिए कुछ लेकर नहीं आया। वह उसे बताती रही कि उसकी सौत ने किसी मत से वशीकरण करा रखा है। तभी अजुध्या उसकी कोई बात नहीं टालता। वह जिस ज्योतिषी से पूछने गई थी, उसने उसे बताया था कि अभी सात साल तक वह वशीकरण नहीं टूट सकता। मगर उसने यह भी कहा था कि एक दिन ऐसा ज़रूर आएगा जब उसकी सौत के बच्चे उसके बच्चों का जूठा खाएंगे

और उनके उतरे हुए कपड़े पहनेगे। वह उसी दिन की शाम पर जी रही थी।

मनोरमा उसकी बातें सुनती हुई भी नहीं सुन रही थी। उसके मन में रह-रहकर यह बात कौंध जाती थी कि सुशील की चिट्ठी नहीं आई··· उसकी चिट्ठी गए महीने के करीब हो गया, मगर सुशील ने जवाब नहीं दिया···। उसके बालों की एक लट उड़कर माथे पर आ गई थी। वह हल्का-हल्का स्पर्श उसके शरीर में विचित्र-सी सिहरन भर रहा था। कुछ क्षणों के लिए वह भूल गई कि काशी उसके सामने बैठी है और बातें कर रही है। माथे की लट हिलती तो उसे लगता कि वह एक बच्चे के कोमल रोयों को छू रही है। उसे उन दिनों की याद आई जब सुशील की उंगलियां देर-देर तक उसके सिर के बालों से खेलती रहती थी, और बार-बार उसके होंठ उसके शरीर के हर धड़कते भाग पर झुक आते थे···। इस बार सुशील ने चिट्ठी लिखने में न जाने क्यों इतने दिन लगा दिए थे। रोज डाक से कितनी-कितनी चिट्ठियां आती थीं। मगर सारी डाक हेड मिस्ट्रेस के नाम की ही होती थी। कई दिनों से मनोरमा सक्सेना के नाम कोई भी चिट्ठी नहीं आई थी···। वह इस बार छुट्टियों के बाद आते हुए सुशील से कहकर आई थी कि जल्दी ही उसके लिए एक गर्म कोट का कपड़ा भेजेगी। उम्मी के लिए भी एक शाल भेजने को उसने कहा था। सुशील कहीं इसलिए तो नाराज नहीं था कि वह दोनों में से कोई भी चीज नहीं भेज पाई थी?

काशी उठकर जाने लगी, तो मनोरमा को फिर अपने अकेलेपन के एहसास ने घेर लिया। देवदार के जंगल की घनी सरसराहट, दूर की घाटी में रावी के पानी पर चमकती चांदनी और उसकी उनींदी आंखें—इन सबमें जैसे कोई अदृश्य सूत्र था। काशी बरामदे के पास पहुंच गई, तो उसने उसे वापस बुला लिया और कहा कि वह गेट को ठीक से ताला लगाकर सोए और जाकर बुन्नी को उसके पास भेज दे—आज वह वहां उसके पास सो रहेगी।

आधी रात तक उसे नींद नहीं आई। खिड़की से दूर तक खुला-निखरा आकाश दिखाई देता था। हवा का जरा-सा झोंका आता, तो चीड़ों और देवदारों की पंक्तियां तरह-तरह की नृत्य-मुद्राओं में बांहें हिलाने लगतीं। पत्तों और टहनियों पर से फिसलकर आती हवा का शब्द शरीर को इस तरह रोमांचित करता कि शरीर में एक जड़ता-सी छा जाती। कुछ देर वह खिड़की

की मिल पर सिर रखे चारपाई पर बैठी रही। क्षण-भर के लिए आँखें मुंद जाती, तो खिडकी की सिल सुशील की छाती का रूप ले लेती। उसे महसूस होता कि हवा उसे दूर, बहुत दूर लिए जा रही है—चीड़ो-देवदारों के जगल और रावी के पानी के उस तरफ...। जब वह खिडकी के पास से हटकर चारपाई पर लेटी, तो रोशनदान से छनकर आती चादनी का एक चौकोर टुकडा साथ की चारपाई पर सोई कुन्ती के चेहरे पर पड रहा था। मनोरमा चौक गई। कुन्ती पहले कभी उसे उतनी सुन्दर नही लगी थी। उसके पतले-पतले होठ आम की लाल-लाल नन्ही पत्तियों की तरह खुले थे। उसे और पास से देखने के लिए वह कुहनियों के बल उसकी चारपाई पर झुक गई। फिर सहसा उसने उसे चूम लिया। कुन्ती सोई-सोई एक बार सिहर गई।

मनोरमा तकिये पर सिर रखे देर तक छत की तरफ देखती रही। जब हल्की-हल्की नींद आखो पर छाने लगी, तो वह गेट के खुलने और बन्द होने की आवाज से चौंक गई। कुछ ही देर मे काशी के क्वार्टर से फिर अजुध्या के बड़बड़ाने की आवाज सुनाई देने लगी। वह उस समय शराब पिए हुए था। मनोरमा के शरीर मे फिर एक बार गुस्से की झुरझुरी उठी। उसने अच्छी तरह अपने को कम्बलो मे लपेटकर उस आवाज को भुला देने का प्रयत्न किया। मगर नींद आ जाने पर भी वह आवाज उसके कानों मे गूजती रही...।

दो दिन बाद अजुध्या चला गया, तो मनोरमा ने आराम की सास ली। उसे रह-रहकर लगता था कि किसी भी क्षण वह अपने पर काबू खो देगी, और चपरासी से धक्के दिलाकर उस आदमी को स्कूल के कम्पाउड से निकलवा देगी। वह आदमी शक्ल से ही कमीना नजर आता था। उसके बड़े-बड़े मैले दात, काले होंठ और खूंखार जानवर जैसी चुभती आखें देखकर लगता था कि उस आदमी को ऐसी शक्ल के लिए ही उम्र-कैद की सजा होनी चाहिए। उसके चले जाने के बाद उसका मन काफी हल्का हो गया। दफ्तर के कुछ काम जो वह कई दिनो से टाल रही थी, उसने उसी दिन बैठकर पूरे कर दिए। उस दिन शाम की डाक से उसे सुशील की चिट्ठी भी मिल गई।

उसने चिट्ठी दफ्तर मे नही खोली। स्टेनो से और चिट्ठियो का डिक्टेशन अगले दिन लेने के लिए कहकर क्वार्टर मे चली आई। चारपाई पर बैठकर उसने पेपर नाइफ से धीरे-धीरे लिफाफा खोला—जैसे उसे चोट न पहुचाना

अगले दिन से उसने खाने-पीने में कई तरह की कटौतियां कर दीं। काशी से कह दिया कि दूध वह सिर्फ चाय के लिए ही लिया करे और दाल-सब्ज़ी में घी बहुत कम इस्तेमाल किया करे। बिस्कुट और फल भी उसने बंद कर दिए। कुछ दिन तो बचत के उत्साह में निकल गए, मगर फिर उसे अपने स्वास्थ्य पर इन कटौतियों का असर दिखाई देने लगा। दो बार क्लास में पढ़ाते हुए उसे चक्कर आ गया। मगर उसने अपना हठ नहीं छोड़ा। उस महीने की तनख्वाह मिलने पर उसने शाल के लिए चालीस रुपये अलग निकालकर रख दिए। रुपये रखते समय उसके चेहरे का भाव ऐसा था जैसे सुशील उसके सामने खड़ा हो और वह उसे चिढ़ाना चाहती हो कि देख लो, इस तरह की बचत से शाल और कोट के कपड़े खरीदे जाते हैं। उन दिनों उसके स्वभाव में वैसे भी कुछ चिड़चिड़ापन आ गया था। वह बात-बेबात हर एक पर झल्ला उठती थी।

एक दिन स्कूल जाने से पहले वह आईने के सामने खड़ी हुई, तो कुछ चौंक गई। उसे लगा कि उसके चेहरे का रंग काफी पीला पड़ गया है। उस दिन दफ्तर में बैठे हुए उसके सिर में सख्त दर्द हो आया और वह बारह बजे से पहले ही उठकर क्वार्टर में आ गई। बरामदे में पहुंचकर उसने देखा कि काशी उसके पैरों की आवाज सुनते ही जल्दी से अलमारी बंद करके चूल्हे की तरफ गई है। उसने रसोईघर में जाकर अलमारी खोल दी।

घी का डब्बा खुला पड़ा था और उसमें उंगलियों के निशान बने थे। मनोरमा ने काशी की तरफ देखा। उसके मुंह पर कच्चे घी की कनियां लगी थीं और वह ओट करके अपनी उंगलियां दोपट्टे से पोंछ रही थी। मनोरमा एकदम आपे से बाहर हो गई। पास जाकर उसने उसे चोटी से पकड़ लिया।

"चोट्टी!" उसने चिल्लाकर कहा। "मैं इसीलिए सूखी सब्ज़ी खाती हूं कि तू कच्चा घी हजम किया करे? शरम नहीं आती कमजात? जा, अभी निकल जा यहां से। मैं आज से तेरी सूरत भी नहीं देखना चाहती।" उसने उसकी पीठ पर एक लात जमा दी। काशी औंधे मुंह गिरने को हुई, मगर अपने हाथों के सहारे संभल गई। पल-भर वह दर्द से आंखें मूंदे रही। फिर उसने मनोरमा के पैर पकड़ लिए। मुंह से उससे कुछ नहीं कहा गया।

"मैं तुझे चौबीस घंटे का नोटिस दे रही हूं," मनोरमा ने पैर छुड़ाते हुए कहा। "कल इस वक्त तक स्कूल का क्वार्टर खाली होना जाना चाहिए। सुबह ही क्लर्क

तेरा हिसाब कर देगा। उसके बाद तूने इस कम्पाउंड में कदम भी रख
और वह हटकर वहां से जाने लगी। काशी ने बढ़कर फिर उसके
लिए।

"बहनजी, पैर छू रही हूं, माफी दे दो," उसने मुश्किल से कहा।
ने फिर भी पैर झटके से छुड़ा लिए। उसका एक पैर पीछे पड़ी चायदानी
लगा। चायदानी टूट गई। बिखरते टुकड़ों की आवाज़ ने क्षण-भर के लि
को स्तब्ध कर दिया। फिर मनोरमा ने अपना निचला होंठ काटा और दन
हुई वहां से निकल गई। कमरे में आकर उसने माथे पर बाम लगाया और
मुंह लपेटकर लेट गई।

शाम की डाक से फिर सुशील की चिट्ठी मिली। उसमें वही सब बातें
उम्मी की सगाई हो गई थी। पिछले इतवार वे लोग उस लड़के के साथ
नेक पर गए थे। उम्मी ने एक कोने में कुछ पंक्तियां लिखकर खुद अपनी शाल
लए अनुरोध किया था। साथ यह भी लिखा था कि भाभी को सब लोग बहु
हुत याद करते हैं। पिकनिक के दिन तो उन्होंने उसे बहुत ही मिस किया।

चिट्ठी पढ़ने के बाद वह बड़े राउंड पर घूमने निकल गई। मन में बहु
झलाहट भर रही थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह झुंझलाहट काशी
पर है, अपने पर या सुशील पर। न जाने क्यों उसे लगा कि सड़क पर कंकड़-पत्थर
पहले से कहीं ज्यादा है, और वह गोल सड़क न जाने कितनी लम्बी हो गई है।
रास्ते में दो बार उसे थककर पत्थरों पर बैठना पड़ा। घर से एक-डेढ़ फरलांग
पहले उसकी चप्पल टूट गई। वह रास्ता बहुत मुश्किल से कटा। उसे लगा न जाने
कब से वह घिसटती हुई उस गोल सड़क पर चल रही है और आगे भी न जाने
कब तक उसे इसी तरह चलते रहना है…।

गेट के पास पहुंचकर सुबह की घटना फिर उसके दिमाग में ताज़ा हो आई।
काशी के क्वार्टर में फिर खामोशी छाई थी। मनोरमा को एक क्षण के लिए ऐसा
महसूस हुआ कि काशी क्वार्टर खाली करके चली गई है, और उस बड़े कम्पा-
उंड में उस समय वह बिलकुल अकेली है। उसका मन सिहर गया। उसने कुन्ती
को आवाज़ दी। कुन्ती लालटेन लिए अपने क्वार्टर से बाहर निकल आई।

"तेरी मां कहां है ?"…

"क्या कर रही है ?"

"कुछ नहीं कर रही। बैठी है।"

मनोरमा ने देखा, काशी का क्वार्टर काफी खस्ता हालत में है। दरवाज़े का चौखट काफी कमज़ोर पड़ गया था जिससे दरवाज़ा निकलकर बाहर आ जाने को था। रोज़ वह उस क्वार्टर के सामने से कई-कई बार गुज़रती थी, रोज़ ही उस दरवाज़े को देखती थी, मगर पहले कभी उसका ध्यान उसपर नहीं रुका था।

"इस क्वार्टर में काफी मरम्मत की ज़रूरत है," कहकर वह जैसे क्वार्टर का मुआइना करने के लिए अंदर चली गई। काशी उसे देखते ही उठकर उसके पास आ गई। मनोरमा ने एक बार उसकी तरफ देख लिया मगर उससे कोई बात नहीं की। क्वार्टर की दीवारें पीली पड़कर अब स्याह होने लगी थीं। एक रोशनदान भी दीवार से निकलकर नीचे गिर आने को था। छत में चारों तरफ मकड़ी के जाले लगे थे जो आपस में मिलकर एक बड़े-से चंदोवे का रूप लिए थे। कमरे में जो थोड़ा-बहुत सामान था, वह इधर-उधर अस्त-व्यस्त पड़ा था। एक तरफ तीन बच्चे एक ही थाली में रोटी खा रहे थे। वही पानी जैसी दाल थी जो एक दिन कुन्ती ने उसके लिए बनाई थी और अलग-अलग सूरतों वाली सूखी रोटियाँ'''। उसे देखकर बच्चों के हाथ और मुंह चलने बंद हो गए। सबसे छोटा लड़का जो करीब चार साल का था, लोई में लिपटा एक कोने में लेटा था। उसकी आँखें मनोरमा के साथ-साथ कमरे में घूम रही थीं।

"परमू को क्या हुआ है ? बीमार है ?" मनोरमा ने बिना काशी की तरफ देखे जैसे दीवार से पूछा और बच्चे के पास चली गई। परमू अपने पैर के अंगूठे की सीध में देखने लगा।

"इसे सूखा हो गया है," काशी ने धीरे से कहा।

मनोरमा ने बच्चे के गालों को सहलाया और उसके सिर पर हाथ फेर दिया।

"डाक्टर को दिखाया है ?" उसने पूछा।

"दिखाया था," काशी ने कहा। "उसने दस टीके बताए हैं। दो-दो रुपये का एक टीका आता है।" बोलते-बोलते उसका गला भर आया।

"लगवाए नहीं ?" अब मनोरमा ने उसकी तरफ देखा।

"कैसे लगवाती ?" काशी की आँखें ज़मीन की तरफ झुक गईं। "जितने

रुपये थे वे सब तो वह निकालकर ले गया था।···मैं इसे कांसे की कटोरी मलती हूं। कहते हैं, उससे ठीक हो जाता है।"

बच्चा बिटर-बिटर उन दोनों की तरफ देख रहा था। मनोरमा ने एक बार फिर उसके गाल को सहला दिया और बाहर को चल दी। कुन्ती दहलीज़ के पास खड़ी थी। वह रास्ता छोड़कर हट गई।

"इस क्वार्टर मे अभी सफेदी होनी चाहिए," मनोरमा ने चलते-चलते कहा, "यहां की हवा में तो अच्छा-भला आदमी बीमार हो सकता है।"

काशी के क्वार्टर से निकलकर वह धीरे-धीरे अपने क्वार्टर का ज़ीना चढ़ी। टक-टक की गूंजती आवाज़, अकेला बरामदा, कमरा। कमरे में जो चीज़ें वह बिखरी छोड़ गई थी, वे सब करीने से रखी थीं। बीच की मेज़ पर रोटी की प्लेट ढककर रख दी गई थी। केतली में पानी भरकर स्टोव पर रख दिया गया था। कोट उतारकर शाल ओढ़ते हुए उसने बरामदे में पैरों की आवाज़ सुनी। काशी चुपचाप आकर दरवाज़े के पास खड़ी हो गई।

"क्या बात है?" मनोरमा ने रूखी आवाज़ में पूछा।

"रोटी खिलाने आई हूं," काशी ने धीमी ठहरी हुई आवाज़ में कहा। "चाय का पानी भी तैयार है। कहें तो पहले चाय बना दूं।"

मनोरमा ने एक बार उसकी तरफ देखा और आंखें हटा लीं। काशी ने कमरे में आकर प्लग का बटन दबा दिया। पानी आवाज़ करने लगा।

मनोरमा एक किताब लेकर बैठ गई। थोड़ी देर में काशी चाय की प्याली बनाकर उसके पास ले आई। मनोरमा ने किताब बन्द कर दी और हाथ बढ़ाकर प्याली ले ली। काशी के होंठों पर सूखी-सी मुसकराहट आ गई।

"बहनजी, कभी नौकर से गलती हो जाए, तो इतना गुस्सा नहीं करते," उसने कहा।

"रहने दे ये सब बातें," मनोरमा ने झिड़ककर कहा। "आदमी से एक बार बात कही जाए तो उसे लग जाती है। मगर तेरे जैसे लोग भी हैं जिन्हें कुछ कहो छूता ही नहीं। बच्चे सूखी दाल-रोटी खाकर रहते हैं और मां को खाने को कबाब चाहिए। ऐसी मां किसीने नहीं देखी होगी।"

काशी का चेहरा ऐसे हो गया जैसे किसीने उसे अन्दर से चीर दिया हो। उसकी आंखों में आंसू भर आए।

"बहनजी, इन बच्चों को पालना न होता, तो मैं आज आपको जीती नज़र न आती," उसने कहा। "एक अभागा भूखे पेट में जन्मा था, वह भूखे से पड़ा है। अब दूसरा भी उसी तरह आएगा तो उसे जाने क्या रोग लगेगा!"

मनोरमा को जैसे किसीने ऊंचे से धकेल दिया। चाय के घूंट भरते हुए भी उसके शरीर में कई ठंडी सिहरनें भर गई। वह पल-भर चुप रहकर काशी की तरफ देखती रही।

"तेरे पैर फिर भारी हैं?" उसने ऐसे पूछा जैसे उसे इसपर विश्वास ही न आ रहा हो।

काशी के चेहरे पर जो भाव आया उसमें नई ब्याहता का-सा संकोच भी था और एक हताश भुंझलाहट भी। उसने सिर हिलाया और एक ठण्डी सांस लेकर दरवाज़े की तरफ देखने लगी। मनोरमा को पल-भर के लिए लगा कि मजुष्या उसके सामने खड़ा मुसकरा रहा है। उसने चाय की प्याली पीकर रख दी। काशी प्याली उठाकर बाहर ले गई। मनोरमा को लगा कि उसकी बाहें ठंडी होती जा रही हैं। उसने शाल को पूरा खोलकर अच्छी तरह लपेट लिया। काशी बाहर से लौट आई।

"रोटी कब खाएंगी?" उसने पूछा।

मगर मनोरमा ने जवाब देने की जगह उससे पूछ लिया, "डाक्टर ने कहा था कि दस टीके लगवाने से बच्चा ठीक हो जाएगा?"

काशी ने खामोश रहकर सिर हिलाया और दूसरी तरफ देखने लगी। "मैं तुझे बीस रुपये दे रही हूं," मनोरमा ने कुरसी से उठते हुए कहा। "कल जाकर टीके ले आना।"

उसने ट्रंक से अपना बटुआ निकाला और बीस रुपये निकालकर मेज़ पर रख दिए। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसकी बाहें इस कदर ठंडी क्यों हो गई हैं। उसने बाहों को अच्छी तरह अपने में सिकोड़ लिया।

खाना खाने के बाद वह देर तक बरामदे में कुर्सी डालकर बैठी रही। उसे महसूस हो रहा था कि उसके सारे शरीर में एक अजीब-सी सिहरन दौड़ रही है। वह ठीक से नहीं समझ पा रही थी कि वह सिहरन क्या है और क्यों शरीर के हर रोम में उसका अनुभव हो रहा है। जैसे उस सिहरन का सम्बन्ध किसी बाहरी चीज़ से

न होकर उसके अपने-आप से ही था; जैसे उसीकी वजह से उसे अपना-आप बिल-
कुल खाली लग रहा था। हवा बहुत तेज़ थी और देवदार का जंगल जैसे सिर
धुनता हुआ कराह रहा था। हुआं···हुआं···हुआं···हवा के झोंके उमड़ती लहरों
की तरह शरीर को घेर लेते थे और शरीर उनमें बेबस-सा हो जाता था। उसने
शाल को कसकर बाहों पर लपेट लिया। लोहे का गेट हवा के धक्के खाता हुआ
आवाज़ कर रहा था। पल-भर के लिए उसकी आंखें मुंद गईं, तो उसे लगा कि
अजुध्या अपने स्याह होंठ खोले उसके सामने खड़ा मुसकरा रहा है और लोहे का
गेट चीखता हुआ धीरे-धीरे खुल रहा है। उसने सिहरकर आंखें खोल लीं और
अपने माथे को छुआ। माथा बर्फ की तरह ठण्डा था। वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई
उठते हुए शाल कंधे से उतर गया और साड़ी का पल्ला हवा में फड़फड़ाने लगा
बालों की कई लटें उड़कर सामने आ गईं और उसके माथे को सहलाने
लगी।

"कुन्ती!" उसने कमजोर स्वर में आवाज़ दी। आवाज़ हवा के समन्दर में
कागज की नाव की तरह डूब गई।

"कुन्ती!" उसने फिर आवाज़ दी। इस बार काशी अपने क्वार्टर से बाहर
निकल आई।

"कुन्ती जाग रही हो, तो उसे मेरे पास भेज दे। आज वह यहीं सो रहेगी,"
कहते हुए मनोरमा को महसूस हुआ कि वह किस हद तक काशी और उसके
च्चों पर निर्भर करती है, और उन लोगों का पास होना उसके लिए कितना
रूरी है।

"कुन्ती सो गई है, मगर मैं अभी उसे जगाकर भेज देती हूं," कहकर काशी
ने क्वार्टर में जाने लगी।

"सो गई है, तो रहने दे। जगाकर भेजने की ज़रूरत नहीं।" मनोरमा बरा-
ी कमरे में आ गई। कमरे में आकर उसने दरवाज़ा इस तरह बन्द किया जैसे
एक ऐसा आदमी हो जिसे वह अन्दर आने से रोकना चाहती हो। वह अपने
त कमज़ोर महसूस कर रही थी। रज़ाई ओढ़कर वह बिस्तर पर लेट गई।
आंखें छत की कड़ियों पर से फिसलने लगीं। वह आंखें बंद नहीं करना
थी। जैसे उसे डर था कि आंखें बन्द करते ही अजुध्या के मुसकराते हुए
ठ फिर सामने आ जाएंगे। वह अपना ध्यान बंटाने के लिए सोचने लगी कि

सुबह सुशील को चिट्ठी में क्या-क्या लिखना है। लिख दे कि यहां अकेली रहकर उसे डर लगता है और वह उसके पास चली आना चाहती है? और···और भी जो इतना कुछ वह महसूस करती है, क्या वह सब उसे लिख पाएगी? लिखकर सुशील को समझा सकेगी कि उसे अपना-आप इतना खाली-खाली क्यों लगता है, और वह अपने इस अभाव को भरने के लिए उससे क्या चाहती है?

माथे पर आई लटें उसने हटाई नहीं थीं। वह हल्का-हल्का स्पर्श उसकी चेतना में उतर रहा था। कुछ ही देर में वह महसूस करने लगी कि साथ की चारपाई पर एक नन्हा-सा बच्चा सोया है, उसके नन्हे-नन्हे होंठ आम की पत्तियों की तरह खुले हैं, और उसके सिर के नरम बाल उड़कर मुंह पर आ रहे हैं। वह कुहनी के बल होकर उस बच्चे को देखती रही···और फिर जैसे उसे चूमने के लिए उसपर झुक गई।

चलते-चलते लिखा था—"मुझे तुमसे मुहब्बत है।" उसके नीचे टिप्पणी की गई थी—"मेरी जान, आप नर हैं या मादा ?"

इनके अलावा और भी कई तरह की लिपियां थीं—कुछ अस्पष्ट और उलझे हुए नाम, कुछ आड़ी-तिरछी लकीरें और कुछ अनिश्चित-सी आकृतियां, जिनके तरह-तरह के अर्थ निकल सकते थे। जाने कब-कब, किस-किसने, किस-किस उद्देश्य से वे आकृतियां बनाई थीं। एक गोल चेहरा था जो चेहरा न होकर किसी जानवर का पेट भी हो सकता था। एक ऊदबिलाव की आख थी जो सारी दीवार पर अपनी मनहूस छाया डाले थी और एक गहरा ज़ख्म था, जो दीवार को छीलने के असफल प्रयास में वहां बन गया था…।

सत्ते को न जाने क्यों उस दीवार से चिढ़ हो रही थी। उसकी आखें जब-जब उन शब्दों और आकृतियों पर पड़तीं थीं, एक अव्यक्त-सी झुरझुरी उसके शरीर में भर जाती थी। दीवार की एक-एक लकीर में उसे कुछ रहस्य दिखाई देने लगता था और उसका मन होता था कि किसी तरह वे सब लिपियां मिट जाएं और वह दीवार फिर से कोरी हो जाए। कम से कम उस मनहूस आख को तो वह ज़रूर वहां से मिटा देना चाहता था जो उसे लगातार अपनी ही तरफ घूरती हुई लगती थी। जाने किसकी आख थी वह, और क्यों वहां बनाई गई थी !

उस आख को सामने से हटाने के लिए ही वह चारपाई से उठकर खिड़की के पास चला गया। नीचे गली में कोई हलचल नहीं थी—जो बच्चे दिन-भर वहां खेला करते थे और जिनकी वजह से अक्सर वह परेशान हो उठता था, वे भी उस समय वहां नहीं थे। सामने घर की टूटी हुई नाली का पानी ही आवाज़ के साथ गली में गिर रहा था जिससे गली बिलकुल निर्जीव नहीं लगती थी। पास ही कूड़े का ढेर था जो एक चिमगादड़ की तरह अपनी जगह से चिमटा हुआ था।

ज़ीने पर पैरों की आहट और प्याली में चम्मच हिलाने की आवाज़ ने उसका ध्यान गली से हटा दिया, मगर वह खिड़की के पास से नहीं हटा। वह यह नहीं जतलाना चाहता था कि उसने वह आवाज़ सुनी है, या उसे किसीके कमरे में आने का पता है। उसे उस आवाज़ में एक चुनौती, एक अवज्ञा-सी महसूस हो रही थी—जैसे कि वह आवाज़ केवल उसे दुखाना और हीन करना चाहती हो। कुछ क्षण वह आवाज़ थोड़े फासले पर रुकी रही, फिर उसके कानों के बहुत पास आ गई।

"चाय ले लीजिए···।"

उसने घूमकर देखा कि राजो चाय की प्याल
उसकी आँखें रो-रोकर सूज गई हैं और उसके चेह
गई है। वह जैसे बहुत कठिनाई से अपनी आवाज़ क
भर उसे देखता रहा और फिर चुपचाप जाकर चार

"चाय ले लीजिए," राजो ने उसके पास जाकर

"तुझसे किसने चाय लाने को कहा है ?" सत्ते
आवाज जरूरत से ज्यादा तीखी है।

"बी जी ने कहा था कि आपकी चाय का वक्त हो ग

"वक्त हो गया है, तो वे आप आकर चाय नहीं दे स

"उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं दे दूं," कहते हुए रा
खिड़की के पास के आले में रख दी और चुपचाप नीचे को

"सुन !" वह दहलीज लांघने लगी, तो सत्ते लगभग चि
रुक गई और बिना कुछ कहे आँखें झुकाए वहीं खड़ी रही।

"तेरा रोना अभी बन्द होगा कि नहीं।"

राजो की आँखों में पल-भर के लिए एक चमक आ गई
तन गई।

'मैं रो कहां रही हूं ?' उसने कहा।

"रो नहीं रही, तो मैं क्या यूं ही बक रहा हूं ? मुझे तेरी
आती ?"

राजो की आंखों की चमक थोड़ी बढ़ गई और उसने अ
लिया।

"बोलती क्यों नहीं ?" सत्ते फिर गरजा। "किसीकी बात क
असर भी होना है ?"

राजो की आंखें उसके चेहरे से हट गईं और वह दहलीज़ ला
नीचे को चल दी।

"सुन !" सत्ते गुस्से के मारे चारपाई से उठ खड़ा हुआ। "मैं यह
ऊंगा।"

राजो बिना

"मैं कह रहा हूं यह प्याली यहां से उठाकर ले जा।" सत्ते मारे गुस्से के बेहाल-सा होकर बोला। मगर राजो तब तक नीचे पहुंच चुकी थी। वह भन्नाता हुआ आले के पास पहुंचा। प्याली उठाकर कुछ पल हतप्रभ-सा चाय को देखता रहा, फिर एक झटके से चाय उसने नीचे गली में फेंक दी। मन हुआ कि प्याली को भी साथ ही पटक दे, मगर प्याली की कीमत का ध्यान आ जाने से उसने हाथ को रोक लिया। फिर ज़ीने के पास जाकर उसने ज़ोर से कहा, "किसीको मेरे पास ऊपर आने की जरूरत नहीं। मुझे आज चाय या खाना कुछ भी नहीं चाहिए। खामखाह सब लोग दिन-भर मुझे परेशान करते रहते हैं···!"

कमरे में आकर उसने ज़ोरसे दरवाजा बन्द कर लिया। चारपाई पर बैठते ही दीवार की लिपियां फिर उसके सामने आ गई—"मैं अपनी रूह यहीं छोड़े जा रही हूं—शीरीं मुमताज, १३-८-४७।" "मेरी जान, आप नर है या मादा?" बी, आई, एल्, एल्, यू, और वह ऊद-बिलाव की आख।

वह दीवार जाने कितने साल पुरानी थी। कई जगह उसकी लकड़ी को घुन लग गया था। जब वह मकान बना था, जाने वह दीवार तब साथ ही बनी थी, या बाद में किसी किरायेदार ने अपनी सुविधा के लिए लकड़ी का पार्टीशन डलवाकर उस बड़े कमरे को दो हिस्सों में बांट लिया था। तख्तों के बीच की दरारों से साथ के हिस्से की रोशनी नज़र आती थी। वह हिस्सा अब घर का फ़ालतू सामान रखने के काम आता था। जाने क्या-क्या चीज़ें वहां जमा थीं! खाली बोतलें, पुराने पीपे, फटे हुए बोरे, टूटी हुई कुरसियां, और कई तरह की टोकरियां, दरांतियां, कठौते और टीन का एक हमाम जो बरसों से पानी गरम करने के काम नहीं आया था। वह हिस्सा जैसे एक छोटा-सा कब्रिस्तान था जहां कितनी ही चीज़ें अपने पुराने इतिहास को अपने में समेटे न जाने कितने अरसे से दफ़न थीं। और इस हिस्से को उस हिस्से से अलग करती थी लकड़ी की वह दीवार···!

"दम्मो अर्थात् दमयन्ती···!"

यह दम्मो कौन थी? उसने अपना नाम दीवार पर क्यों लिखा था? वह उस घर में किन दिनों रहती थी? उसकी शक्ल-सूरत कैसी थी? उम्र कितनी थी? अब वह कहां होगी? आज अगर आकर वह इस दीवार पर अपना नाम लिखा हुआ देखे, तो क्या उसे खुशी होगी? या उसके मुंह से उदासी की एक

लम्बी सांस निकल पडेगी ?···और यह बिल्लू, यह उस घर में कब रहता था ? उसे अपना नाम लिखने के लिए डेढ़ फुट रकबे की जरूरत क्यों पड़ी थी ? क्या वह इससे अपने शरीर के लम्बे-चौड़े डौलडौल को व्यक्त करना चाहता था, या अपने ठिगनेपन को छिपाना चाहता था ? और जिसने उसके नाम का अर्थ ब्लू ब्लैक कर दिया था, उसे उस बिल्लू से क्या चिढ़ थी ?···और शीरी मुमताज़ ? उसके सम्बन्ध में इतना तो निश्चित था कि वह विभाजन से पहले उस घर में थी— *विभाजन से दो दिन पहले तक थी।* क्या वह घर उसने १३-८४७ को ही छोड़ा था ? कैसे छोड़ा था ? और उसने यह क्यों लिखा था कि वह अपनी रूह यहीं *छोड़े जा रही है ? 'जाने' से उसका क्या अभिप्राय था ? उस घर से, उस शहर* से जाना या···? 'शीरी मुमताज़ उर्फ मुमताज़ महल !' वह लड़की अपने को मुमताज़ महल क्यों समझती थी ? क्या उसके जीवन में भी कोई ऐसा व्यक्ति था जिससे उसे आशा थी कि वह उसके बाद उसके लिए एक ताजमहल बनवाएगा या वह दीवार ही उसका ताजमहल थी ?

सत्ते ने होंठों को गीला किया और अपने घुघराले बालों में हाथ फेर लिया। उसे लग रहा था कि कोई बहुत बड़ी बात उसके मन में घुमड़ रही है, जिसे यदि वह बाहर व्यक्त कर सके, तो वह एक महान रचना का रूप ले सकती है। कितनी ही बार ऐसी बातें उसके मन में आती थीं, जिनसे वह सहसा चमत्कृत हो उठता था, परन्तु जिन्हें बाहर व्यक्त करने का उसे अवसर ही नहीं मिलता था। यदि वह अपने मन की सब बातें लिख सकता, तो आज कितना बड़ा लेखक होता ! दुनिया में उसकी कितनी कद्र होती ! लोगों के उसके नाम कितने-कितने पत्र आते ! वह जिधर से जाता, लोगों की आंखें उसकी तरफ उठ जातीं और लोग पास आकर उसके हस्ताक्षर मांगते ! मगर जाने क्या बात थी कि जब वह लिखना चाहता था, तो उसके मन की बात कागज पर उतरती ही नहीं थी। हर बात जो मन में उमड़ती हुई बहुत बड़ी और महत्त्वपूर्ण लगती थी, कागज पर लिख देने से बहुत फीकी-सी हो जाती थी। कम से कम हरीश उसकी लिखी हुई चीजों को पढ़कर ऐसा ही भाव दिखलाता था जैसे उनमें कुछ भी सार न हो ! कभी-कभी उसे लगता था कि हरीश केवल ईर्ष्या के कारण ही ऐसा करता है, उसकी व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट उसकी अपनी हीनता को ही प्रमाणित करती है ! अन्यथा कभी तो हरीश ने उसकी किसी चीज की प्रशंसा की होती ! एक तरफ

वह था जो किसी जमाने में हरीश की लिखी हुई रद्दी से रद्दी चीज़ को पढ़कर भी उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहता था, ग्रौर दूसरी तरफ था वह ग्रादमी—हरीश—जिसके पास उसके लिए सिवाय एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट के कुछ नहीं था। क्या इसका कारण इतना ही नहीं था कि उस ग्रादमी को अपनी सनही सफलता का बहुत गुमान था? उसकी सफलता सतही सफलता ही तो थी। उसकी रचनाग्रों में गहराई कहां थी? उस बार एक समीक्षक ने किस बुरी तरह उसकी खबर ली थी? बखिये उधेड़कर रख दिए थे! बाद में लोगों से मिल-मिलाकर किसी तरह अपनी प्रशंसा लिखवा ली, तो फिर दिमाग ग्रासमान पर चढ़ गया! ग्राज वह स्वयं इस ग्रादमी की रचनाग्रों की समीक्षा लिखे, तो एक-एक को रूई की तरह धुनकर रख दे! मगर लिखने की तो ग्रब ग्रादत ही छूटती जा रही है। दरग्रसल दिमाग काम की वजह से इतना थका रहता है कि लिखना-लिखाना उससे नहीं हो पाता। पहले घर में शब्दकोश लेकर ग्रंग्रेज़ी की कविताग्रों से माथापच्ची करो, फिर जाकर तीन घंटे कॉलेज में उनके ग्रर्थ लड़कों को बताग्रो। ग्रगर साथ में रोटी कमाने की फ़िक्र न होती, ग्रौर इतनी थकान न रहा करती, तो वह ग्राज तक प्रतिष्ठित लेखक न माना जाता! यूनिवर्सिटी की परीक्षाग्रों में वह सदा सर्वप्रथम नहीं रहा था? वह कितनी व्यवस्था से ग्रपना काम किया करता था जबकि हरीश उन दिनों ठीक से काम न करने की वजह से ग्रध्यापकों के ताने ही सुना करता था। ग्रब हरीश ग्रावारा किस्म की ज़िंदगी बिताता है, नौकरी-ग्रौकरी नहीं करता, इसलिए लोग भी सोचने लगे हैं कि उसमें शायद कुछ विशेषता होगी ही। इस देश में लिखने वाले लोग हैं ही कितने! जो चार पंक्तियां लिख लेता है, वही ग्रपने को लेखक समझने लगता है। ग्रौर देशों में इस तरह के लोगों की बात भी नहीं पूछी जाती!

उसने उठकर ग्रलमारी खोली ग्रौर सिगरेटों का डिब्बा निकाल लिया। वे 'थ्री कासल्ज़' के सिगरेट उसने खास-खास मौकों पर पीने के लिए रखे थे। जब कभी मन बहुत परेशान होता था, तो वह उस डिब्बे को निकाल लिया करता था। उसने एक सिगरेट निकालकर ढीले-ढाले ढंग से मुंह में लगाया ग्रौर जली हुई माचिस को क्षण-भर देखते रहने के बाद उसे सुलगा लिया। मुंह से धुग्रां निकला, तो उसे लगा कि उसकी लचक में एक विशेषता है, जो वही पैदा कर

सकता है। यह सचक उसके अन्दर की कलात्मकता का प्रमाण है। यदि इस कलात्मकता को सही मार्ग देने के लिए वह समुचित प्रयत्न भी कर पाता…!

"बी, आई, एल्, एल्, यू, बिल्लू—उर्फ ब्लू ब्लैक!"

सेठी का चेहरा हंसी से फैल गया। उसे लगा कि उसे हरीश का वर्णन करना हो, तो वह कुछ ऐसे ही ढंग से करेगा। बिल्लू उर्फ ब्लू ब्लैक! उसने कठिनाई से अपनी हंसी को गले में रोके रखा। वह नहीं चाहता था कि हंसी की आवाज नीचे सुनाई दे, जिससे घर के लोग सोचें कि उसका गुस्सा उतर गया है। गुस्से की बात सोचने पर उसकी हंसी सचमुच गायब हो गई और उसके माथे पर लकीरें पड़ गईं, उसी आदमी की वजह से तो आज उसके घर में यह स्थिति पैदा हुई थी! कितना अच्छा होता जो कभी उसकी उस आदमी से दोस्ती न हुई होती और न ही वह उसे अपने घर में लाया होता!

आज उस आदमी की वजह से ही तो उसने राजो को पीट दिया था। आज दिन भर ही ऐसा मनहूस था कि सुबह से ही उसका सिर भन्नाया हुआ था। नींद खुलने पर उसे जो चाय मिली वह इतनी कड़वी थी कि मुंह के साथ साथ दिमाग का जायका भी बिगड़ गया। जीने के नीचे आते हुए एक सीढ़ी से पांव फिसल गया, जिससे बाईं कुहनी में चोट आ गई। उस सीढ़ी की मरम्मत के लिए वह कई दिनों से घर में सबसे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था। उसके बाद नहाकर कंघी करते हुए सहसा उसकी नजर उस पिटारी पर पड़ गई जिसमें कुछ चिट्ठियां एक रेशमी रूमाल में लपेटकर रखी हुई थीं। राजो के ट्रंक के बाहर वह पिटारी खुली हुई पड़ी थी—शायद उसे खोलने के बाद राजो को किसी काम से बाहर बुला लिया गया था और वह उसे वापस ट्रंक में रखना भूल गई थी। चिट्ठियों को देखने की ज्यादा उत्सुकता उसे इसलिए हो आई थी कि उन अक्षरों की बनावट को वह अच्छी तरह पहचानता था। एक समय था जब हर दूसरे-तीसरे दिन उसे हरीश की चिट्ठी आया करती थी। वह उसकी हर चिट्ठी बहुत चाव से घर के सब लोगों को पढ़कर सुनाता था। उन दिनों हरीश की उससे नई-नई मित्रता हुई थी और वह घर में उन चिट्ठियों की बहुत प्रशंसा किया करता था। यह शायद इसीका फल था कि आज उसे अपनी बहन को—उसी बहन को जिसे कभी न अपने किसी व्यवहार में वह अनेक बार… करता था—इस बुरी तरह पीट देना पड़ा था। राजो ने उसकी कई

आशा नहीं की थी कि वह उसके सामने इस तरह धृष्टता करेगी ···!

खुली हुई पिटारी के पास खड़ा होकर वह पल-भर स्तब्ध भाव से उन प्रसंगों को देखता रहा था—यहाँ तक कि पल-भर के लिए उसे लगा था कि उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है। न जाने क्या-क्या अकल्पित विचार एकसाथ उसके मस्तिष्क में कौंध गए थे। वह व्यक्ति कब से राजो के नाम चिट्ठियाँ लिख रहा था? राजो क्यों उन्हें इस तरह सँभालकर रखे हुए थी? क्या उन दोनों के बीच किसी तरह की घनिष्ठता स्थापित हो चुकी थी? कुछ अरसा पहले एक बार हरीश उसकी अनुपस्थिति में उस घर में आया और दो-एक दिन वहाँ रहा भी था। उन दिनों उस आदमी ने उसकी अनुपस्थिति का कोई अनुचित लाभ तो नहीं उठाया? यह क्या उसका अपना ही दोष नहीं था कि उसने ऐसा मौका आने दिया जब कि वह जानता था कि घर में राजो के पास बूढ़े माँ-बाप के सिवा कोई नहीं है और वे दोनों लड़की को लाड़ लड़ाने किसी भी हद तक जा सकते हैं ···!

उसने पिटारी उठा ली और उसे लिए हुए चुपचाप ऊपर अपने कमरे में चला आया। अधिकांश चिट्ठियाँ वही थीं जो हरीश ने पिछले कुछ वर्षों में स्वयं उसी के नाम लिखी थीं और जो उसने घर में पढ़कर सुनाई थीं। उनके अतिरिक्त दो-एक चिट्ठियाँ ऐसी भी थीं जो उसके पिता के नाम आई थीं और उनमें से एक में हरीश ने अपने आने की सूचना दे रखी थी और दूसरे में उनके आतिथ्य के लिए उन्हें धन्यवाद दिया था। हाँ, एक चिट्ठी थी—और वह चिट्ठी राजो के नाम ही लिखी गई थी—जिसके अन्त में 'और' के बाद तीन बिन्दु थे—कोई बात थी जो बिना लिखे उन बिन्दुओं द्वारा व्यक्त की गई थी। दूसरे पत्रों को देखते हुए उसके मन में एक खीझ और झुँझलाहट भर रही थी। परन्तु उन बिन्दुओं ने सन्देह का वास्तविक सूत्र देकर उस खीझ को एक गम्भीर भाव में बदल दिया था। वह देर तक उस पत्र को उलट-पलटकर देखता रहा था और उन बिन्दुओं के तरह-तरह के अर्थों की कल्पना करता रहा था···

कुछ देर के बाद वह पिटारी हाथ में लिए हुए फिर नीचे चला गया। और बाहर के कमरे में पहुँचकर उसने पिटारी वहाँ मेज पर रख दी। माँ जी और बाबूजी उस समय वहीं थे। उसने गम्भीर भाव से उन दोनों को देखते हुए राजो को भी वहाँ बुला लिया। राजो रसोईघर में खाना पका रही थी। दोनों

हाथों को दोपट्टे से पोंछती हुई वह आकर पास खड़ी हो गई।

"इस पिटारी में किसकी चिट्ठियां है?" उसने कई क्षण राजो की ओर ताकते रहने के बाद गम्भीर स्वर में पूछा।

राजो ने एक बार पिटारी की तरफ देखा और फिर हक्की-बक्की-सी उसका मुंह देखने लगी।

"मैं पूछता हूं किसकी चिट्ठियां हैं?"

बी जी उठकर पिटारी के पास आ गईं। बाबूजी अपनी कुरसी पर ही बैठे रहे—परन्तु उनकी आंखें किसी अज्ञात आशंका से फैल गईं।

"किसकी चिट्ठियां हैं, बताती क्यों नहीं?" बी जी ने राजो की बांह को थोड़ा झिंझोड़ दिया।

"आपके सामने पड़ी हैं, देख लीजिए किसकी चिट्ठियां हैं," राजो सहसा तीखे स्वर में बोली।

"तू नहीं बता सकती?" वह चिल्लाया। गुस्से से उसके माथे की नसें फड़क रही थीं।

"आपको पता है किसकी चिट्ठियां हैं। आप ही के नाम आई हुई चिट्ठियां हैं। मैंने संभालकर रख दी थीं कि शायद कभी आपको ज़रूरत पड़ जाए।"

"मेरे नाम और लोगों की भी तो चिट्ठियां आती हैं। उन सबको तू संभालकर क्यों नहीं रखती? यह एक ही आदमी ऐसा क्यों है जिसकी चिट्ठियां तुझे खास लगती हैं और जिन्हें संभालकर रखने की ज़रूरत महसूस होती है?"

"मैं सोचती थी कि ये एक लेखक की चिट्ठियां हैं, और वह आपका दोस्त भी है, इसलिए...।"

"वह लेखक है या क्या है, वह मैं सब जानता हूं, और यह भी जानता हूं कि ये चिट्ठियां तू संभालकर क्यों रखती है। मैं नहीं जानता था कि हमारे घर में भी इस तरह की बात कभी हो सकती है। मुझे पता होता कि तुझे ऐसे गुल खिलाने हैं, तो मैं कभी तुझे यहां इन लोगों के पास अकेली न छोड़ता। आप सुन रहे हैं बाबूजी, यह लड़की क्या कह रही है?"

बाबूजी ने धीरे से सिर हिलाया। उनकी आंखों में घना कोहरा-सा घिर

आया था। बी जी माथे पर हाथ रखे हुए फरश पर बैठ गई थी।

"मैं जानना चाहता हूं कि तेरे नाम आई हुई चिट्ठी में इन बिन्दुओं का क्या मतलब है ?" वह उस चिट्ठी को अलग निकालकर उसे हाथ में झटकता हुआ बोला। राजो का चेहरा सख्त हो गया और उसकी आंखों में आंसू भर आए। लगा कि वह झपटकर चिट्ठी उसके हाथ से छीन लेगी। "मैं नहीं जानती, इनका क्या मतलब है," वह बोली।

"तू नहीं जानती !" वह एकदम गरज उठा। "मैं अभी इनका मतलब तुझे बताता हूं। पहले मैं इस पुलिंदे को आग में झोंक दूं, फिर आकर बताऊंगा कि इनका क्या मतलब है···।"

वह चिट्ठियों का पुलिंदा लेकर कमरे से जाने लगा, तो राजो ने सहसा वह उसके हाथ से झपट लिया।

"मैंने ये चिट्ठियां इतने दिनों से संभालकर रख रखी हैं, मैं किसीको इन्हें जलाने नहीं दूंगी," वह बोली।

"तू नहीं जलाने देगी।" कहता हुआ वह पागल की तरह राजो पर झपट पड़ा और उसके हाथ से पुलिंदे को छीनने की कोशिश करने लगा। राजो चिट्ठियों को छाती से चिमटाए गठरी-सी बनकर जमीन पर बैठ गई।

"मैं कहता हूं, ये चिट्ठियां मुझे दे दे, नहीं तो मैं आज तेरी खाल उधेड़ दूंगा।"

राजो उसी तरह पत्थर की मूर्ति बनी चिट्ठियों को अपने साथ चिमटाए रही। चिट्ठियां छीनने के प्रयत्न में हारकर उसने लगातार तीन-चार चपत राजो की पीठ पर जमा दीं।

"तू चिट्ठियां देगी कि नहीं ?"

"नहीं।"

"दे दे खसम खानी !" बी जी डर और गुस्से में कांपती हुई आवाज़ में कुछ विनय के साथ बोलीं, "भाई मांग रहा है, तो तू चिट्ठियां उसे दे क्यों नहीं देती ? उसीके दोस्त की चिट्ठियां हैं—वह उन्हें चाहे रखे चाहे जला दे। तुझे इनका क्या करना है ?"

"मुझे पता है इसे क्या करना है," वह हांफता हुआ बोला। "मैं अभी इसकी बोटी-बोटी चीरकर रख दूंगा।" इसपर भी राजो की पकड़ ढीली नहीं

हुई तो उसने उसकी पीठ पर दो-एक लातें भी जमा दीं। राजो जैसे पत्थर बनकर बैठी थी, बैठी रही। परन्तु फिर जाने क्या हुआ कि अचानक ही उसका शरीर ढीला पड़ गया, उसने चिट्ठियों का पुलिंदा निकालकर फ़र्श पर रख दिया और सब पर एक वितृष्णा की नज़र डालकर वहां से चली गई।

"बेटा, जवान लड़की पर इस तरह हाथ नहीं उठाते," राजो के चले जाने पर बी जी ने कहा।

"अभी तो मैंने इसको कुछ कहा ही नहीं," वह उसी तरह हांफता हुआ बोला। "मेरी बहन इस तरह की हरकत करेगी, तो मैं सचमुच उसे चीरकर रख दूंगा।"

"ऐसे ही ज़िद करती है बेटा, और कोई बात नहीं। इसे चिट्ठियों का क्या करना है? तू इन्हें आग में जला या जो जी चाहे कर!" बी जी कहती रहीं।

"अभी नासमझ बच्ची है, इसे भले-बुरे की समझ नहीं है।" चाचूजी का सिर ज़रा-सा हिला और आंखें दो-एक बार झपक गईं।

"बीस की हो चुकी है और अभी इसे समझ नहीं है," वह झल्लाकर बोला। "आप लोगों के इसी लाड़ ने ही इसका दिमाग़ ख़राब कर रखा है। बड़ा लेखक है वह— रवीन्द्रनाथ ठाकुर है—जिसकी इसने चिट्ठियां रख रखी हैं। आप लोगों का तो कुछ नहीं, मगर मुझे तो शर्म आती है। मुझे तो अपनी बदनामी का डर है।"

उसने उन सब चिट्ठियों को लेकर पुर्ज़ा-पुर्ज़ा कर दिया। फिर रसोईघर में आकर उन्हें चूल्हे में डाल दिया। राजो कमरे में [illegible] चूल्हे के पास बैठी थी। वह उसी तरह बैठी रही और [illegible] रही।

"अब जाकर इसकी [illegible] में [illegible]।" [illegible]

[illegible]

[illegible]

रहे थे। धूप ढलने के साथ-साथ कमरे के वातावरण में हल्की ठंडक भर गई थी। गली से बच्चों के हंसने-रोने, खेलने और लड़ने की मिली-जुली आवाज़ें आ रही थीं, मगर कमरे के अन्दर एक तरह से सन्नाटा ही था। वह सन्नाटा कमरे में ही नहीं, सारे घर में छाया हुआ लगता था। नीचे नल के पास से सिर्फ कपड़े धोने की आवाज़ आ रही थी। राजो उस समय से अब तक लगातार काम कर रही थी। सत्ते ने कितना ही चाहा था कि जाकर एक बार उसके सिर पर हाथ फेर दे और उसे थोड़ा पुचकार दे, मगर बात सोचते-सोचते उसका क्रोध फिर लौट आता था। राजो की आंखों में जो अवज्ञा, उपेक्षा और वितृष्णा उसने देखी थी उसकी कल्पना से ही उसके मन में चिनगारियां-सी फूटने लगती थीं। कमरे का वातावरण ठंडा हो रहा था, मगर उसके अन्दर रह-रहकर एक तपती हुई लहर उठ आती थी। हरीश के पत्र के उन रहस्यमय बिन्दुओं की याद हो आने से उसके माथे की नसें फिर फड़कने लगी थीं।

वह चारपाई से उठकर काफी देर कमरे में टहलता रहा। फिर खिड़की के पास जाकर गली के उदास उजाले को सांझ के गहरे रंग में घुलते देखने लगा। उसे न जाने क्यों कुछ बरस पहले की ऐसी ही उदास सांझें याद आने लगीं जब वह कितनी-कितनी देर इसी तरह खिड़की के पास खड़ा रहता था। इस समय गली में खेलते हुए सब बच्चों के चेहरे उसके लिए अपरिचित थे। हर साल गर्मी की छुट्टियों में महीना-बीस दिन के लिए वहां आने पर वह काफी हद तक अपने को उस घर में अजनबी-सा महसूस करता था। हर साल गली में कुछ न कुछ बदल चुका होता था। उन दिनों उसके सामने का घर इतना ऊंचा नहीं था जितना अब था। तब तक उसकी डेढ़ मंज़िल ही बनी थी। उस घर की छत पर से खिड़की से झांकते देखकर उस छत से बच्चे उसकी तरफ मुंह बनाया करते थे। उनके मुंह बनाने पर भी वह इसी तरह खड़ा रहता था। किसी-किसी समय छत पर एक और चेहरा भी दिखाई देता था। उसीकी वह प्रतीक्षा किया करता था। उसका नाम सरोज था—आंखें बड़ी-बड़ी और काली! बच्चों को उसकी तरफ मुंह बनाते देखकर, वह उन्हें डांट देती थी। कभी-कभी सरोज की आंखें पल-भर के लिए उससे मिल जाती थीं। वह एकदम सकपका जाता था। उसे देखकर सरोज के चेहरे पर न जाने क्यों एक विचित्र कठोर-सा भाव आ जाता था। कभी वह अकेली छत पर बाल सुखा रही होती, तो उसे देखकर सामने से

हट जाती थी। वह फिर भी देर-देर तक खिड़की के पास खड़ा रहता
सरोज के सामने से हट जाने पर भी उसका खुले बालों वाला चेहरा उसकी
के सामने बना रहता था। वह घंटों रात को बिस्तर पर पड़ा सरोज के बा
ही सोचता रहता था। दिन में जब घर से निकलता तो एक बार आगे उठ
सरोज की छत की तरफ देख लेता था। उसे कितनी इच्छा होती थी कि
वह सरोज को पास से देख सके, उसके साथ हँसकर बात कर सके। कितनी
उसके मन में यह बात आती थी कि किसी तरह सरोज के साथ राजो की मित्र
हो जाए और सरोज उनके घर में आने-जाने लगे। मगर उसकी यह इच्
इच्छा ही रही थी। सरोज कभी उनके घर में नहीं आई, और न ही कभी
उससे बात कर सका। वह एम० ए० फाइनल में पढ़ रहा था, तो एक दि
सजधज के साथ सरोज का ब्याह हो गया। एम० ए० कर लेने के बाद ज
उसकी बाहर नौकरी लगी, तो उसने सोचा था कि हर साल छुट्टियों में वहाँ आने
पर उस खाली छत को देखकर उसे बहुत विचित्र-सा अनुभव होगा। मगर उसने
यह भी सोचा था कि हो सकता है सरोज भी उन्हीं दिनों मैके आया करे और
उसे सरोज को छत पर बाल सुखाते देखने का अवसर मिलता रहे। मगर उसके
पहली बार आने तक ही वह घर किसी और ने खरीद लिया था और एक नई
मंज़िल बनवाकर उस छत को हमेशा के लिए ढक दिया था…।

"यार, तू मर्द का बच्चा होकर इस तरह की बातें करता है?" हरीश को
उसने अपने दिल की बात बताई थी, तो हरीश उसका मज़ाक करने लगा था।
"जो एक लड़की को अपनी तरफ़ आकर्षित नहीं कर सकता, वह ज़िन्दगी में और
क्या करेगा?" हरीश की बात से उसके मन में एक नश्तर-सा चुभ गया था।
"और प्यारे! आदमी की ज़िन्दगी में एक नहीं कई-कई लड़कियाँ आती हैं।
एक बार चूक हो गई सो हो गई, मगर आगे कभी ऐसी चूक न हो…।" सचमुच
उस आदमी ने वह कितनी उम्दा-सी बात कही थी!

गली में आती हुई बच्चों की आवाज़ें उसे को अच्छी नहीं लग रही थीं।
उस शोर में भी पुराने दिनों की कल्पना करना भी मुश्किल था। [illegible]
[illegible]
[illegible] उस पानी को [illegible] था।

वह खिड़की के पास से हट आया। अब उसे अपना कमरा बहुत [illegible]

उजाड़-सा लगने लगा—जैसे उसके वहा होते हुए भी कमरे में कोई न हो, वह बिलकुल खाली और बिलकुल निर्जीव हो। नीचे आगन से पंखे से चूल्हे में हवा करने की आवाज़ आ रही थी। राजो कपड़े धो चुकी थी और रात की रोटी के लिए चूल्हा सुलगा रही थी। गीली लकड़ियों का धुआ जीने से होकर रोशनदान के रास्ते कमरे मे आ रहा था। सत्ते चारपाई पर लेट गया। उसे लग रहा था जैसे नाली मे बहते हुए झागमिले पानी और रोशनदान के रास्ते कमरे में आते हुए धुएं मे उनके आकार के अतिरिक्त भी कुछ हो—ऐसा कुछ जो राजो के अन्दर से उमड़कर आ रहा था और अब नाली के दागों और जीने की स्याही मे बदलता जा रहा था…।

"शीरी मुमताज़ उर्फ मुमताज़ महल !"

वह फिर एकटक दीवार पर खुदी हुई इबारतों को देखने लगा। उसे फिर याद आया कि उसने शीरी मुमताज़ उर्फ मुमताज़ महल के विषय मे कुछ लिखने की बात सोची थी। क्या बात सोची थी, यह ठीक से याद नहीं आया। मुमताज़ महल की रूह और उस दीवार के सम्बन्ध मे कोई बात थी। फिर सोचने लगा कि वह लड़की—शीरी मुमताज़—देखने मे कैसी रही होगी, उस घर मे रहकर वह क्या-क्या सोचती रही होगी और वहां से जाते हुए वह दीवार पर क्यों लिख गई थी कि वह अपनी रूह यहीं छोड़े जा रही है ? काश कि वह उस लड़की को जानता होता, और यह भी जानता कि आज वह कहा है और क्या सोचती है…?

सहसा उसे राजो से सहानुभूति होने लगी। उसका मन हुआ कि एक बार उसे ऊपर बुला ले और उसे पुचकारकर उसके सिर पर हाथ फेर दे। वह उठकर जीने मे चला गया। जीने में धुआ इस तरह भर रहा था कि वहा सास लेना मुश्किल था। वहा आने ही आखों मे जलन महसूस होने लगी। उसने किसी तरह आवाज़ दी, "राजो !"

मगर राजो ने कोई उत्तर नही दिया। वह उसी तरह चूल्हे मे पंखा झलती रही। सत्ते ने फिर आवाज़ दी, मगर राजो ने फिर कोई उत्तर नही दिया। केवल जीने में आता हुआ धुआं पहले से गाढ़ा हो गया। वह हताश झेंप के साथ कमरे मे लौट आया।

"शीरी मुमताज़ उर्फ मुमताज़ महल !"

ससे को यह सोचकर और गुस्सा चढ़ने लगा कि उसके मन में कोई बात है जिसे वह चाहकर भी अपनी थकान और परेशानी के कारण ठीक से व्यक्त नहीं कर सकता—यहां तक कि खुद भी ठीक से समझ नहीं सकता। उसे कुछ पता नहीं चला कि कब उसने अलमारी में चाकू निकाला और कब दीवार में लिपिय को कुरेदना आरम्भ कर दिया। उसे अपने किए का अहसास तब हुआ जब वह बिल्लू के दोनों एल् सिर काटकर टी में बदल चुका, शीरीं मुमताज़ पर लम्बी लम्बी लकीरें खींचकर उसका हुलिया बिगाड़ चुका और कोने में बनी हुई आंख में सूराख करके उसके सब रेशे झाड़ चुका। उसने यह काम इतनी मेहनत से किया था कि उसके माथे पर पसीना आ गया। मगर जब वह थककर चारपाई पर बैठा, तो कमरे की निर्जीवता पहले से और गहरी हो गई थी। रोशनदान से धुआं आना चाहे बन्द हो गया था, मगर कमरे की सारी हवा धुएं से लदकर भारी हो रही थी। कमर सीधी करने के लिए वह चारपाई पर लेटा, तो उसकी आंखें फिर दीवार से जा टकराईं। शीरीं मुमताज़ का अब वहां पता नहीं था, मगर वह विकृत आंख, पहले से ज्यादा विकृत होकर उसके बनाए हुए सूराख में से उसे घूर रही थी।

आखिरी सामान

मिसेज भण्डारी—बेला भण्डारी—का चेहरा तिपाई पर झुका था। सामने वह सफेद जिल्द का एलबम था जो अब काफी पुराना पड गया था। जिल्द पर जगह-जगह हाथो के मैल से दाग पड़ गए थे, एकाध दाग शायद चाय-कॉफी का भी था। न जाने कितने बरस पहले, एलबम खरीदा गया था। उसके विवाह से पहले वह मिस्टर भण्डारी के पास था। उनका ब्याह उस एलबम की जिन्दगी के मध्य-काल मे हुआ था। तब मिस्टर भण्डारी एक्साइज और टैक्सेशन के महकमे मे अफसर नियुक्त हो चुके थे।

मिसेज भण्डारी एलबम के वे पन्ने पलट चुकी थी, जिन पर मिस्टर भण्डारी की कॉलेज के प्रारम्भिक दिनों की तस्वीरें थी। उन दिनों उनका जिस्म कितना अच्छा था! अब सामने वह तस्वीर थी, जो मिस्टर भण्डारी के स्टूडेण्ट्स काग्रेस के प्रधान चुने जाने के अवसर पर खीची गई थी। तस्वीर मे वे माइक्रोफोन पर भाषण दे रहे थे। उन दिनो उनके चेहरे पर बहुत हल्की-हल्की मूछें थीं, आंखो में एक खास तरह की चमक थी। फिर भी वे कितने मासूम लगते थे!

मिसेज भण्डारी ने बालो को हल्का-सा झटका दिया। शायद कोई कीड़ा बालो मे उलझ गया था। अपने कटे हुए रेशमी बालो का गरदन पर फिस-लना उन्हें सदा रोमाचित कर देता था। उन्हें लगता जैसे किसी खरगोश के जिस्म से गरदन सहला रही हो। अपने बालो के वजन पर भी उन्हें गर्व होता था।

फेरकर उन्होंने मन की शंका को गलत प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। लेकिन वे चेहरे की लकीरें···!

रुमाल से गले का पसीना पोंछकर वे फिर तिपाई पर झुक गईं। सिर में बहुत भारीपन महसूस हो रहा था। दिमाग जैसे एक साथ बहुत-सी बातें सोच रहा था! या जैसे कुछ भी नहीं सोच रहा था! सोचने के लिए कोई सूत्र नहीं था, कई विचार थे। या विचारों के टुकड़े दिमाग की सतह पर मंडरा रहे थे। और एक कील-सी थी जो दिमाग में गड़ रही थी—पन्द्रह रुपये! पन्द्रह रुपये एक···पन्द्रह रुपये दो···पन्द्रह रुपये दो···पन्द्रह रुपये आठ आने! पन्द्रह रुपये आठ आने! आठ आने एक···आठ आने दो···!

उनकी आंखें फिर ज़रा-सी उठ गईं। गालों की लकीरें सचमुच बहुत गहरी हो गई थीं। इतनी जल्दी ये लकीरें इतनी गहरी कैसे हो गईं? कुछ ही महीने पहले चेहरे का मांस बिल्कुल हमवार और चिकना था। अब उस चिकनाहट की जगह ये हल्की-हल्की नामालूम सलवटें···! उन्होंने फिर चेहरे पर हाथ फेरा और आंखें नीचे झुका लीं।

मिस्टर भण्डारी को उनके रूप का कितना मोह था! उनके मित्रों ने विवाह के समय उनके चुनाव की कितनी प्रशंसा की थी! सभाओं, पार्टियों में लोग मिस्टर भण्डारी के एस्थेटिक टेस्ट की कितनी प्रशंसा करते रहे हैं! बेला भण्डारी का सौन्दर्य···बेला भण्डारी का वस्त्रों का चुनाव··· बेला भण्डारी का मुस्कराने का अन्दाज़···इन सबमें मिस्टर भण्डारी की देन कितनी महत्त्वपूर्ण रही है!

उन्होंने एलबम का पन्ना पलट दिया। वाई० एम० सी० ए० के हाल में खेले गए नाटक 'शी स्टूप्स टु कांकर' के पात्र तथा नाटक के निर्देशक सुशील भण्डारी। चेहरा ठीक फोकस में नहीं था। वैसे भी उस तस्वीर में दुबले लगते थे। उन दिनों उनके निर्देशन की बहुत प्रशंसा हुई थी। एक अखबार ने सुशील भण्डारी को नाटक का वास्तविक हीरो कहा था। दूसरे ने भविष्यवाणी की थी कि इस कला के क्षेत्र में उसका नाम बहुत जल्दी चमक उठेगा। शहर के शिक्षित वर्ग में प्रायः सभी लोग उन्हें जान गए थे। साहित्यिक और सांस्कृतिक मजलिसों में प्रायः उन्हें निमन्त्रित किया जाता था। उनकी योग्यता और प्रतिभा की हर कहीं दाद दी जाती थी। यूनिवर्सिटी से निकलने से पहले ही समाज में उनका स्थान बन गया था। लोग बातें करते थे कि राजनीति तथा साहित्य और संस्कृति

के क्षेत्र में सुशील भण्डारी का अच्छा नाम होगा। उनके पा
था—व्यक्तित्व, विचार, भाषा···।
मस्तिष्क में कील और गहरी गड़ रही थी—सत्रह रुपये
रुपये दो । सत्रह रुपये दो···दो···तीन !
शायद डाइनिंग टेबल की बोली हो रही थी। वे सिड़
देखना नहीं चाहती थीं। कुछ देर पहले तक वे उस व्यापार
कोठी का सारा सामान अहाते में बिखरा था—दो टूटी
दो-एक चारपाइयों और कुछ ट्रंकों को छोड़कर बाकी सब
था—सोफा सेट, रेडियोग्राम, रेफ्रिजरेटर, छोटी-बड़ी
डाइनिंग टेबल, कालीन, परदे, बुक शेल्फ, आयलपेंटिंग
प्लॉस्टर ऑफ पेरिस की मूर्तियाँ, फूलदान, फोटो फ्रेम, ऐश-ट्रे और
चीजें जो न जाने कितने बरसों में इकट्ठी हुई थीं।
आगे पाँच-छः चित्र उनके विवाह के अवसर के थे
गया चित्र, चाय पार्टी का चित्र, उन दोनों का अलग
फिर नाव में बैठकर उतरवाए हुए दो चित्र थे। हनीमू
में कितना उल्लास था ! दोनों बच्चों की तरह नदी
मिस्टर भण्डारी ने एक बार कन्धे से पकड़कर उ
मिस्टर भण्डारी के शरीर से लिपट गई थीं। ठण्डे पा
रोमांचित हो उठा था।
अगले चित्र में मिस्टर भण्डारी और सुशी
खड़े थे।
मिस्टर भण्डारी के माथे पर हल्की-सी शिक
से उनके माथे पर प्रायः यह शिकन पड़ जाती
जाती थी, और उसका अर्थ भी वही जानती थीं।
का दोस्त था, पर उनके पिता मिनिस्ट्री में
उन्नति कर गया था। उसे कई तरह के सरका
साल में ही उसने ढाई-ढाई लाख की जायदाद
इम्पोर्ट और ट्रैफिक के महकमे में जगह थी
···की आमदनी थी, और रोज का

सुधीर के साथ अपने सम्बन्ध को लेकर मिस्टर भण्डारी के मन मे एक छाया घिरी रहती थी, क्योकि शायद वे दोस्त होकर भी बराबर नही थे, बड़े-छोटे थे। मिस्टर भण्डारी, जिन्हे अपनी योग्यता और प्रतिभा के नाते बडा होना चाहिए था, छोटे थे, और सुधीर जिसे छोटा होना चाहिए था, बड़ा था। मिस्टर भण्डारी सुधीर की उपस्थिति मे अपनी हद से बाहर खर्च करते थे। अपने घर को सजाने की भी उन्हे बहुत चाह थी। वे प्राय कहा करते थे कि सुधीर के पास पैसा है, पर अच्छी चीज़ पहचानने वाली आख नही है। गाठ है, टेस्ट नही। यदि वे उससे एक-चौथाई भी खर्च कर सकें, तो अपने घर को इस तरह सजाकर रखें कि देखने वाले की आखें पथरा जाएं। जहा तक बन पड़ता, वे घर के लिए नित नई चीजें ले आया करते थे। मगर सुधीर के घर जैसे पर्दों और गलीचो के लिए ही हज़ारों रुपये चाहिए थे। जब कभी वे लोग सुधीर के यहा जाते तो सारा समय मिस्टर भण्डारी के माथे पर वह नामालूम शिकन बनी रहती। घर लौटकर वे उनके रूप की बहुत प्रशंसा करते थे और गर्म-जोशी के साथ उन्हे चूम लिया करते थे। इस एक बात मे वे सुधीर को अपने से हीन समझ सकते थे। सुधीर की पत्नी मीरा ज्यादा सुन्दर नही थी। मीरा का कद छोटा था, और शरीर कुछ ज्यादा मासल था और ··और शायद इसीलिए, सुधीर जब-जब उनकी ओर देखता था, उसकी आखों मे कुछ और भी हलका-सा अभास होता था,—इतना अस्पष्ट कि कई बार उन्हे लगता कि शायद उनकी गलतफहमी ही है।

"दो सौ पन्द्रह ! ···पन्द्रह···बीस ! दो सौ बीस एक···दो सौ बीस दो···!"

सम्भवत. अब रेफ्रिजरेटर की बोली हो रही थी। फिर भी मिसेज़ भण्डारी का उठकर देखने को मन नहीं हुआ। आखिर एक-एक करके हर चीज की बोली हो जाएगी। देखने न देखने से अन्तर क्या पडता है ? उनका दिल अन्दर ही अन्दर बैठ रहा था। मिस्टर भण्डारी ने एक-एक चीज़ के चुनाव पर कितना समय खर्च किया था ! डाइनिंग टेबल के चाकलेट रग का शेड चुनने मे ही उन्हे कई दिन लग गए थे। उसकी शेप उन्होंने एक पादरी के घर देखे हुए डाइनिंग टेबल के अनुसार बनवाई थी। सोफा सेट के लिए कवर का कपड़ा वे कलकत्ता से लाए थे। और जिस दिन रेफ्रिजरेटर आया, उस दिन उन्होंने कमरे की कलर स्कीम बदल दी थी। पुराने परदो की जगह नये परदे लगाए थे। नौकर और चपरासी को पाच-पाच रुपये इनाम दिया था।

उसके बाद नया-नया सामान उनके घर अक्सर आने लगा था। आज कालीन तो कल अलमारियाँ। घर में जितना सामान आ सकता था, उससे कहीं अधिक सामान ले आया गया था। मिस्टर भण्डारी की जेब में भी काफी पैसा रहता था। यह जानना शेष नहीं था, कि वह पैसा कहाँ से आता है।

पहले उनका दिल डरा करता था। मिस्टर भण्डारी से वे कुछ नहीं कहती थीं, परन्तु घर में आती हुई नई-नई चीज़ों को देखकर उनका मन आशंकित रहता था। फिर धीरे-धीरे मन अभ्यस्त हो गया। पहले वे सब चीज़ें पराई-सी लगती थीं। धीरे-धीरे अपनी लगने लगीं। मिस्टर भण्डारी सब-इंस्पेक्टर के ज़रिये काम करते थे। सब-इंस्पेक्टर तिहाई के साझीदार होते थे। आज एक कम्पनी का बिक्री टैक्स आधा करके तीन हज़ार वसूल किए जाते, तो बीस दिन बाद छापे में अफ़ीम बरामद करके पाँच सौ-हज़ार में छोड़ दी जाती। उनका ड्राइंग-रूम सब अफसर तबके में सबसे ज्यादा सजे हुए ड्राइंग-रूम्ज़ में गिना जाता था। लोगों में कानाफूसियाँ होती थीं। मगर मिस्टर भण्डारी परवाह नहीं करते थे। पैसा बाहर से आता था, और बाहर ही खर्च कर दिया जाता था। पहले दिनों में मिस्टर भण्डारी नौकरी छोड़कर, सारा समय राजनीतिक कार्य में लगा देने की बात किया करते थे। कॉलेज के दिनों के आदर्श गाहे-बगाहे उन्हें कुरेदने लगते थे। मगर धीरे-धीरे उनकी फिलॉसफी बदल गई थी। अब वे कहते थे कि इन्सान नीचे से दुनिया के लिए कुछ नहीं कर सकता, कुछ करने के लिए आवश्यक है कि इन्सान पहले कुछ करने की स्थिति पर पहुँच जाए। किस रास्ते से वह वहाँ पहुँचता है, इसका महत्त्व नहीं है। नीचे की सतह से आदर्श की कोई आवाज़ नहीं है। आदर्श की आवाज़ ऊपर की सतह से ही सुनाई जा सकती है। मगर ज्यों-ज्यों वे ऊपर उठ रहे थे, सतह और ऊँची उठती जाती थी।

मिस्टर भण्डारी अब रात को देर से क्लब से लौटते थे। पहले पार्टियों में केवल साथ देने के लिए सिप कर लिया करते थे, अब बाकायदा पीने लगे थे। घर में रेफ्रिजरेटर का इस्तेमाल बोतलें रखने के लिए होने लगा था। एक बार उन्होंने उन्हें भी मजबूर करके पिलाई थी। उन्हें हर चीज़ घूमती नज़र आने लगी थी। दीवारें जैसे फर्श के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रही थीं, और फर्श ऊपर को उठ रहा था। पैर हल्के लगते थे और कदम ठीक नहीं पड़ते थे। मिस्टर भण्डारी के दोस्तों ने उनका अच्छा मज़ाक बनाया था। उन्हें बाहर टहलने के

लिए ले गए थे। फुटपाथ के खम्भे उन्हें अपने पर गिरने को आने-से प्रतीत होते थे। वे मिस्टर भण्डारी की बांह का सहारा लेकर चलती रहीं, और वे लोग फब्तियां कसते रहे। मिस्टर भण्डारी कई बार क्लब से आधी रात के करीब लौटकर आते। गेट का दरवाजा खुलता और बन्द होता। फिर नौकर का दरवाजा खटखटाया जाता। ऐसे अवसरों पर वे उनके सामने आने से बचा करते थे। नौकरों और पड़ोसियों में चर्चा होती थी। वे नहीं जानती थीं कि जो कहा जाता है, कहां तक सच है। पर कई बार उन्हें स्वयं सन्देह होता था। मिस्टर भण्डारी के कपड़े उठाते-रखते उन्हें महसूस होता था कि उनमें किसी पराये शरीर की गन्ध समाई है। और वह गन्ध सदा एक-सी नहीं होती थी। मगर जैसे खामोश समझौता हो, वे इस बारे में कभी कुछ नहीं पूछती थीं, न ही वे कभी कुछ कहते थे। हां, अक्सर चिड़चिड़ाए रहते थे। छोटी-छोटी बात पर गुस्सा करते थे। खाने में ज्यादा नुक्स निकालते थे।...मगर समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ रही थी। अब कहीं ज्यादा पार्टियों पर उन्हें बुलावा आता था, सरकारी उत्सवों में उन्हें मान के साथ आगे बैठाया जाता था। लोग उनकी साड़ियों और मिस्टर भण्डारी की टाइयों की बहुत प्रशंसा करते थे।

मिसेज भण्डारी ने एलबम के कई पन्ने अनदेखे ही पलट दिए थे। जो पन्ना सामने था, उसपर एक सम्भ्रान्त अतिथि की तस्वीर थी, चाय की प्याली हाथ में लिए हुए। सफेद टोपी, गोल चेहरा, गोल काया, काली अचकन। चेहरा तस्वीर से उभरकर आगे को आया-सा लगता था। नीचे का होठ चेहरे के अनुपात में अधिक मोटा, और जग की चोंच की तरह आगे को निकला हुआ। गरदन कन्धों में धंसी-सी थी। सारे शरीर में एक चीज तीखी थी—आंखें। अगले पन्ने पर सम्भ्रान्त अतिथि के साथ मिस्टर भण्डारी और उनकी तस्वीर थी। मिस्टर भण्डारी का चेहरा पहले से बहुत भर गया था, पर उनके मुकाबले में वे बहुत हल्के और छोटे लगते थे। उन दोनों के बीच वे तो खो ही गई थीं। उनके चेहरे की मुस्कराहट ही उनके व्यक्तित्व को संभाले थी...।

सम्भ्रान्त अतिथि प्रदेश के एक उच्च अधिकारी थे। उन्हें उस दिन विशेष रूप से खाने पर बुलाया था। एक चाय-पार्टी पर उन लोगों का उनसे परिचय हुआ था, और उसी दिन उनका खाने पर आना तय हो गया था। लोगों को मिस्टर भण्डारी की इस मिलनसारी से ईर्ष्या हुई थी।

खाने से पहले दो घण्टे तक उन लोगों का दौर चलता रहा। मि
की नाक के अगले भाग में रह-रहकर हल्का-सा कम्पन होता था
अर्थ वे अच्छी तरह जानती थी। मिस्टर भण्डारी की आंख बारह
एक नौकरी पर थी जो सम्भ्रान्त अतिथि के रसूख से प्राप्त हो सकती
भण्डारी सम्भ्रान्त अतिथि की हर बात का अनुमोदन कर रहे थे।
अतिथि भी उनकी हर बात से सहमति प्रकट कर रहे थे। खाना
सम्भ्रान्त अतिथि का निचला होंठ एक खास अन्दाज में हिलता था।
फैलाव से कितनी अतृप्ति झलकती थी!

तभी नौकर ने सूचना दी थी कि उनका एक सब-इंस्पेक्टर बाहर
मिस्टर भण्डारी खाना बीच में ही छोड़कर बाहर चले गए थे। दो मि
लौटकर उन्होंने कहा कि उन्हें बहुत-सी चरस पकड़ने के लिए तुरन्त ही
जाना पड़ेगा। सम्भ्रान्त अतिथि से क्षमा-याचना करते हुए, उनसे उन्हें
कॉफी पिलाने तथा इंटर्टेन करने के लिए कहकर, वे सब-इंस्पेक्टर के साथ च
उनके चले जाने के बाद सम्भ्रान्त अतिथि की तीखी आँखें और तीखी हो
आँखें उनके शरीर के हर भाग को जैसे उघाड़कर देख रही थी। उन्होंने
साड़ी को अच्छी तरह लपेट लिया। सम्भ्रान्त अतिथि की आँखों में लाल
डोरे दिखाई देने लगे। जब उन्होंने कॉफी की प्याली बनाकर उनकी ओर
तो सम्भ्रान्त अतिथि ने बरबस उनका हाथ पकड़कर, उन्हें अपनी तरफ खी
प्याली छलक जाने से बहुत-सी कॉफी सम्भ्रान्त अतिथि के कपड़ों पर गिर
बहुत खींचतान करके किसी तरह वे अपने को छुड़ा पाईं। नौकर को उन्हें
पिलाकर विदा कर देने के लिए कहकर, वे सोने के कमरे में चली गईं, और
से सिसकनी लगाकर देर तक रोती रहीं। मिस्टर भण्डारी जा रहे थे तो उ
आश्चर्य हुआ था कि क्या रेड पर जाना उनके लिए उस अतिथि के पास बैठ
से अधिक आवश्यक है! मगर अब कुछ भी अस्पष्ट नहीं था। उधर मोटे स
में नौकर को डाँट दी जा रही थी। यूँ, वातावरण निस्पन्द था। हर चीज
अपनी जगह पर जकड़ गई थी।

दिन में मिस्टर भण्डारी उनपर और खीझने लगे। वे कई बार
ही नहीं। सुबह नाश्ते के समय भी उनमें बातचीत नहीं होती। किसी
उन्हें

मिस्टर भण्डारी का बारह सौ की नौकरी पाने का मंसूबा पूरा नहीं हुआ था। वे सोचती कि क्या इसकी वजह यही है।

उन्हीं दिनों एक बहुत बड़ा केस मिस्टर भण्डारी के हाथ मे आया। उस केस मे उन्हें एक अच्छी फोर-सीटर गाड़ी हासिल हो सकती थी। दोनों सब-इंस्पेक्टर रात को देर-देर तक उनके पास बैठे रहते। दिन मे भी कई-कई बार मशविरे होते। दफ्तर से फाइलें घर लाई जाती और घण्टो कागज पलटे जाते। आखिर योजना तैयार हो गई।

उस दिन सवेरे से ही मिस्टर भण्डारी उत्तेजित थे। उनके चेहरे पर लाली छाई थी। हर काम उतावली मे कर रहे थे। टाई की नाट भी ठीक से नहीं बांध पाए। चाय पीते हुए, दो बार प्याली छलक गई। डाइनिंग टेबल पर उड़ती हुई मक्खी से वे नाहक परेशान हो उठे। दफ्तर जाते हुए उन्होंने अपने नाखूनों को देखा कि ज़रूरत से ज्यादा बढ़े हुए है। जाते-जाते कुछ कहने के लिए रुके, मगर बिना कहे ही चले गए। शाम को समाचार आया कि वे गिरफ्तार हो गए हैं।''' वे जिस कुर्सी पर बैठी थी, उसमे जैसे धंसती चली गईं। चपरासी मनोहर से उन्हें विस्तारपूर्वक सारी बात का पता चला। उनके सब-इंस्पेक्टरों ने पुलिस से मिलकर उन्हें फंसा दिया था। मिस्टर भण्डारी ने जो योजना बनाई थी, उसे खंडित करने की योजना उससे पहले तैयार हो चुकी थी। मिस्टर भण्डारी ने रुपया सोने की शक्ल मे लिया था। मगर वह पुलिस द्वारा वजन किया हुआ और निशान लगाया हुआ सोना था। मिस्टर भण्डारी वहीं पकड़ लिए गए और वहीं पर रिश्वत देनेवाली पार्टी और दोनों सब-इंस्पेक्टर के उनके खिलाफ बयान भी हो गए। तुरन्त ही उनके नौकरी से बरखास्त किए जाने के आर्डर प्राप्त कर लिए गए और उन्हें हथकड़ी पहना दी गई। दूसरे दिन वे सुधीर से मिलने गईं कि उनकी जमानत हो जाए। मगर सुधीर उन दिनों वहां नहीं था।

चपरासी मनोहर कभी-कभार उनके यहां चक्कर लगा जाता था। दफ्तरी हलके का और कोई व्यक्ति उनसे मिलने नहीं आता था। मनोहर ने ही एक दिन उन्हें बताया था कि मिस्टर भण्डारी को फंसाने की योजना का सूत्र कहीं और से आया था। सम्भ्रान्त अतिथि का हिलता हुआ निचला ओंठ और छलकी हुई कॉफी की प्याली!'''निस्तब्ध रात और अपनी-अपनी जगह पर जकड़ी हुई चीजें!'''उनका पूरा अस्तित्व ही जैसे जकड़कर रह गया था। जिन्दगी के इस

मोड़ का मूल यन्त्र भी क्या वही थी।

बालों को हाथ से टटोलते हुए मिसेज़ भण्डारी ने उनमें उलझी हुई चीज़ निकाल ली—नाखून के आकार का पतला-तीखा-सा एक तिनका था। न जाने बालों में कहां से उलझ गया था! उन्होंने उसे मसलकर फेंक दिया। मगर वैसा ही एक तिनका कहीं उनके अन्तर में भी अटका हुआ था। उसकी गड़न महसूस करते हुए भी उसे टटोला नहीं जा सकता था। मिस्टर भण्डारी को सज़ा हो गई थी। जेल में बहुत दुबले हो गए थे; और वे स्वयं? उनके चेहरे की वह चमक कहां है, जिसपर उन्हें नाज़ था? तिनका बहुत तीखा गड़ रहा था। लेकिन कहां···?

एक ठण्डी सांस लेकर वे कुरसी से उठ गईं और खिड़की के पास चली गईं। सामान की बोली बदस्तूर चल रही थी। तीन-चौथाई से ज्यादा सामान नीलाम हो चुका था। अब चार-छः आइटम ही बाकी थे, टाइपराइटर, प्लास्टर ऑव पेरिस की दो मूर्तियां, दो ऑयल पेंटिंग्ज़।

अहाते में धूल उड़ रही थी। किसी ज़माने में अहाते को लॉन में बदलने का प्रयत्न किया गया था। जहां-तहां घास की तिगलियां अब भी बाकी थीं, यद्यपि ज्यादा भाग खाली ही था। हवा के हर झोंके के साथ बहुत-सी गर्द उड़ती थी, और बिखरे हुए सामान पर फैल जाती थी। सामान की आखिरी बोलियां हो रही थीं—बारह रुपये! बाहर रुपये आठ आने!

मिसेज़ भण्डारी लौटकर कुर्सी के पास आ गईं। सामने खुले हुए एलबम का खाली पन्ना था। काला चौकोर पन्ना! वे बैठ गईं। उस पन्ने पर न जाने कब कौन-सी तस्वीर लगेगी? उनके सारे प्रयत्न मिस्टर भण्डारी को रिहा और नौकरी पर बहाल करा पाएंगे या नहीं? सामान की नीलामी से ढाई-तीन हज़ार रुपये से ज्यादा नहीं मिलेंगे। उससे क्या पूरे कर्ज़ चुकाए जा सकेंगे? उसके बाद अपील के लिए पैसे की ज़रूरत पड़ेगी। घर के रोज़मर्रा खर्च के लिए पैसे की ज़रूरत होगी।···नीचे अहाते में चपरासी मनोहर किसी से बात कर रहा था। शायद सुधीर से। सुधीर ही की आवाज़ थी। यह जानते हुए भी कि आज उनके सामान का नीलाम होगा, वह पहले नहीं आया था। अब आया था जब···। पहले उन्होंने सुधीर से कितनी आशा की थी। मगर सुधीर की आंखें अब और हो गई थीं। उनकी आंखों में जो हल्का हल्का

आभास होता था, वह कहीं गहरा हो गया था। वे देर तक उसकी एकटक दृष्टि का सामना नहीं कर पाती थीं। लेकिन···सुधीर के अतिरिक्त या कौन जिससे सहायता की आशा की जा सकती ?

"नीचे बुला रहे हैं।" मिसेज भण्डारी सहसा चौंक गईं। चपरासी मनोहर दरवाज़े के पास खड़ा था। उसकी आंखों में गहरा अवसाद भरा था। वह अब भी जैसे कुछ कहना चाहता था, जो उसके होंठों तक नहीं आता था। नीचे खामोशी छाई थी। शायद सारे सामान की बोली हो चुकी थी। वे क्षण-भर काले-चौकोर पन्ने पर नजर गड़ाए रहीं, जैसे उसपर भी उन्हें कोई तस्वीर दिखाई दे रही हो; फिर एलबम बन्द करके नीचे जाने के लिए उठ खड़ी हुईं। सीढ़ियां उतरते हुए उन्हें लगा, जैसे वे आप नहीं उतर रहीं, घर का आखिरी सामान नीचे पहुंचाया जा रहा है।

एक पंखयुक्त ट्रेजेडी

कई घरों का वातावरण प्रेम के लिए बहुत अनुकूल होता है। प्रोफेसर चोपड़ा का घर ऐसे ही घरों में से है। उन्हीं के बरामदे में बेंत की कुर्सियों पर बैठकर चाय पीते हुए प्रगतिवादी सतिन्दर का प्रतिक्रियावादी प्रकाश कौर से प्रेम हो गया था। दोनों के विचारों ने एक-दूसरे को इतना प्रभावित किया कि थोड़े ही दिनों में सतिन्दर प्रतिक्रियावादी हो गया और प्रकाश कौर प्रगतिवादी, जिससे दोनों का विवाह नहीं हो सका। फिर उन्हीं के ड्राइंग-रूम में उनके जन्म-दिन पर ज्ञान को एक साथ रूपा और रानी से प्रेम हो गया। पर इससे पहले कि वह यह निश्चय कर सकता कि किससे प्रस्ताव करे, उन दोनों का विवाह हो गया।

और अब के प्रेम की घटना उनके घर के लॉन में हुई। प्रोफेसर चोपड़ा सवेरे सैर से लौटते हुए कहीं से भूरे और नीले परोंवाली एक सुन्दर-सी मुर्गी ले आए, और उसके आते ही प्रोफेसर साहब के काले मुर्गे को उससे प्रेम हो गया।

काला मुर्गा खानदानी मुर्गा था। उसकी माँ प्रोफेसर साहब के घर में कई बार अंडों में बैठी थी और उन अण्डों से जिस परिवार की स्थापना हुई, वह उस समय उसका एकमात्र अवशेष था। सवेरे की बाँग देने के समय से वह प्रोफेसर साहब के लॉन में चहलकदमी आरम्भ करता और थोड़े का मजर भी

कुछ भी मिल जाता दिन-भर निगलता रहता। उसका स्वास्थ्य असाधारण रूप से अच्छा था और उसके पंखों के नीचे, गरदन के चारों ओर तथा टांगों के ऊपरी भाग में मांस की मोटी-मोटी तहें थीं। उसे अपने शरीर की पुष्टता का अभिमान था, जिसके कारण वह बाहर के किसी मुर्गे को प्रोफेसर साहब के लॉन में प्रवेश नहीं करने देता था। साथ के घर का सफेद मुर्गा तीन-चार बार वहां मटर चुगने आ चुका था, पर हर बार ही काले मुर्गे ने उसे चोंच मार-मारकर भगा दिया था।

जब प्रोफेसर साहब मुर्गी को लेकर आए, तो पहले तो उनके हाथ में उस जीव को देखकर काले मुर्गे का हृदय जलन से भर गया और उसने ज़ोर से पंख फड़फड़ाकर अपने रोष का परिचय दिया। पर जब प्रोफेसर साहब मुर्गी को बिलकुल उसके निकट लाकर छोड़ गए तो सहसा उसकी एक टांग ऊपर उठ गई और कलगीदार गर्दन आह्लाद से हिलने लगी। पहले उसने एक बड़े घेरे में मुर्गी की परिक्रमा ली। फिर दूसरी परिक्रमा में उसने घेरा पहले से छोटा कर दिया। तीसरी परिक्रमा उसने बहुत निकट से ली। परिक्रमा-समाप्ति पर जब उसने मुर्गी की ओर अपनी चोंच बढ़ाई तो मुर्गी ने उपेक्षापूर्वक अपनी चोंच फिरा ली और उड़कर कई गज़ दूर चली गई।

मुर्गे को मुर्गी की यह अदा बहुत पसन्द आई। वह पैरों को एक केन्द्र में रखकर चारों दिशाओं में गोल घूम गया। फिर उसने मटर का एक दाना मुंह में लिया और लय के साथ गर्दन हिलाता हुआ मुर्गी की ओर बढ़ा। मुर्गी के निकट पहुंचकर जब उसने मटर का दाना उसकी ओर बढ़ाया तो मुर्गी ने फिर विपरीत दिशा में मुंह फेर लिया और अपनी निश्चिन्त गति से उसी दिशा में चलने लगी।

अबकी बार मुर्गी के इस व्यवहार से मुर्गे ने अपने को अपमानित अनुभव किया। उसका खानदानी गर्व से उठा हुआ सिर वह तौहीन सहन नहीं कर सका। उसने दो-तीन बार अपनी चोंच आधी खोली और बन्द की। वह इस भाव से मुर्गी की ओर बढ़ा कि अब उसे अपने मोटे-मोटे पुट्ठों के बल से पराजित करेगा। मुर्गी को मनाने के लिए अब वह अपने वे चचुप्रहार प्रयोग में लाने लगा, जिनसे वह आसपास के मुर्गों को भगाया करता था। उसका यह उद्दण्ड भाव काम कर गया और उसके दो प्रहारों के अनन्तर ही मुर्गी उसकी

वशंवदा होकर उसकी चोंच से चोंच भिड़ाने लगी।

काला मुर्गा उस क्रीड़ा में अधिकाधिक प्रगल्भ होता जा रहा था, जब उसकी पीठ पर किसी तीसरी चोंच का आघात पड़ा। वह सफेद मुर्गा जो कई बार उससे मार खाकर भागा था, आज उसे फिर चुनौती देने आया था। पर आज पहले की तरह उसकी आंखों में भीरुता मिली धृष्टता का भाव नहीं था, बल्कि एक मिटने और मिटा देनेवाली चमक थी। आज वह मटर के दानों के लिए छेड़खानी करने नहीं आया था बल्कि अपने पौरुष और जीवन का दाव खेलने आया था।

अपने बढ़ते हुए उन्माद में व्याघात पाकर काले मुर्गे का लहू गर्म हो उठा। उसने झटपट सफेद मुर्गे की उठी हुई गर्दन पर प्रहार किया और एक ही आवेश-मय आक्रमण में उसे खदेड़ता हुआ लॉन के बाहर ले गया। लॉन की परिधि से बाहर निकलकर सफेद मुर्गे का आत्मविश्वास भी जाग उठा, और उसने दुगुने आवेश के साथ ऐसा प्रत्याक्रमण किया कि दोनों प्रोफेसर चोपड़ा की कोठी से दूर कच्ची सड़क पर पहुंच गए।

कच्ची सड़क पर आकर काले मुर्गे ने फिर से अपनी शक्तियों का संचय किया। सफेद मुर्गे ने भी पंख फड़फड़ा कर अपने को आनेवाले घात-प्रतिघात के लिए तैयार कर लिया। अब दोनों में एक निर्णायक लड़ाई छिड़ गई।

लगातार दो घंटे तक लड़ाई चलती रही। कभी काला मुर्गा एक टांग पर उछलता हुआ अपने विपक्षी से जा उलझता तो कभी सफेद मुर्गा गर्दन ऐंठता हुआ उसे नोंचने आ पहुंचता। बीच-बीच में जब दोनों थक जाते थे तो आगे-पीछे एक घेरे में घूमने लगते थे। फिर जो भी जल्दी संभल जाता वह अवसर देखकर दूसरे पर आक्रमण कर देता। दो घंटे की लड़ाई में उन दोनों के पंख पूरे-पूरे झड़ गए। कलगियां साफ हो गईं। गर्दनों से लहू फूटने लगा। फिर भी वे दोनों लड़ते आपस में भिड़ते ही रहे...लड़ते ही रहे।

दो घंटे तक इस तरह लड़ चुकने के बाद सफेद मुर्गा हल्का पड़ने लगा। उसने अपनी ओर से जूझना बंद कर दिया और काले मुर्गे के बढ़ आने पर केवल उसे रोकने की चेष्टा में ही रहने लगा। काले मुर्गे ने उसकी थकावट को भांप लिया और एक बार बढ़कर उसके शरीर को इस बुरी तरह से छलनी कर दिया कि सफेद मुर्गा बिलकुल निढाल हो गया। जब सफेद मुर्गे में चोंच उठाने की भी

शक्ति नहीं रही, तो काला मुर्गा उसे छोड़कर वापस लौटा। उस समय उसकी अपनी अवस्था भी शोचनीय हो रही थी। पर उसके हृदय में एक गर्वमिश्रित आह्लाद था। वह छिली हुई अपनी घायल गर्दन को अदा के साथ हिलाता हुआ चल रहा था तथा सिर को एक ऐसा कंप दे रहा था मानो उसकी लाल कलगी अभी तक सिर पर मौजूद हो।

लॉन के निकट पहुँचकर उसने बाहर से ही बांग दी—कुकड़ू-कू।

और उसने लॉन में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही उसने विजयगर्व के साथ चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा। मुर्गी कहीं दिखाई नहीं दी। उसने बरामदे के पास पहुँचकर फिर से इधर-उधर झांका और पुनः बांग लगाई— 'कुकड़ू-कू!"

परन्तु मुर्गी घर के किसी कोने से निकलकर नहीं आई।

वास्तव में मिस्टर चोपड़ा के घर लंच के लिए कुछ मेहमान आ गए थे और मुर्गी उस समय खाने की मेज़ पर मेहमानों की प्लेटों की निदना कर रही थी।

उर्मिल जीवन,

जब मीरा सात बरस की थी, आज वह सत्रह बरस की है। दस बरस का समय एक लहर की तरह उसे साथ बहा लाया। हवा ने पानी के रुख बदल दिए, समय ने जीवन के।

दस बरस में कितना परिवर्तन हो गया। दस बरस पहले नन्ही टाँगें जिन परिधियों को नाप लेती थीं, आज उनके बाहर झाँकना भी उसके लिए सम्भव नहीं। पहले वह नासमझ बालिका थी आज समझदार नवयुवती है। जीवन वही है। स्वप्न भी वही है।

उसकी चंचलता गम्भीरता में बदल गई है। उसकी मुस्कराहट ने शान्त रहना सीख लिया है। सोचने लगती है तो वर्तमान से बहुत पीछे रह जाती है। वहाँ से लौटे तो बहुत आगे निकल जाती है। वर्तमान के केन्द्र पर विचारधारा भ्रान्त होकर घूमती है।

मीरा ने अपने को देखा। शारीरिक विकास उसके और नन्ही मीरा के व्यक्तित्व में एक युग का अन्तर बतलाता है। तब चाहती थी जल्दी-जल्दी बड़ा होना। आज चाहती है पहले की तरह बालिका बन जाना। शैशव की चाह पूरी हो चुकी है। आज की चाह कभी पूरी नहीं होने की। वह यह सब समझती है, फिर भी विचार वश से बाहर होकर चलते हैं।

मीरा कमरे में टहलने लगी। उसे अनुभव हो रहा था कि सारा वातावरण

ही विषैला हो गया है। एक-एक चीज में तर्जना है। सजावट का सामान सूनेपन की विडम्बना को महत्त्व देता है। वह कमरे में अकेली थी और अकेलापन धीरे-धीरे विषमय होता जा रहा था।

कल रात को उसका विवाह हुआ था। वह रात, जो जीवन की मधुरतम कल्पना थी, एक विभीषिका बनकर छाई रही। सुहागरात आज होगी। इस समय संध्या है। संध्या के बाद तारे निकलेंगे। फिर रात आ जाएगी।

उसे लगा जैसे जीवन-तत्त्व ही निःशेष हो रहा है। आज की रात जीवन में व्यापक कटुता घोल देगी। सम्भव हो, तो वह रात-दिन के मनकों से बनी जीवन-माला का यह काला मनका तोड़कर फेंक दे। मगर जानती है एक मनका तोड़ने से माला ही टूट जाएगी। उसमें इतना साहस नहीं है···।

पलंग पर बैठकर नीरा ने चारों ओर देखा। दस बरस में आँखें इस घर की दीवारों से परिचित हो गई हैं। रंग कई बार बदले गए। पलंग से चादरें भी उतरती रहीं। उसकी आशा जीजी घर की रानी थी। एक महीना पहले जीजी ने भी आँखें मूंद लीं और उनके स्थान पर आज स्वयं वहां आ गई है।

देह कांप उठी। दस बरस पहले एक अपरिचित व्यक्ति को जीजा के रूप में देखा था। आज से उसीको पति के रूप में पहचानना है और जीजा का वह प्यार-भरा सम्बोधन, "नीरो रानी!"

'नीरो रानी' का आज से तात्पर्य बदल जाएगा। नया अर्थ होगा और नई ही व्याख्या होगी। उसके साथ-साथ···

हृदय भारी होता गया। विवाह हो चुका। शाम की साड़ी में शृंगार करके मां ने आंसू पोंछ लिए। पर का दाह जला तो उसकी राख में नया अंकुर रोप दिया गया। पानी के कुछ छींटों से राख सदा के लिए दब गई।

बाहर आकाश फैला है। शून्य! शून्य पर अन्तर्वेदना की छाप नहीं पड़ती। बचपन के चित्र यदि इस आकाश में अंकित होते, तो उनपर काली तूलिका से दाग कर देती।

खड़खड़ाती बैलगाड़ी सड़क पर चल रही थी। नीरा को बहुत पुरानी बात याद आई। पिता ने कभी कहा था, "जीवन एक बैलगाड़ी है। एक हिचकोले से इसके तख्ते हिल जाते हैं। एक कील टूट जाए तो पहिये निकल जाते हैं।" तब से सुना था। आज ठीक समझ रही है। पिता की मृत्यु हुई। कील टूट गई,

पहिये निकल गए, गाड़ी बैठ गई।

नन्ही कृष्णा ने उसका दुपट्टा खींचा। नीरा एकदम सचेत हुई। पल-भर कृष्णा की भोली आंखों को देखती रही। फिर गोदी में लेकर उसका मुंह निहारा। उसके बालों को सहलाया। फिर गोदी से उतार दिया।

कल तक वह कृष्णा की मौसी थी। आज से उसकी सौतेली मां है।

"मौछी," कृष्णा ने कहा, "तू मां को लेकल क्यों नईं आई?"

नीरा मन ही मन रो दी। कृष्णा आज भी अपनी मां की प्रतीक्षा करती है। क्या वह कभी उसे मां के रूप में स्वीकार करेगी? 'नीरो रानी' का अर्थ बदल सकता है, पर कृष्णा का कोश बहुत छोटा है। वह अपने शब्दों का एक ही अर्थ जानती है। वह उसे कहती है, "मौछी"।

कृष्णा के लिए वह मौसी ही रहेगी। उसका शैशव जानता है—लहू और पानी का विवेक।

बच्ची के प्रश्न का उत्तर न देकर नीरा ने कहा, "जा उधर जाकर खेल मुन्नी! मीरा वहां अकेली होगी।"

"नईं, मौछी, पैले बता मां कल बी आएगी कि नईं?"

नीरा ने उसे अपने साथ सटा लिया। स्वर को सहेजकर कहा, "तू मीरा को जिस दिन नहीं मारेगी, उसी दिन आएगी, अच्छा! जा, मीरा के साथ खेल बाहर।"

कृष्णा सन्तुष्ट हो गई। नीरा के गले में बाहें डालकर नाचने लगी। फिर उसे छोड़कर भाग गई।

नीरा ने सामने देखा। आखें दीवार पर लगे हुए चित्र पर अटक गईं। कसाई मरी हुई बकरी को भून रहा है। हरी घास के पास बंधी हुई दूसरी बकरी घास में मुंह मार रही है। कसाई देख रहा है। घास की ओट में वह छुरी है जिस पर अब भी लहू के दाग हैं।

नीरा की आंखों के आगे श्मशान का वह दृश्य आया, जब आशा जीजी की चिता से चिनगारियां निकली थीं। चिनगारियों की ओट में कितना रोई थी वह? कितना सिसके थे वे—उसके जीजा?

और महीना-भर बाद?

वैसी ही आग के चारों ओर जीजा ने उसके साथ फेरे लिए। उसे लगा जैसे

बहन चिता के चारों ओर घूम रही है। चटकती हुई चिनगारियां और बोले जा रहे वेद-मंत्र—दोनों एक-से ही थे। विवाह हो गया। बिना सजधज और चहल-पहल के। समय के संकेत ने उसे सौभाग्यवती बना दिया। लाल चूड़ियां और लाल सिन्दूर···।

नीरा ने फिर देखा। छुरी पर लहू गीला-सा लगता था। कसाई, आग, बकरी और घास—यह एक परम्परा है। वह भी इसी परम्परा को निबाह रही है। उसने आंखें मूंदने की चेष्टा की। मन का भारीपन धीरे-धीरे पलकों पर फैल गया।

नन्ही-नन्ही नीरा। छोटा-सा घर। माता और पिता। साधारण चहल-पहल। बाजे-बारात और जीजी का विवाह। किनारीदार कपड़े पहनकर जीजी कैसे बदल गई? मिठाइयां और बताशे। केले के खम्भे, रोली और हवनकुण्ड। सेहरा बांधे एक अपरिचित व्यक्ति। सहज आत्मीयता। मां ने कहा, "नीरो, तेरे जीजा, जा जीजा के पास।"

जीजा ने बांहें फैलाईं। कहा, "आ, नीरो रानी, तुझे खिलौना देंगे, मेले ले जाएंगे।" नीरा पास नहीं गई। दूर भाग गई।

रोती हुई जीजी डोली में बैठी। मां ने कच्ची लस्सी में पैर डाले। फिर जीजी लौटकर आई—गुड़िया जैसे लाल होंठ और झांकियों की सीता जैसे कपड़े। नीरा हंसी और तालियां पीटने लगी।

फिर वही अपरिचित व्यक्ति···जीजा। मां ने कहा, "जा पूछ, दूध कब पिएंगे?"

नीरा पास गई, सिमटी और सकुचित-सी। जीजा ने उसे दोनों बांहों से पकड़ लिया और पास खींचा।

दो मोटे-मोटे होंठ, नाक के लम्बे बाल और विचित्र-सी गंध। नीरा हिचकिचाई, पीछे हटी और फिर उसने उस व्यक्ति के गाल पर एक थप्पड़ लगा दिया···।

चौंककर नीरा ने आंखें खोलीं। वही शून्य आकाश! दूर-दूर तक कालिमा में ओझल होते हुए धरती के चित्र। शैशव कहां है? पीछे, बहुत पीछे। बीच में दस बरस की दीवार है।

झींगुर बोलते गोधूलि के गहरे पृष्ठ-पट

जगला

एक हाथ से पम्प चलाकर दूसरे से बदन को मलता हुआ बनवारी भगत धीरे-धीरे गुनगुनाता है, "जागिए, व्रजराज कुग्रर···कमल-कुसुम फू-ऊऽऽले।"

फूलकौर तवे पर झुककर कच्ची रोटी को पोने से दबाती हुई आंखें मिचकाती है। जैसे कि फू-ऊऽऽले की लम्बी तान सुनकर ही रोटी को फूल जाना हो। रोटी नहीं फूलती, तो वह शिकायत की नजर से बनवारी भगत की तरफ देख लेती है। शरीर की रेखाएं साफ नजर नहीं आतीं। नजर आता है सांवले शरीर पर गमछे का लाल रंग···ठीक लाल भी नहीं···और पम्प का हिलता हुआ हत्था, बहता हुआ पानी। दूसरी बार तवे पर झुकने तक रोटी आधी जल जाती है। उसे जल्दी से उतारकर दूसरी रोटी तवे पर डालती हुई वह कहती है, "नहाये जाओ चाहे और घंटा-भर! मुझे क्या है?"

भगत 'भृंग लता भू-ऊऽऽले' की लय के साथ जल्दी-जल्दी पम्प चलाने लगता है। "कौन भडेरिया कहता है तुझे कुछ है? कभी होता ही नहीं।"

खट्-खट्-खट्···वेलन तीन-चार बार चकले से टकराता है। चूल्हे से फूटकर एक चिनगारी फूलकौर के माथे तक उड़ आती है। वेलन रखकर वह पल-भर निढाल हो रहती है। "और कहो, और कहो। कभी कुछ होना ही नहीं! माथे की जगह कपड़े पर आ पड़ती, तो अभी हो जाता?"

भगत पम्प के नीचे से उठ खड़ा होता है। "···बोलन वनरा-आऽऽइ···

राभति गो खरिकन मे बछरा हित धा-श्राऽऽइ···"

दो-तीन चिनगारियां और उड़ जाती हैं। फूलकौर जैसे उन्हें रोकने के लिए बाहं माथे के आगे कर लेती है। "लगाए जाओ तुम अपनी धौंकनी! दूसरे की चाहे जान चली जाए!"

भगत आधा बदन हाथ से निचोड़ लेता है। बाकी आधे के लिए फूलकौर की तरफ पीठ करके गमछा उतार लेता है। "किसकी जान चली जाए? तेरी? आज तक न गई!"

"हां, मेरी ही नहीं गई? तुम तो प्रेत होकर आए हो!"

"प्रेत होकर यहां आता?" भगत हंसता है, "इसे घर में? तेरे साथ रहने?"

"नहीं, तुम तो जाते उसके घर···वह जो थी रांड तुम्हारी···अच्छा हुआ मर गई।"

भगत की हंसी गले में ही रह जाती है, "मरों के सिर तोहमत लगाती है? देखना, एक दिन तेरी जबान को लकवा मार जाएगा।"

"मेरी जबान को? उसे नहीं, जिसने वे सब करम किए हैं?"

भगत की त्योरियां चढ़ जाती हैं। "किस भंडेरिये ने करम किए हैं? क्या करम किए हैं?"

"अपने से पूछो, मुझसे क्यों पूछते हो?"

भगत गमछे को जल्दी-जल्दी निचोड़कर कमर से लपेट लेता है। फिर लोटा-बाल्टी उठाकर जंगले के उस तरफ को चल देता है। "एक औरत के सिवाय दूसरी का हाथ तक नहीं छुआ ज़िन्दगी-भर। इसकी बीमारियां ढो-ढोकर उम्र गला दी, पर इसकी तसल्ली नहीं हुई···तब तक नहीं होने की जब तक इसे आंख के सामने जीता-जागता, चलता-फिरता नजर आता हूं। अब अकेला ही तो बच रहा हूं इस घर में···इसकी नजर के सामने।"

फूलकौर गमछे के लाल रंग को दूर जाते देखती है, फिर चिमटे से पकड़कर तवा एकाएक नीचे उतार लेती है। तवा जमीन तक जाने से पहले चिमटे से निकल जाता है। ऊपर पड़ी रोटी फिसलकर नीचे आ गिरती है। "बोलो, बोलो!" वह चिल्लाकर कहती है, "और काली जबान बोलो!"

भगत लोटा-बाल्टी जंगले के उस तरफ की दीवार के पास रखकर और

आता है। "तू और जोर से चिल्ला, जिससे आसपास के दस घर सुन लें!"

"सुन लें जिन्हें सुनना हो?" फूलकौर की आवाज हल्की नहीं पड़ती, "शरम नहीं आती तुम्हें अपने लड़के की जान से दुश्मनी करते?"

"अब यह बात कहां से आ गई? उस भरनचोर का किसीने नाम भी लिया है?"

"तुम क्यों नाम लोगे उसका?" फूलकौर जमीन पर गिरी रोटी को आंखों के पास लाकर उसकी धूल झाड़ने लगती है, "तुम्हारे लिए तो इस घर मे तुम्हारे सिवाय कोई बचा ही नहीं है।"

"यह कहा है मैंने? अपनी इसी अक्ल से तो तूने घर का सत्यानास किया है। यह अक्ल न होती तेरी, तो वह भरनचोर, माखनचोर, यहीं घर मे होता आज भी। छोड़कर चला न जाता।"

"बके जाओ गाली!" फूलकौर तवा फिर चढ़ा देती है, "गाली बकने के सिवाय तुम्हें कुछ आता भी है?"

"गाली बक रहा हूं मैं?"

"नहीं, गाली कहां बक रहे हो? यह तो तुम हरि-सिमरन कर रहे हो!"

पम्प का पानी जंगले के आस-पास फर्श को दिन-भर गीला रखता है। दालान के उस हिस्से को पार करते फूलकौर को डर लगता है। कितनी ही बार पैर फिसलने से गिर जाती है। जंगले के उस तरफ कुछ गिनी हुई ईंटें हैं, जिन तक पानी के छींटे नहीं पहुंचते। पर वही ईंटें सबसे ज्यादा चिकनी हैं। धोखा उन्हीं पर से गुजरते हुए होता है। बहुत जमा-जमाकर पैर रखती है, फिर भी ठीक से अपने को सभाला नहीं जाता। दस ईंटों का वह सफर हमेशा जानलेवा लगता है। सही-सलामत उसे पार करके नये सिरे से जिन्दगी मिलती है। यू जंगले की सलाखों पर पैर रखकर भी जाया जा सकता है, पर वह उससे ज्यादा खतरनाक लगता है।

आगे के कमरे मे जाने से पहले ड्योढ़ी मे कपड़ों का ढेर पड़ा रहता है, धुले-अनधुले सभी तरह के कपड़ों का। कपड़ों को हाथ लगाने पर कोई न कोई टिड्डी या मकड़ी बांह पर चढ़ आती है, या सामने से उछलकर निकल जाती है।

'हाय' कहकर फूलकौर कुछ देर के लिए अस्तव्यस्त हो रहती है। ... लिए
धड़कने लगती है। जो कपड़ा हाथ में हो, उसे हाथ में ही लिए
सामने मुस्कुराती है, "कपड़े तो अभी से ही नहीं गया।"

कमरे में कई रंगों की धूप आती है, रंगीन शीशों में छन
उन रंगीन टुकड़ों के सरकने से वक्त का पता चलता है।
शीशों की पट्टियों की आवाज सुनाई देती है, तो वह सिर
है, "चार बज गये।" इधर-उधर देखती है, जैसे चार बज
हो···जैसे उससे किसी चीज में कुछ फर्क पड़ सकता हो। रोज
से गायब हो जाते हैं, तो मन में फिर हौल उठने लगती है···फ़ि
फिर चौके में जाना होगा···टोकरी में ढूंढकर कोयले निका
में झांककर आटे की थाह लेनी होगी। ड्योढ़ी में आकर
तैयार करती रहती है। उसांस के साथ कहती है, "अब तो
जीने पर पैरों की हर आहट से वह चौंक जाती है, "की
कुछ देर गौर से उस तरफ देखती रहती है। कुछ कद
जाती है। आहट बहुत करीब आकर एक शक्ल में बदलने
एक बार पूछ लेती है, "कौन है?"

"मैं हूं," कहता हुआ भगत दालान में आ जाता है।
नजर से उसे देखती है। जैसे भगत ने जान-बूझकर उसे
"हो आए?" वह चिढ़कर पूछती है।

"कहां?"

"जहां भी गए थे?"

"गया था अपना सिर मुंडाने!"

"अपना या जिसका भी। गए तो थे ही।"

"हां, गया तो था ही। अच्छा होता गया ही रहत
फूलकौर को सांस ठीक से नहीं आती। कुछ कहना चाह
भगत पास से निकलकर पीछे के कमरे में चला जात
रहता है, "झिलकत काऽऽह घुटुरवनि आऽऽवत···मनि
मन-प्रतिबिम्ब पकरिबेऽधाऽऽवत···" धीरे-धीरे आ
... में रह जाता है। वह बाहर

है। फूलकौर उसकी तरफ नहीं देखती। वह खुद ही कहता है, "वह आज मिला था···"

फूलकौर चौंक जाती है। "कौन, बिशना ···?"

"वह नहीं, उसका वह दोस्त···कड़ी-चोर राधेश्याम !"

फूलकौर का उत्साह ठण्डा पड़ जाता है। "क्या कहता था ?"

"कुछ नहीं। कहता था···कि वह किसी दिन आएगा ···सामान लेने।"

"कौन आएगा ? राधेश्याम ?"

"नहीं। वह खुद आएगा। बिशना।"

चूल्हे की लपट से दीवार पर साये हिलते हैं। कुछ साफ नजर नहीं आता। फूलकौर आपस में उलझते सायों की तरफ देखती रहती है। "आए," वह कहती है, "आकर ले जाए जो कुछ ले जाना हो। बाकी सब चीजों की उसे जरूरत है। सिर्फ मां-बाप की ही जरूरत नहीं है।"

भगत मुंह के कसैलेपन को अन्दर निगल लेता है। "देखो, इस बार वह आए, तो उससे लड़ना नहीं।"

"फिर क्यों तुम मुझसे कहते ?" फूलकौर आवाज को सांस के आखिरी छोर तक खींच ले जाती है, "पहले मैं उससे लड़ती थी ?"

"मैंने इस बार के लिए कहा है," भगत अपने उबाल को किसी तरह रोकता है, "पहले की बात नहीं की।"

"पहले की बात नहीं की ! बात करोगे भी और कहोगे भी कि नहीं की।"

कुछ देर आगे बात नहीं होती। भगत मोढ़े से एक तीली तोड़कर उससे दांत कुरेदने लगता है। फूलकौर बार-बार तवे पर झुकती और पीछे हटती है। फिर पूछ लेती है, "क्या कहता था वह···कब आएगा ?"

"उसे भी ठीक मालूम नहीं था। कहता था, ऐसे ही बात-बात में उसके मुंह से सुना था। हो सकता है कल-परसों ही किसी वक्त चला आए।"

फूलकौर का हाथ आटे में ठीक से नहीं पड़ता। आटा ले लेने पर उसका पेड़ा नहीं बन पाता। पेड़े को चकले पर रखकर बेलन नहीं चलता। "क्या पता उसने कहा भी था या राधे अपने मन से ही कह रहा था ?" वह कहती है।

"राधे अपने मन से क्यों कहेगा ? हमसे झूठ बोलने की उसे क्या जरूरत है ?"

फूलकौर बेली हुई रोटी को गोल करके फिर पेड़ा बना लेती है। "मुझे

वार नहीं आता कि वह चुड़ैल उसे आने देगी।"

"क्यों नहीं आने देगी ?...लडका अपने मा-बाप के घर आना चाहे, तो वह न कैसे रोक लेगी ?"

फूलकौर बेली हुई रोटी हाथ पर लिए पल-भर कुछ सोचती रहती है। फिर से तवे पर डालती हुई कहती है, "उस दिन आई थी, तो मैंने उसपर सौंह जो डाली थी! कहा था कि बाप की बेटी है, तो इसके बाद न कभी खुद इस घर में कदम रखे, न उसे रखने दे!"

भगत दांत का मैल तीली से फर्श पर रगड़ देता है। "तो किसीके सिर क्यों लगाती है, अपने से कह।"

"और तुमसे न कहूं जो खाना-पीना तक छोड़ बैठे थे ? हाय-हाय करते थे कि दूसरे की ब्याहकर छोड़ी हुई औरत घर में बहू बनकर कैसे आ सकती है ?"

भगत कुछ देर तीली को देखता रहता है, फिर उसे कई टुकड़ों में तोड़ देता है। "तुम मुझे बात करने देतीं, तो मैं जैसे-तैसे लड़के को समझा लेता।"

"तुम समझा लेते...तुम !" फूलकौर इतना उसकी तरफ झुक आती कि भगत को उसे संभालकर पीछे हटा देना पड़ता है। "देखती नहीं, आगे चूल्हा है ?"

फूलकौर धोती के पल्लू को हाथ से दबा लेती है। देखती है कि कहीं जल तो नहीं गया। कहती है, "नहीं देखती तभी तो रात-दिन चूल्हे के पास बैठना पड़ता है।"

"तुझे...!" भगत बांह फेरकर मुंह साफ करता है।

"क्या कह रहे थे ?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ न कहना हो, तो चुप ही रहा करो न," फूलकौर और चिढ़ उठती "हमेशा इसी तरह आधी बात कहकर दूसरे का जी जलाते हो।"

भगत के गले में अजीब-सी आवाज पैदा होती है। [illegible] होंठ कुछ देर हो रहते हैं। फिर वह थूक निगलकर अपने को समेट लेता है।

"रोटी अभी खाओगे या ठहरकर ?" फूलकौर कुछ देर बाद पूछती है।

"अभी दे दो...या ठहरकर दे देना।"

"तुम एक बात नहीं कह सकते ? या कहो अभी दे दो, या कहो ठहरकर दो !"

भगत कुछ देर घूरकर देखता रहता है, जैसे सहने की हद को उसने पार कर लिया हो। "तुझे एक ही बात सुननी है," वह कहता है, "तो वह यह है कि न मैं अभी खाऊंगा, न ठहरकर खाऊंगा। तेरे हाथ की रोटी खाने से ज़हर खा लेना ज़्यादा अच्छा है।"

...सीढ़ियों के हर खटके से वह चौंकती रहती है, "कौन है ?" भगत उसे सीढ़ियों की तरफ जाते देखता है, तो गुस्से से रोककर खुद आगे चला जाता है। "कोई नहीं है," वह सीढ़ियों में देखकर कहता है, "जा रही थी वहां मरने ! अपना हाथ तक तो नज़र आता नहीं...आनेवाले का सिर-मुंह इसे नज़र आ जाएगा !"

फूलकौर बिना देखे लौट आती है...पर मन में सन्देह बना रहता है। उसे लगता है जैसे भगत के देखने की वजह से ही सीढ़ियां हर बार खाली हो जाती हों। वह इन्तज़ार करती है कि कब भगत घर से जाए और वह कुछ देर अकेली रहे। अकेले में ज़रा-सा भी खटका सुनाई देता है, तो वह जाकर सीढ़ियों में झुक जाती है। "बिशने...!"

कई बार देख चुकने के बाद एक बार सचमुच कोई सीढ़ियां चढ़ता नज़र आता है। बहुत पास आ जाने पर वह फिर एक बार धीरे से कहती है, "कौन है ? बिशना !"

"हां, बिशना !" भगत झुकता हुआ उसे सहारे से अन्दर ले आता है। "तेरी आवाज़ सुनने के लिए ही रुका बैठा है वह ! जब तक एक बार तू मुड़क नहीं जाएगी, तब तक वह ठीक से सुन नहीं पाएगा..."

फूलकौर अन्दर आकर भगत की तरफ नहीं देखती। उसे लगता है कि उसी की वजह से ही सब गड़बड़ हो गया है। अगर वह इस वक्त न आया होता...!

आधी रात को होदी से उठकर पम्प पर हाथ धोने जाते फूलकौर सहमकर खड़ी रहती है। गोली ईंटों से भी ज़्यादा डर लगता है जंगले से, जो पम्प के आगे दालान के एक-तिहाई हिस्से को घेरे है। लकड़ी के चौखटों में जड़ी बड़ी-बड़ी सलाखें, जिनपर से वह दिन में भी नहीं गुज़रती। लगता है नीचे से दीवानखाने का अंधेरा पैरों को बांध लेगा...एक कदम रखने के बाद अगला कदम रख पाना

सम्भव ही नही होगा। वह इस घर में आई थी, तब से अब तक दीवानखाना कभी खोला नही गया। वहां अन्दर क्या है, क्या नहीं, यह कोई भी नहीं जानता। यह भी नही कि कब कितनी पुश्तें पहले वह कमरा दीवानखाने के तौर पर इस्तेमाल होता था। कब से वह दीवानखाना मोहरा कहलाने लगा था, इसका भी कुछ पता नही था···बनवारी भगत को भी नहीं। उसके होश से पहले एक बार दरवाज़ा खुला था···जिसके दूसरे-तीसरे दिन ही, कहा जाता था कि उसके बड़े भाई की मौत हो गई थी।

फूलकौर हौदी से उठकर देर तक जंगले के इस तरफ खड़ी रहती है। सलाखों की ठण्डक और चुभन उसे दूर-दूर से ही महसूस होती है···लगता है कि रात को दीवानखाने का अंधेरा अपनी खास गन्ध के साथ जंगले से ऊपर उठा आता है···उस वक्त हल्की से हल्की आवाज़ भी उसे उस अंधेरे की ही आवाज़ जान पड़ती है··जैसे कि अंधेरा हर आनेवाले की आहट लेता हो··· और फिर चुपके से उसकी खबर नीचे दीवानखाने में पहुंचा देता हो।

किसी भी तरह हौदी से पम्प तक जाने का हौसला नहीं पड़ता। बिना हाथ धोए चुपचाप कमरे में जाकर सोया भी नही जाता। वह भगत के सिरहाने बैठकर धीरे से कहती है, "सुनो···मैं कहती हूं, ज़रा-सी देर के लिए उठ जाओ।" भगत के शरीर को वह हाथ से नहीं छूती। छूने से शरीर गन्दा हो जाता है। भगत को उतनी रात में भी कपड़े बदलकर नहाना पड़ता है।

जब तक भगत की आंख नहीं खुलती, वह आवाज़ें देती रहती है। त- अचानक भगत सिर उठाकर कहता है, "क्या हुआ है?···कौन आया है?"

"आया कोई नही है," वह कहती है, "मैं तुम्हें जगा रही हूं।"

भगत हड़बड़ाकर उठ बैठता है। पेट तक आई धोती को संभालकर घुटनों से नीचे कर जाता है। होंठों को हाथ से साफ करता हुआ कहता है, "क चोर!"

"अब कौन है जिसे गाली दे रहे हो?" फूलकौर हल्के से कहती है···खुशामद के साथ·· जैसे कि गाली देनेवाले की जगह कसूरवार गाली सुनने वाला हो।

भगत जवाब नहीं देता। जम्हाई के साथ चुटकी बजाता हुआ उठ है। "श्री हरि···श्रीनाथ हरि···श्रीकृष्ण हरि···"

पम्प तक होकर वापस आते ही भगत फिर चादर ओढ़ लेता है। फूलकौर लेटने से पहले दालान का दरवाज़ा बन्द कर देती है।

भगत दूसरी तरफ़ करवट बदलने लगता है, तो वह कहती है, "सुनो ··अब उसे गाली मत दिया करो।"

"तू मुझे सोने देगी या नहीं?" भगत भुंझलाता है, "किसे गाली दे रहा हूं मैं?"

"अभी उठते ही तुमने उसे गाली नहीं दी थी?" अब फूलकौर के स्वर में खुशामद का भाव नहीं रहता।

"किसे?"

"उसे ही। बिराने को।"

"वह यहां सामने बैठा था जो मैं उसे गाली दे रहा था?"

"इसका मतलब है कि वह सामने आएगा, तो तुम गाली देने से बाज़ नहीं आओगे? मैं पहले नहीं कहती थी कि लड़का बड़ा हो गया है, तुम्हें उससे ज़बान सभालकर बात करनी चाहिए?"

भगत मुंह का झाग गले में उतार लेता है। "उसे पता है गाली मेरे मुंह पर चढ़ी हुई है। मैं जान-बूझकर नहीं देता।"

"तो ठीक है। तुम आज तक अपनी कहनी से बाज़ आए हो, जो आज ही आओगे? मैं खामख्वाह अपना सिर खपा रही हूं।"

भगत कुछ देर चुप रहकर आंखें झपकता है। "तू ऐसे बात कर रही है जैसे वह आज इसी वक्त चला आ रहा है।'

फूलकौर का सिर थोड़ा पास को सरक आता है। रुकती-सी सांस के साथ वह कहती है, "कम से कम मुंह से तो अच्छी बात बोला करो।"

"अब मैंने क्या कह दिया है?" एक तेज़ सांस फूलकौर की सांस से जा टकराती है।

"जिसे आना हो, वह भी ऐसी बात मुंह पर लाने से नहीं आता।"

भगत की सांस कुछ धीमी पड़ जाती है। वह कहता है, "उसके आने पर मैं कुछ बात ही नहीं कहूंगा। चुप रहूंगा, तो गाली भी मुंह से नहीं निकलेगी।"

फूलकौर का सिर सरककर वापस अपने तकिये पर चला जाता है।

ुम अब कुछ भी बात करना लगोगे। जिसमें वह आए भी, तो उसे
चोट भी आए। यह तुम बन्द कर सकते हो, पर गाली देने से बाज नहीं
ते!"

मैंने यह कहा है?"

नहीं, यह नहीं, और कुछ हुआ है। तुम हमेशा अपने मुंह से ठीक बात
ी। सुननेवाला गलत सुन लेता है।"

गत को नींद नहीं आती। हर करवट शरीर का बोझ बांह के किसी न
हिस्से पर भारी पड़ता है, हड्डियां चुभती हैं। एक ठण्डक-सी महसूस होती
हर से नहीं, अन्दर से लगता है कि वही ठण्डक है, जो धीरे-धीरे बाहर
जा रही है।

ार के नीचे हाथ रखे वह अंधेरे को देखता रहता है···कभी-कभी अंधेरे
 को देखने की कोशिश करता है·· जैसे कि लेटा हुआ आदमी कोई
, देखनेवाला कोई और। पर ज्यादा देर अपने को इस तरह नहीं
ाता।

 सांसों की आवाज़ लगातार सुनाई देती है···एक अपनी, दूसरी
र की। एक सांस नीचे जाती है, तो दूसरी ऊपर आती है···फिर पहली
ठती है और दूसरी नीचे चली जाती है। कभी-कभी दोनों सांसें एक
ो काटती हैं। वह पल-भर सांस रोके रहता है, जिससे दोनों की लय
ीक हो जाए·· पर लय कुछ देर के लिए ठीक होकर फिर उसी तरह
 लगती है।

ई चीज़ पैर पर से गुज़र जाती है। 'हा' की आवाज़ के साथ वह अचानक
ता है। पैर को छूकर इधर-उधर देखता है। फिर उठकर खड़ा हो जाता
 दीवार, जिस पर बिजली का बटन है, दो गज़ के फ़ासले पर है। एक-
म वह उस दीवार की तरफ़ बढ़ता है। हर बार जमीन को छूने से
क सरसराहट जिस्म में भर जाती है···लगता है कि पैर किसी लिजलिजी
 टकराने जा रहा है। साथ ही एक डर भी महसूस होता है···कि कहीं
ह चीज···ठोस-ठण्डा फर्श पैर से छू जाता है, तो हल्का-सा आभास सुख

का भी होता है, सुरक्षित होने के सुख का, पर तब तक अगला कदम डर की हद तक पहुंच चुका होता है···

टटोलता हुआ हाथ बटन को ढूंढ़ लेता है, तो उस सुख की कई लहरें एक साथ शरीर में दौड़ जाती हैं। पचीस वाट के बल्ब की रोशनी कमरे की हर चीज को नये सिरे से जिन्दा कर देती है।

भगत सारे फर्श पर नजर दौड़ाता है। सन्दूकों के ऊपर-नीचे देखता है। बन्द दरवाज़े में हल्की-सी दरार देखकर उसे पूरा खोल देता है···जैसे कि देखने की जिम्मेदारी बाहर देखे बिना पूरी न होती हो। "हट, हट, हट!" कहकर दहलीज़ लांघने से पहले वह कुछ देर रुका रहता है। ड्योढ़ी में बिखरे मैले कपड़ों और पुराने बिस्तरों में आहट का इन्तज़ार करता है। अफ़सोस होता है कि सब चीज़ें उस तरह क्यों पड़ी हैं। पर उन्हें उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती। एक-एक चीज़ को आंखों से टटोलता है। छूता नहीं। लगता है छूने से वह लिजलिजी चीज़ आंखें और पंजे उठाए अचानक सामने नजर आ जाएगी।

लौटने से पहले दो-एक बार वह पैर से फर्श में धमक पैदा करता है। कहीं कोई हरकत नहीं होती। किसी तरफ से आहट सुनाई नहीं देती। पर दहलीज़ लांघकर वापस कमरे में कदम रखते ही बिजली टूटती है···वही लिजलिजी चीज तेजी से पैर के ऊपर से गुज़र जाती है···और ड्योढ़ी पार करके जंगला पार करने की कोशिश में धप् से नीचे जा गिरती है। एक हल्की-सी आवाज··· च्यों च्यों च्यों···और बस।

भगत कांपकर सुन्न हो रहता है। लगता है जैसे उस तेज दौड़ती चीज के साथ उसके अन्दर की कोई चीज़ भी धप् से दीवानख़ाने में जा गिरी हो··· और अब वहां से उठकर वापस आने की कोशिश में वहीं डूबती जा रही हो। दरवाज़ा बन्द करके लम्बे कदम रखता हुआ वह बिस्तर पर लौट आता है।

अब उसे बत्ती बुझाने का ध्यान आता है। वापस दीवार तक जाने, बत्ती बुझाने और लौटकर बिस्तर तक आने की बात सोचकर घुटने कांपने लगते हैं।

उसे बिशने का ख़याल आता है। अभी तीन साल पहले की बात थी, जब बिशने ने दीवानख़ाने से निकले एक सांप को निचली ड्योढ़ी में लाठी से मार दिया था। इस बात पर बिशने से कितनी खटपट हुई थी! बड़ों से सुन रखा

था कि दीवानखाने मे खानदान का पुराना धन गड़ा है, और उनके बाबा-पड़दाद सांप बनकर उसकी रखवाली करते हैं। दीवानखाने को खोला इसीलिए नहीं जाता था कि पुरखे उससे नाराज़ न हो जाएं। और यह लड़का था कि इसने नाली के रास्ते हवा लेने के लिए बाहर आए एक पुरखे को जान ही से मार डाला था!

"सुन!" वह फूलकौर को धीरे से हिलाता है। दो जागती आंखों के सामने ही वह बत्ती बुझाना चाहता है।

फूलकौर आंखें खोलती है…इस तरह जैसे कि जगाए जाने की राह ही देख रही हो। उसके होंठों पर हल्की मुसकराहट आती है…सपने से बाहर बनी आई-सी। "क्या बात है?" वह पूछती है।

"कुछ नहीं। ऐसे ही आवाज़ दी थी।"

फूलकौर के होंठ उसी तरह फैले रहते हैं…सिर्फ मुसकराहट की रेखा परेशानी की रेखा में बदल जाती है। "तबीयत ठीक है?" वह पूछती है।

"हां, ठीक है।"

"पानी-वानी चाहिए?"

"नहीं।"

"फिर…?"

"एक बात कहनी थी…"

फूलकौर बैठ जाती है। "मुझे पता है जो बात कहनी थी, बत्ती बुझानी
थी।"

"इतनी ही तो समझ है तेरी!" भगत खीज उठता है, "बत्ती बुझाने के
मैं तुझे जगाउंगा!… मैं बात करना चाहता था, उसके बारे में…"

"पहले उठकर बत्ती बुझा दो…फिर जो चाहो बात करते रहना।"

भगत उठता है… जैसे ताव में…और बत्ती बुझाकर लौट आता है। अंधेरे
देर दोनों राह देखते हैं…एक-दूसरे की आवाज़ सुनने की। फिर फूलकौर
कहती है। "अब बोलते क्यों नहीं?"

त चुप रहता है। सोचता है कि अगली बार भी जवाब नहीं देगा। सिर्फ
देगा "कुछ नहीं।"

फूलकौर दोहराकर नहीं पूछती। कहती है, 'अच्छा, मत बताओ।'"

भगत के मुह तक आया हुआ 'कुछ नहीं' तब तक बाहर फिसल आता है। वह उसे समेटता हुआ कहता है, "कुछ खास बात नहीं···इतना ही कहना चाहता था कि···अगर दो चूल्हे अलग-अलग कर लिए जाएं···वे लोग कुछ खाना-पकाना चाहें, अलग से खा-पका लें···"

फूलकौर की आखें अंधेरे मे उसके चेहरे को टटोलती है, "क्या कहा है तुमने ?"

"यही कि · "

"तुम कह रहे हो यह बात ?"

खटमल जैसी कोई चीज भगत को अपनी जांघ पर रेंगती महसूस होती है। उसे वह अगूठे से मसल देता है। "मैं तेरी वजह से कह रहा था···क्योंकि बाद में तू सारी बात मेरे सिर पर डाल देगी।"

"बिशना आए तो कह दूं मैं उससे ?"

"हां···कह देना।"

"तो इसका मतलब है कि···"

भगत कुछ न कहकर आगे सुनने की राह देखता है।

"···कि वह भी बिशने के साथ यहीं रहेगी आकर···?"

भगत धोती उठाकर जांघ को अच्छी तरह झाड़ लेता है। "अब मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं। मुझे पता था, तू इन्हें घर मे रखने को राजी नहीं है।"

"यह कहा है मैंने ?"

"खुद चाहती नहीं है, और तोहमत मेरे सिर पर लगाती है।"

"मैं नहीं चाहती ?·· मेरी तरफ से वह किसीको भी घर मे ले आए। मैं यहा न पड़ रहूंगी, पीछे के कमरे में पड़ रहूंगी। फर्क जो पड़ता है, वह तो तुम्हारी भगताई को ही पड़ता है।"

"मुझे क्या फर्क पड़ता है ?" भगत उतावला होकर कहता है, "ठाकुर जी की सेवा के लिए मैं कुएं से किरमिच के डोल में पानी ले आया करूंगा।"

कुछ देर खामोशी रहती है। दोनों की सांसें एक-तार चलती है। फिर भगत कहता है, "दरअसल उसे भगत अच्छी नहीं मिली।"

"किसे ?"

"बिशने को, और किसे ?···अब यह राधे ही है···न रखता उन्हें अपने घर में···कह रहा था कटरे में उनके लिए अलग मकान भी देख रहा है।"

"वह अलग मकान लेकर रहेगा ?"

भगत हुंकारा भरकर खामोश ही रहता है। कुछ देर बाद करवट बदलते हुए कहता है, "कढ़ी-चोर···!"

चौगान

पीछे का दरवाज़ा खुलकर बन्द हुआ और बरामदे में पैरों की आहट सुनाई दी तो साहब की मुंदी हुई आँखें अनायास खुल गईं। गरदन लेटे-लेटे जकड़ गई थी, इसलिए उसने आँखों को ही थोड़ा घुमाकर देख लिया। काशीराम कॉफी की ट्रे लिए आ रहा था और उसका जूता बरामदे में ठक्-ठक् कर रहा था। साहब के माथे पर हल्की-सी शिकन पड़ गई। उसने बीसियों बार इस आदमी को समझाया था कि वह चाय-कॉफी लेकर उसके पास आए तो अपना कीलों वाला जूता उतार दिया करे, और दूसरा रबड़ का जूता पहन लिया करे। मगर काशीराम के दिमाग में जाने कैसा सूराख था कि उसे यह बात कभी याद ही नहीं रहती थी।

"साहब जी, कॉफी!" काशीराम पास आकर खड़ा हो गया, तो भी पल-भर साहब उसे गुस्से की नज़र से देखता रहा। मगर मन में दूसरी बात उठ आने से *वह कीलों वाले जूते की बात भूल गया और उसका गुस्सा बैठ गया।* काशीराम ने एक तिपाई खींचकर साहब की कुरसी के पास कर दी और चाय की ट्रे उसपर रख दी।

"मेम साहब नहीं आया?" साहब ने पूछा।

"नहीं साहब जी, अभी नहीं आया," कहकर काशीराम कॉफी प्याली में डालने लगा।

"तुम जाओ, हम खुद बनाएगा।" कहते हुए साहब ने अपने शरी
कर लिया। काशीराम कॉफ़ी-पॉट ट्रे में रखकर चला गया। उस
आवाज़ काफ़ी देर साहब के माथे की नसों पर चोट करती रही। ए
हाथ बढ़ाया कि अपने लिए कॉफ़ी की प्याली बना ले, मगर हाथ
दस्ते को छूकर लौट आया। उसे कॉफ़ी बनाने-पीने की ज़रा भी
अन्दर महसूस नहीं हुई। उसका शरीर आराम-कुर्सी पर थोड़ा
गया, पैर बरामदे की रेलिंग पर फैल गए और दोनों हाथ सिर के
उसे लगा जैसे वह अभी-अभी बड़ी मेहनत करके हटा हो जिसमें
निढाल हो गया हो, और अब उसे आराम की ज़रूरत हो।

उसे अपनी टांगों, बांहों और आंखों पर न जाने कैसा बोझ
रहा था। आंखें बन्द होतीं तो खुली रहना चाहतीं, और खुली
आप बन्द होने लगतीं। सामने का आकाश किसी-किसी क्षण
जाता, मगर फिर वह स्याही ज़रा-ज़रा साफ़ होने लगती और
बादल के टुकड़े, कुछ पतले-पतले वृक्षों की रेखाएं और उन
रात होने से पहले ही भटक आया एकाध तारा, ये सब धुं
दिखाई दे जाते। उसके बाद आंखें फिर मुंदने लगतीं और वह
गहरी स्याही में बदल जाता।

बरामदे में दूसरी बार आहट सुनाई दी तो उसको आं
नहीं हुआ। वह आहट काशीराम के जूते की आवाज़ से अल
कि वह किसके पैरों की आहट है, पर चाहते हुए भी उस
गई। आहट उसके कानों के बहुत पास तक आकर दूर
किसी तरह कठिनाई से अपने को झटक लिया। वृक्षों की
सच अंधेरे में डूब गई थी, यद्यपि बादलों के टुकड़े पहले
गए थे और वह अकेला तारा कितने ही तारों के झुरमुट में
अपनी नज़र बाईं तरफ़ घुमाई तो देखा कि सन्तो अपनी
उसके पास से गुज़रकर दबे पैरों पीछे के कमरे की तरफ़
"सुनो," साहब के गले से डूबी-सी आवाज़ निकली
ठिठक गई और उसने जल्दी से चप्पल पैरों में पहन ली।

"साहब जी," वह अपराधी की तरह जमीन पर बैठने लगी तो साहब ने हाथ के इशारे से उसे रोक दिया।

"उधर नहीं बैठो, कुर्सी लेकर बैठो।"

सन्नो ने सहमी हुई नजर से इधर-उधर देखा। बरामदे में दूसरी कुर्सी नहीं थी।

"मैं अभी लेकर आती हूं," उसने कहा।

"काशीराम को बोलो।"

सन्नो ने काशीराम को आवाज दी। वह उसी तरह टक्-टक् करता आया और कुर्सी रखकर चला गया।

"बैठो।"

सन्नो बैठ गई। साहब ने सीधे होने की चेष्टा की तो उनसे उठा नहीं गया। उनकी टांगें सो गई थीं और बांहों में इतनी हिम्मत नहीं थी कि पूरे शरीर का भार संभालकर उसे ऊपर उठा दें। सन्नो ने उठकर साहब की बांहों को सहारा दिया और उन्हें ठीक से बिठाकर फिर अपनी कुर्सी पर चली गई। साहब को खांसी उठ आई। कुछ क्षण वह बेहाल-सा बैठा सन्नो के चेहरे की तरफ देखता रहा।

"मैंने तुमको बोला था," साहब की बात पूरी नहीं हुई। उनका गला बुरी तरह भारी हो रहा था।

"मैं उधर नहीं गई थी, साहब जी!" सन्नो कुर्सी से उठकर जमीन पर बैठ गई और अपने दोनों हाथ उसने साहब के पैरों पर रख दिए, "मैं अपनी मां की कसम खाकर कहती हूं कि मैं उधर नहीं गई थी।"

"उठकर कुर्सी पर बैठो," साहब ने अन्दर से उठती खांसी की वजह से अपनी सांसों को दबाए हुए कहा, "मैंने तुमको बोला नहीं था कि - "

"अच्छा साहब जी, हमको माफ कर दो। मैं कुर्सी पर बैठ जाती हूं।" सन्नो की आंखों में आंसू आ गए और वह ऐसी नजर से साहब की तरफ देखने लगी जैसे अभी उसको विदाई होने वाली हो।

"तुम चौगान नहीं गई थी।

सन्नो चुपचाप देखती रही। जैसे उसे लग रहा हो कि बात अब अपना कि एक बात—इसलिए कि पिछले एक-डेढ़ साल से साहब के हाथों में इतनी ताकत नहीं रही थी कि बात बताने के लिए उठ भी सकें।

"मैं क्या पूछ रहा हूं ? तुम चौगान गई थीं कि नहीं ?"

सन्तो ने सिर हिला दिया। उसकी पलकों में रुके हुए आंसू नीचे लुढ़क आए। उसने अपनी कमीज़ की बाहू से आंखें पोंछ लीं।

"कमीज़ से आंखें क्यों पोंछती हो ?" साहब सहसा चौगान की बात भूल गया और उसका चेहरा गुस्से से तमतमा उठा।

"नहीं पोंछती, साहब जी," कहती हुई सन्तो हाथों से आंख मलने लगी।

"मैंने तुमको यह बोला था कि तुम हाथों से आंखें पोंछा करो ?" साहब गुस्से में थोड़ा ऊंचा उठने को हुआ, पर सहसा उसे पसीना आ गया। उसका शरीर शिथिल हो गया और चेहरे पर ज़र्दी छा गई। वह आंखें मूंदकर कुर्सी पर नीचे को लुढ़क गया। सन्तो घबराकर कुर्सी से उठ खड़ी हुई और साहब का चेहरा दोनों हाथों में लेकर हिलाने लगी।

"साहब जी ! साहब जी ओ !"

साहब की आंखें पल-भर बाद ज़रा-सी खुलीं, और उसने बुदबुदाकर कहा, "ब्रांडी।" सन्तो नंगे पैरों ब्रांडी लाने के लिए दौड़ पड़ी। साहब के माथे की त्योरी गहरी हो गई और उसने एक लम्बी सांस लेकर कहा, "ओ गॉड !"

पत्तों से छनकर आती चितकबरी चांदनी में लेटे हुए साहब की आंखें कम की ओर आकाश के उस टुकड़े की जो खिड़की से दिखाई दे रहा था, गहराई नाप रही थीं। हैरी, हैरी विलसन···जो कभी लन्दन के क्लबों और नाचघरों शौकीन था, जो अपने यूनिवर्सिटी के दिनों में एक फैशनपरस्त नवयुवक था, अपने देश से हज़ारों मील दूर, हिन्दुस्तान के इस छोटे-से कस्बे में आकर केव 'साहब' रह गया था। साहब—जिसके आगे न हैरी लगता था, न पीछे विलस वह विदेशी नाम ही जैसे उसका एक नाम रह गया था, हालांकि बरसों से यु रहने के बाद भी वह उसे बेगाना-सा लगता था। परन्तु वह बेगानापन, जो अपने-आपसे भी बेगाना रहता था, उसके व्यक्तित्व के लिए कितना स्वाभा हो गया था !

बाहर से आती हवा में सेब, अनार और नाशपाती की मिली-जुली गन्ध जो बहुत परिचित होते हुए भी अपरिचित लग रही थी। जैसे कि वह गन्ध उस नाम की तरह बेगानी हो। उस गन्ध में वह आत्मीयता नहीं थी जो म

के धुएं और कोहरे में प्रतीत होती थी। पहले महायुद्ध के दिनों में मोर्चे पर लड़ते हुए भी उसे कई बार उस धुएं और कोहरे की गन्ध याद आया करती थी। जाने वह धुआं और कोहरा उसके स्नायुओं में क्यों इस तरह बसा हुआ था?

चितकबरी चादरी के नन्हे-नन्हे गोले रह-रहकर हिल जाते। उसका सिर *जकड़ा हुआ था और कनपटियों की नसों में हलका-हलका दर्द हो रहा था।* उसे लग रहा था जैसे वह बिस्तर पर न होकर एक जहाज़ की छत पर लेटा हो और वह जहाज़ उसे न जाने किस अज्ञात दिशा की ओर लिए जा रहा हो। किसी-किसी क्षण उसे महसूस होता कि अभी जहाज़ का भोंपू बजेगा और वह सिर उठाकर देखेगा, तो उसे टेम्ज के किनारे बसे हुए घरों की पंक्तियां दिखाई देंगी।

उसे लग रहा था कि वह एक लम्बी तट-रेखा के साथ-साथ चल रहा है और कई-कई चेहरे उसके पास से गुज़रते जाते हैं। उसका बड़ा लड़का जिमी कप्तान की वर्दी में किसी जहाज़ की रेलिंग के पास खड़ा सिगार पी रहा है... छोटा लड़का फ्रेड एक कारखाने में मशीन चला रहा है...उसकी लड़की मार्गरेट एक क्लब में अधनंगी नाच रही है... और उसकी पत्नी लिज़ी एक मामूली-से घर में *एक उसी जैसे बूढ़े आदमी को प्यार से कॉफी की प्याली बनाकर दे रही है।* लिज़ी! उसे बहुत अजीब लगता था कि लिज़ी का चेहरा जब भी याद आता था, तो वह तीस बरस पहले का युवा चेहरा ही होता था जिसे उसने आखिरी बार अदालत के कटघरे में देखा था। लिज़ी ने उसके तीन बच्चों की मां होकर भी उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। उसने कहा था कि वह उसे नहीं चाहती, किसी और को चाहती है... और इस तरह की जिन्दगी ढोना उसके लिए संभव नहीं है। वह स्वभाव का सख्त आदमी था और लिज़ी को उससे काफी शिकायत रहती थी। पहले कुछ साल लिज़ी सब कुछ सहती हुई भी खामोश रही थी मगर जब वह बोल पड़ी, तो जिन्दगी को फिर पुरानी सतह पर ले जाना संभव नहीं हुआ। मगर लिज़ी ने हैरी की डांट-फटकार को ही सुना था, उसके अन्दर क्या कभी *झांककर नहीं देखा था? काश कि लिज़ी उसके दिल को समझ सकी होती...!*

उसने करवट बदल ली। उसका चेहरा तकिये में धंसा, तो जैसे वह स्वयं ही एक गहराई में धंसता चला गया। लिज़ी के साथ सम्बन्ध-विच्छेद के बाद के दस वर्ष! कितनी यातना थी इन दस वर्षों में! उसे घर में रहना तो क्या, लन्दन में जीना ही एक यन्त्रणा लगती थी। मां के बाद बच्चे बिलकुल अपनी

मर्ज़ी से चलने लगे थे—उसका ज़रा कहा नहीं मानते थे। वह बनवों और नाच-घरों में जाता, तो उसे लगता जैसे वह अपना ही भूत हो जो अपनी गुज़री हुई ज़िन्दगी के आस-पास मंडरा रहा हो। उसकी सेहत काफी गिर गई थी और उसके डॉक्टर भी उसे लन्दन छोड़कर चले जाने का परामर्श देते थे। आखिर उसने तय किया था कि वह कहीं बहुत दूर चला जाएगा—किसी बहुत एकान्त जगह पर और अपनी ज़िन्दगी बिलकुल नये सिरे से शुरू करेगा। उस समय वह पचपन को छू रहा था, फिर भी उसी आशा का सूत्र पकड़े वह हिन्दुस्तान चला आया था। कुल्लू का वह गांव उसने युद्ध के दिनों में एक बार पहले भी देखा था··· उन दिनों रोहतांग के पास उनकी छावनी थी। न जाने क्यों, जब भी वह देश से बाहर जाकर कहीं बसने की बात सोचता, तो उसी गांव का चित्र उसके सामने आ जाता। वह जब वहां आया, तो गांव बिलकुल उजाड़ था। उसने वहां अपनी कोठी बनवाई और बागीचे लगवाए। उसके बाद इस इलाके की आबादी बढ़ने लगी। लोग उसकी इज़्ज़त करते थे और उससे डरते भी थे। व बन्दूक हाथ में लिए जब घूमने के लिए निकलता, तो उसे स्वयं लगता जैसे व उस प्रदेश का शासक हो और बाकी सब लोग उसकी प्रजा हों। यह सब उ अच्छा लगता था, मगर जब वह खाने की मेज़ पर अकेला बैठता, तो एक विचि बेगानापन उसे घेर लेता। अकेले क्षणों में उसे अपने 'साहब' से घृणा होने लग और उसका मन फिर से हैरी विलसन बनकर जीने को करता।

कुछ वर्ष तो उसने अकेले काट लिए, मगर जब वह अकेलापन बहुत ही अस प्रतीत होने लगा, तो उसने अपने आखिरी दिन काटने के लिए बागीचे की नौकरानी की लड़की सन्तो को घर में रख लिया। सन्तो तब मुश्किल से स साल की थी। वह उसकी भाषा नहीं बोल सकती थी, पर उसने स्वयं उन लं की भाषा काफी सीख ली थी। सन्तो की मां को उसने पांच सौ रुपया देकर से साठ मील दूर एक और गांव में बसा दिया जिससे उस सम्बन्ध की हीनता वह कुछ हद तक भुलाए रख सके।

परन्तु उससे भी उसका अकेलापन दूर नहीं हुआ। सन्तो उसकी निव में आकर ऐसे व्यवहार करती थी जैसे एक बच्चे को किसी बहुत ऊंची कुर्सी बिठा दिया गया हो और वह वहां बैठकर खुश भी हो और साथ डरता भं कि कहीं नीचे न गिर जाए। वह सन्तो से प्यार करता था, तो सन्तो इस

उसके मुह की तरफ देखती रहती थी जैसे वह इन्सान न होकर किसी कीमती धातु का बना एक बुत हो। वह चाहता था कि सन्तो किसी तरह उसके बराबर की हो जाए, उसकी बात को समझ सके और उसके दर्द की गहराई को नाप सके। परन्तु वह कभी उसे अपने पिछले जीवन की बातें सुनाने लगता, तो सन्तो सहसा खिलखिलाकर हस पड़ती और वह अवाक् होकर उसके चेहरे की तरफ देखता रह जाता।

"तो तुम्हारा वह बेटा बहुत बडा है, साहब जी ?" वह पूछती।

वह सिर हिला देता और पल-भर के लिए आंखें मूंद लेता।

"तुमसे भी बडा ?"

वह फिर सिर हिलाता और आखें खोल लेता। सन्तो फिर हसती, "कैसी बात करते हो, साहब जी ? तुम्हारा बेटा तुमसे बडा कैसे हो सकता है ?"

सन्तो उसे निःसकोच भाव से अपने शरीर से खेल लेने देती थी, और जब वह खेल चुकता तो सारे घर मे खुशी से नाचती फिरती थी। जैसे वह हरेक को यह बता देना चाहती हो कि साहब कैसे उसके बालों में उंगलियां उलझाता है और उससे मीठी-मीठी बातें कहता है। वह नगे पैरों घर-भर मे दौडती थी, और जरा-जरा देर मे अपने नये फ्रॉक मैले कर आती थी। वह उसे रहन-सहन की आदतें सिखाने के लिए रात-दिन मेहनत करता था। "सन्तो, तुमसे कहा था कि चाय पीते वक्त यह कपडा अपनी जाघो पर बिछा लेते हैं। फिर तुमने चाय अपने कपडों पर गिरा ली ?"

सन्तो डरी हुई नजर से उसकी तरफ देखती। उसके हाथ की प्याली से और चाय छलक जाती।

"जाओ, कपड़े बदलकर आओ !"

"साहब जी, आज माफ कर दो, कल से नही गिराऊगी।" यह कहते-कहते चाय की प्याली उसके हाथ मे फिर तिरछी हो जाती।

"तुम्हे अभी तक चाय की प्याली पकड़ना भी नही आया ? मैंने कितनी बार सिखाया है ?"

"हा, साहब जी, तुमने बहुत बार सिखाया है।"

"तो फिर ?"

"अब नही गिराऊंगी, साहब जी। मैं अब कभी नहीं गिराऊंगी," और वह

होंठ बिसोरकर रोने लगती।

"मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि मेरे सामने रोया मत करो?"

"अब नहीं रोऊंगी साहब जी!" और वह फ्रॉक की बांह से और हाथों से आंखें मलने लगती।

वह भल्लाकर अपनी जगह से खड़ा होता। "मैंने तुमसे यह नहीं कहा था कि आंखें फ्रॉक से और हाथों से नहीं पोंछते?"

सन्तो कभी डर से सहमी हुई उसकी तरफ देखती रहती और कभी ज़मीन पर उलटी लेटकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगती।

वह हताश होकर कमरे से निकल जाता। कुछ देर बाद लौटकर स्वयं ही उसे ज़मीन से उठाता।

"अब तुम रोना बन्द करोगी या नहीं?"

वह सिर हिलाती और उठ खड़ी होती।

"जाकर कपड़े बदलोगी या नहीं?"

"बदलूंगी।"

"सिर में आज तेल डाला था?"

"नहीं।"

"दांत साफ किए थे?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"अब जाकर कर लेती हूं।"

"तुम्हें मैं तुम्हारी मां के पास भेज दूं?" वह फिर भल्ला उठता। सन्तो डरकर सिर हिलाती, "नहीं।"

"तुम्हारी ये गन्दी आदतें कभी छूटेंगी भी?"

वह सिर हिलाती, "क्यों नहीं छूटेंगी?"

"कब छूटेंगी?"

"कल से छूट जाएंगी।"

वह एक उसांस भरकर बन्दूक उठाता और बागीचों की तरफ निकल जाता।

पहले दिनों में उसके भल्लाने से सन्तो बहुत रोया करती थी, मगर पिछले एक-डेढ़ साल से स्थिति बदल गई थी। जब से उसे दिल का दौरा पड़ने लगा

था और उसका घूमना-फिरना बन्द हुआ था, तब से उसका डाटना भी काफी कम हो गया था। इससे सन्तो पहले से खुश रहती थी और वही कभी-कभी तकिये में मुह छिपाकर चुपचाप रो लिया करता था। सन्तो उसे रोते देखती, तो उसके सिरहाने आ खड़ी होती। "साहब जी, बहुत दर्द होता है क्या?"

वह हाथ के इशारे से उससे कहता कि वह पास से हट जाए—वह कोई बात नहीं करना चाहता।

"साहब जी, डॉक्टर को बुलवाकर सूई लगवा लो, दर्द ठीक हो जाएगा," वह कहती।

वह व्यथित भाव से आंखें उठाकर उसकी तरफ देखता। सन्तो उसके और पास झुक आती। "साहब जी, तुम्हारा दर्द कितने दिन में ठीक हो जाएगा?"

"क्यों?" उसका मन खिड़की से बाहर दूर की गहराई में डूबने लगता।

"कितने दिन हो गए साहब जी, तुमने···तुमने···"

"जाओ।" उसका सिर तकिये में गहरा डूब जाता। आकाश की सारी गहराई उसके आस-पास सिमट आती।

"साहब जी, जहां दर्द है, वहां तेल की मालिश कर दूं?"

वह कुछ न कहकर चुप पड़ा रहता।

"देसी तेल की मालिश से दर्द को बड़ी जल्दी आराम आ जाता है।"

वह करवट बदलकर मुंह दूसरी तरफ कर लेता।

"अच्छा साहब जी, मैं चौगान से लकड़िया चिरवा लाऊं!"

वह फटी-फटी आंखों से सामने की दीवार की तरफ देखता रहता। वह धीरे से कमरे से बाहर चली जाती।

साहब का तकिया भीग गया था। कुछ पसीने से, कुछ आंसुओं से। चितकबरी चांदनी के कोने उसपर हिल रहे थे, जैसे हवा में पत्तियां कांप रही हों। दूर से व्यास की आवाज़ इस तरह सुनाई दे रही थी जैसे लगातार एक जोर का विस्फोट चल रहा हो। व्यास की आवाज में डूबती-उतराती कुछ और आवाज़ें थीं जो अस्पष्ट होती हुई भी हवा के किसी-किसी झोंके से स्पष्ट हो जाती थीं—एक हंसी, एक गीत का टुकड़ा, एक शराबी की बड़बड़ाहट और एक बांसुरी की लय—और सहसा वे सब आवाज़ें फिर दरिया की गड़गड़ाहट में

[illegible] आती थी। साहब के मन में हर आवाज़ की एक तस्वीर बन जाती —एक लड़की—[illegible] सन्तो—दरिया के किनारे एक पत्थर पर बैठी हंसती [illegible] मुस्कुराती है। एक युवक शराब के नशे में बाहें हिलाता उसके पास आता है। उसकी बांह पकड़कर अपनी तरफ खींचने लगता है। और…और… [illegible] में डूबते जहाज़ का भोंपू बज उठता है…दूर की चिमनियों से [illegible] धुआं कोहरे के साथ संघर्ष करता है और एप्रन बांधे एक बुढ़िया अण्डे और बेकन की प्लेट उसी जैसे एक बुड्ढे आदमी के सामने रख देती है। बुड्ढा हाथ बढ़ाकर बुढ़िया को अपनी तरफ खींच लेता है और…और फिर व्यास के [illegible] से कुछ आवाज़ें आती हैं जो फिर दरिया की गड़गड़ाहट में डूब जाती हैं…।

साहब एकाध बार बुखार में बुदबुदाया, "ओह ! कुतियाएं ! कुतियाएं !"

साहब के मरने के बाद घर के आंगन में ही एक तरफ उसकी कब्र बनवा दी गई। कब्र के पत्थर और अपने दफनाए जाने की जगह साहब ने बहुत पहले से चुन रखी थी। साहब की इच्छा के अनुसार कब्र के पास एक युकिलिप्टिस का पौधा लगवा दिया गया।

रात के अंधेरे में सन्तो कभी-कभी उस कमरे का दरवाज़ा खोल लेती जिसमें साहब ने अपनी आखिरी सांस छोड़ी थी। एक सहमी नज़र अन्दर डालती, जैसे अब भी उसे वहां से साहब की डांट का डर हो और कांपते होंठों से अपनी रुलाई किसी तरह रोके हुए दरवाज़ा बन्द कर देती। साहब के रहते उसे उस कमरे से उतना डर नहीं लगता था जितना अब लगता था। साहब उसे कभी डांटता था, तो कभी प्यार भी करता था। मगर वह अंधेरा तो केवल डांटता ही था, कभी प्यार नहीं करता था। वह दरवाज़ा बन्द करके दबे पैरों बाहर — एहसास होता कि उसके पैर नंगे हैं और वह झट से जाकर पैरों [illegible] । घर और बागीचों के छोटे-छोटे कामों में अब साहब की [illegible] देने पड़ते थे। काशीराम, जो पहले उसकी बात की परवाह [illegible] माथे पर बल डाले उसके सामने आ खड़ा होता। "मेम [illegible] है कि सेब बड़ी पेटियों में ही भरे जाएंगे या कुछ छोटी

पेटियां भी भरवानी हैं ?"

वह कुछ पल असमंजस में चुप रहती। इस तरह की जिम्मेदारियां कभी उसपर भी पड़ सकती हैं, यह उसने नहीं सोचा था। आखिर वह कहती, "साहब जिस तरह भरवाता था, उसी तरह भरी जाएगी। सौ में अस्सी मन की बड़ी पेटियां और बीस मन की छोटी।" और कुछ इस तरह की अनुभूति के साथ जैसे एक बहुत बड़ा पहाड़ उसने आसानी से उठा लिया हो, वह दूसरे कामों में लग जाती। खाना खाने बैठती, तो जिस तरह साहब उसे छुरी-कांटा पकड़कर खाना सिखाता था, उसी तरह पकड़कर आधा-आधा घण्टा खाने के साथ कसरत करती, हालांकि पूरा खाना फिर भी उससे उस तरह न खाया जाता। अन्त में उसे याद न रहता कि खाना खाने के बाद छुरी-कांटे को एक-दूसरे के ऊपर रखना होता है या अलग-अलग उलटा करके रखना होता है। उसे हर समय अपने से गलती हो जाने का डर बना रहता और वह इस तरह कातर दृष्टि से दीवार की तरफ या काशीराम की तरफ देखती जैसे साहब की आत्मा उनके अन्दर से उसकी तरफ भांक रही हो और उसे अपने हर काम के लिए उनके सामने जवाबदेही करनी हो। काशीराम घूरकर उसे देखता रहता और उसके पास से रसोईघर में जाकर मुंह बिचका देता। "अब साली शौकीन हो रही है! खसम के मरने की खुशी मना रही है!"

पहले रात को तकिये पर सिर रखते ही उसे नींद आ जाती थी। मगर अब वह देर तक जागती रहती और दरिया की आवाज सुनती रहती। पहले कभी वह आवाज़ उसे उतनी डरावनी नहीं लगती थी। अब उसे लगता जैसे वह आवाज़ जंगल में दहाड़ते शेरों की आवाज़ हो। दरिया की आवाज़ में घुली-मिली चौगान की दूसरी आवाज़ें भी कभी-कभी सुनाई दे जातीं। वे आवाज़ें बीते दिनों को उसके मन में लौटा लातीं। जब वह बहुत छोटी थी, तो उसी चौगान में भेड़ों के पीछे छड़ी लेकर घूमा करती थी। उसकी मां एक पेड़ के नीचे बैठी हुक्का गुड़गुड़ाती रहती थी और वहां पानी भरने के लिए आने वाले लोगों से चुहल करती रहती थी। वह भेड़ों का पीछा करती हुई घुटनों तक कीचड़ में लथपथ हो जाती थी, तो मां उसे डांट देती थी। वह मां की डांट की तरफ कभी ध्यान नहीं देती थी। कीचड़ में लथपथ होना उसे अच्छा लगता था। चौगान की घास में लोटना और घास की तिगलियों को दांतों से चबाना भी उसे अच्छा

लगता था। घास पर लेटे हुए आकाश का जो रूप नज़र आता था, वह सीधे खड़े होने पर बिलकुल बदल जाता था। उसे आकाश का वही रूप अच्छा लगता था जो लेटकर आंखें झपकाते हुए दिखाई देता था।

चौगान में साल में दो बार मेला लगता था। लोग वहां आकर लुगड़ी पीते, गाते-नाचते और हंसी-ठट्ठा करते थे। उसकी मां उन मेलों में सबसे बढ़-चढ़कर भाग लेती थी। कई बार तो वह लुगड़ी पीकर नाचते-नाचते वहीं ढेर हो जाती थी और उसे रात-भर मां के पास पहरा देना पड़ता था। उसने स्वयं भी उस चौगान में ही मेले के दिन पहली बार लुगड़ी पी थी। उस दिन वह स्वयं भी अपनी मां की तरह नाचते-नाचते बेहोश हो गई थी···और उसके बाद ही साहब ने उसकी मां से उसे मांग लिया था।

उस चौगान में न जाने ऐसा क्या था कि हर समय उसके कदम अनजाने ही उस तरफ उठने लगते थे। मगर साहब के यहां आ जाने के बाद से उसे वहां जाने का बहुत कम अवसर मिला था। मेले के दिन तो वहां जाने से साहब ने खास तौर से मना कर रखा था। कभी चोरी से वह वहां चली भी जाती, तो पहले की तरह घास पर लोटना उसके लिए सम्भव न होता। लोग साहब के नाते उसे भी सलाम करते थे। फिर साहब को न जाने कैसे और किससे पता चल जाता था कि वह चौगान में घूमती रही है। घर लौटते ही उसे डांट पड़ती थी। साहब ज्यों-ज्यों बूढ़ा हो रहा था, उसे गन्दी गालियां देने की आदत होती जा रही थी। वह साहब की गालियां सुनकर चुप रहती थी, क्योंकि सामने कुछ कह देने से साहब और भड़क उठता था। वह साहब को उसके बुढ़ापे के बावजूद बहुत चाहती थी, मगर न जाने क्यों साहब को विश्वास नहीं होता था। वह गुस्से में आकर उससे ऐसी-ऐसी बातें कह देता था कि वह पथराई आंखों से उसकी तरफ देखती रह जाती थी।

वह दिन-भर अकेली कमरे में पड़ी रहती, अकेली ही खाना खाती और अकेली ही सो रहती। उसकी मां ने उसके पास रहने के लिए आना चाहा था, पर उसने मना कर दिया था। उसे लगता था कि उसकी मां उस घर में आ जाएगी तो साहब की नाराजगी बढ़ जाएगी। अपने अकेलेपन से उसका मन बहुत भारी हो जाता, तो वह कई बार रात को भी साहब की कब्र के पास जा बैठती। युक्लिप्टिस की टहनियां उसके बालों को सहलाती रहतीं और वह

के सफेद पत्थरों पर कुहनियां टिकाए साहब की बातें सोचती रहती। ब्यास की आवाज़ के साथ चौगान की तरफ से कुछ आवाज़ें सुनाई देतीं तो कई-कई यादें उसके मन मे ताज़ा होने लगतीं। पर वह उन यादों को बुहारकर मन से निकाल देती, जैसे वे यादें उसकी दुश्मन हों। अपना चेहरा वह कब्र के ठण्डे पत्थर पर टिकाए रहती। साहब के लगाए सेबों और अनारों मे से होकर आती हवा उसके शरीर मे एक ठंडक भर देती। हवा से कहीं ज्यादा गहरी ठंडक कब्र के पत्थरों में से उठकर उसे छा लेती—उसे लगता जैसे उस ठंडक के साथ साहब के मन की कोई बात उठकर ऊपर आ रही हो—जैसे साहब का विकृत चेहरा उसकी तरफ देखकर अपने सुपरिचित ढंग से कह रहा हो, "ओह! कुतियाएं!"

उसकी आंखों में आंसू भर आते, तो वह कमीज़ की बांहों से उन्हें पोंछ लेती। फिर यह सोचकर सहम जाती कि कमीज़ से आंखें पोंछकर उसने गलती की है, और अपनी बाहें वह साहब की कब्र पर फैला देती। उसके कांपते होंठ उसके गले की आवाज़ को रोके रहते क्योंकि उसे ख्याल आ जाता कि साहब को उसके रोने से बहुत चिढ़ थी।

सेफ्टी पिन

मिसेज़ सक्सेना प्लॉट के नाम पर अपना उपन्यास ज़बानी सुना रही थीं, पर मेरा ध्यान अपनी पतलून के बटनों की तरफ था।

उपन्यास में सब पात्रों के नाम एक-से थे···या मुझे लग रहे थे। सबके सब दिल्ली से शुरू करते थे और शिमला, डलहौज़ी, श्रीनगर घूमकर वापस दिल्ली चले आते थे। दिल्ली में रहकर कुछ दिन पार्टियों में शरीक होते थे; फिर पहाड़ों पर चले जाते थे। उपन्यास में पुरुष ज़्यादा थे या स्त्रियां, मुझे याद नहीं, पर स्त्रियां अगर कम थीं तो भी तादाद में ज़्यादा लगती थीं। उम्र में सब बीस-पच्चीस के आसपास थीं; मिसेज़ सक्सेना हरेक को 'स्लिम, स्मार्ट एण्ड ग्रेसी' बना रही थीं, फिर भी जाने क्यों मुझे लग रहा था कि वे सब ढिलके बदन और भरे हुए जिस्म की गोरी-गोरी औरतें हैं जो बात करते हुए जमुहाइयां [illegible] लेती हैं, और अपने [illegible] के कमाल से परेशान होकर उसके इश्तिहार को ढूंढती रहती हैं। यह भी लग रहा था कि उनमें से किसी की अपनी उम्र चालीस-पैंतालीस से कम नहीं है। वे सब पार्टीशन के बाद दिल्ली आई हैं, और यहां आए उन्हें ज़्यादा दिन नहीं हुए।

मिसेज़ सक्सेना टेलीफ़ोन सुनने के लिए बरामदे में गईं तो मैंने एक बार अच्छी तरह बटनों को देख लिया। एक भी बटन बाहर नज़र नहीं आ रहा था। मैं अपनी टांग पर टांग रखे, कुर्सी पर झुका हुआ बैठा था। तब मैंने

सांस ली और टांगों को थोड़ा फैल जाने दिया।

कसूर मेरा नहीं धोबी का था। या शायद धोबी का भी नहीं ''पर मेरा बिलकुल नहीं था। घर से धुली पतलून और बुश्शर्ट पहनकर निकला था। बस में इत्मीनान से टांगें फैलाकर बैठा रहा था। यह महसास उतरते वक्त हुआ कि बटनों के अन्दर का अस्तर उधड़ गया है। उधड़ा न होगा तो फट गया होगा। बहरहाल कुछ ऐसा था जिससे बटनों की कतार तिरछी होकर बाहर नजर आ रही थी। गनीमत थी कि मिसेज़ सक्सेना के यहां पहुंचकर नहीं पता चला। रास्ते में कनॉट प्लेस से एक दर्जन सेफ्टी पिन खरीद लिए। एक रेस्तरां के टॉय-लेट में जाकर अस्तर को अन्दर से टांक लिया। दर्जन में से जो आठ पिन बच रहे, उन्हें पिछली जेब में ठूंस लिया। सोचा, फिर कभी इसी तरह काम आएंगे।

मिसेज़ सक्सेना भूखी-भूखी लौट आईं। देखकर लगा, उनके पति का फोन होगा। अन्दाजा गलत नहीं था।

वह आकर सोफ़े पर नहीं बैठीं, सीधी बोतलों वाली तिपाई के पास चली गईं। बोलीं, "भाई, बताओ, क्या लोगे? सुदर्शन नाराज़ हो रहा है कि मैंने अभी तक तुम्हें कुछ पीने को नहीं दिया?"

सुदर्शन को मैं भी एक वचन में ही जानता था। पर मिसेज़ सक्सेना का एक वचन दूसरी तरह का था। उसमें पतिनिष्ठा से ज्यादा उम्र की आदत थी, जैसी कि बारह साल शादी के बाद ही आ सकती है।

"बताओ, क्या दूं? स्कॉच?" उन्होंने फिर पूछा।

मैंने सिर हिला दिया, "अभी कुछ नहीं।"

"क्यों?"

"मेरे सिर में दर्द हो आया है।"

"पर मैंने देखा है तुम्हें पीते ''

"कभी-कभी नहीं भी होता।"

"आज तुम्हें पहले से ही पता है कि होगा?"

मैं मुसकरा दिया। कहा नहीं गया कि अब भी हो रहा है। कहा, "सुदर्शन आ जाए तो थोड़ी-सी ले लूंगा।"

मिसेज़ सक्सेना ने घड़ी की तरफ देखा और अन्दर चली गईं। लौटकर आईं तो नौकर साथ था। बड़ा-सा ट्रे लिए हुए।

"बरसात ने बहुत तंग किया है इस साल," कहती हुई वह मुसकराई। नौकर फ्रेम दीवार पर लगाकर चला गया।

"हां, पहले तो बिजली ही फेल होती थी," मैंने कहा, "इस साल पानी भी उबालकर पीना पड़ रहा है।"

"हमारे घर में दीमक बहुत हो गई है," वह बोली, "फर्श से कार्पेट मैंने इसीलिए उठवा दिया है। दीवार से पेंटिंग भी उतरवा दी थी···पर आज मेहमान आ रहे हैं, इसलिए···"

मैंने पेंटिंग की तरफ देखा। स्याह और पीले रंग में एक औरत का चेहरा। नीचे दीवार पर दीमक की दो लकीरें।

"इसे दीमक से थोड़ा हटाकर क्यों नहीं लगवातीं?" मैंने कहा।

"दीवार पर चौखट का निशान है," वह बोली, "खाली बुरा लगता है।"

मैंने फर्श की तरफ देखा। उसपर कार्पेट का कोई निशान नहीं था। फिर भी वह नंगा लगता था। महसूस होता था कि कोई चीज़ वहां से हटाई गई है। दीमक की कुछ लकीरें वहां पर भी थीं। मैंने हाथ जेबों में डाल लिए। दोनों जेबों में सूराख थे। मैंने हाथ बाहर निकाल लिए।

मिसेज़ सक्सेना उपन्यास का बाकी हिस्सा 'संक्षेप में' सुनाने लगीं। संक्षेप में सभी स्त्रियां प्यार करती थीं···पर पहाड़ों पर जाकर। अक्सर झील के किनारे या क्लब के पिछले कमरे में। अपने 'लवर्ज़' के साथ। 'हस्बैण्ड्स' उन्हें पहाड़ों पर छोड़कर दिल्ली चले आते थे,···या शराब पीकर लाउंज में सुर्ख रहते थे। लवर्ज़ की अपनी बीवियां थीं, पर हस्बैण्ड्स का कोई लव-अफेयर नहीं था। उपन्यास की हीरोइन का नाम सुजाता था···या शायद सुनीता था। उसे अन्त में झील में डूबकर आत्महत्या करनी थी, इसलिए शुरू से ही उसे पानी में एक खिंचाव महसूस होता था। उसने 'भृगुसंहिता' से अपनी जन्मपत्री निकलवा रखी थी जिसके मुताबिक उसकी मौत 'प' अर्थात् पानी में ही होनी थी।

"मैं तुम्हें बोर तो नहीं कर रही?" उन्होंने हीरोइन की आत्महत्या से कुछ पहले ही पूछ लिया।

"नहीं, बिलकुल नहीं," मैंने कहा, "मुझे बहुत दिलचस्प लग रहा है।"

"बस अब तीन-चार चैप्टर ही बाकी हैं···"

"आप सुनाइए। अन्त तो इसका और भी दिलचस्प होगा।"

पर अन्त तक सुनने की नौबत नहीं आई। एक जोड़ी मेहमान उसी वक्त चले आए।

मिस्टर और मिसेज़ सिंह। मिस्टर सिंह…मेजर, पचास, गम्भीर। मिसेज़ सिंह…सुन्दर, बत्तीस, शोख। मिसेज सक्सेना से परिचय कराया। मेजर सिंह भुककर मुसकराए। मिसेज़ सिंह ने अनदेखे ढंग से कहा, "हलो।"

मैंने भी 'हलो' कहा, पर उस तरह से नहीं। अच्छी तरह देखकर कि वह भी मिसेज़ सक्सेना के उपन्यास में से तो नहीं हैं। लगा कि हेयरकट को छोड़कर और बातें मिलती हैं। हां, बात करने का लहजा उनका अपना है। उपन्यास में तो हर स्त्री की आवाज़ सिक्के में ढली हुई लगती थी।

मिसेज़ सिंह अकेली ही बात कर रही थीं…कि हिन्दुस्तान में यह उनकी आखिरी शाम है, इस बार की आखिरी…कि कल इस वक्त वह इस ज़मीन से ऊपर खुली हवा में उड़ रही होंगी…कि दुनिया की हर चीज़ कुछ अरसे के बाद बोरिंग हो जाती है…कि हर देश किसी एक ही लिहाज़ से अच्छा होता है…कि यह देश किसी भी लिहाज़ से अच्छा नहीं है…कि सिवाय टैक्स अदा करने के यहां कुछ ज़िन्दगी ही नहीं है…कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए आदमी को साल में दो महीने ज़रूर यहां से बाहर रहना चाहिए।

मेजर सिंह कुहनियां सोफे की बांहों पर रखे एक-एक इंच नीचे को झुकते जाते थे। झटके से अपने को ऊपर उठाते थे, और फिर उसी तरह झुकने लगते थे। मिसेज़ सक्सेना ने ह्विस्की के गिलास सबके हाथों में दे दिए थे। मेजर सिंह की आंखें जब भी मुझसे मिलतीं, वह ज़रा-सा मुसकराते। लगता कि कोई बात है जो उन्हें मुझसे कहनी है। मिसेज़ सिंह ह्विस्की का घूंट भरने के लिए रुकीं, तो वह धीमी आवाज़ में जल्दी-जल्दी बोले, "मुझे लग रहा था कि हमें आने में देर हो गई है यहां आने से पहले हम लोग एक और दोस्त के यहां ड्रिंक्स के लिए चले गए थे उससे कहा भी कि हम लोग ज़्यादा नहीं लेंगे पर कहने से कौन मानता है…?" वह धीरे से हंसे। हंसते हुए उन्होंने एक-एक करके तीनों की तरफ देखा और सहसा खामोश हो गए…ज़रा-से वक्फे के बाद फिर उसी तरह मेरी तरफ देखकर मुसकरा दिए।

मैं भी मुसकराया। एक पिन अन्दर से मुझे चुभ रहा था।

मिसेज़ सिंह उस वक्त हालैण्ड में थीं। वहां से इटली होती हुई वेस्ट जर्मनी

आ रही थीं। अपनी शॉपिंग उन्हें वेस्ट जर्मनी से करनी थी। हर साल वहीं से करती थीं। नरसीपन सिर्फ चुंगी की थी जो वापस आने पर अदा करनी पड़ती थी। "पता है शारदा, पिछले साल मुझे कितने रुपये चुंगी के देने पड़े थे···?"

शारदा, अर्थात् मिसेज सक्सेना न जाने किस वजह से नाराज लग रही थीं। शायद इसलिए कि उन्हें कभी उतने रुपये चुंगी के नहीं देने पड़े थे या इसलिए कि उन लोगों के चले आने से उनके आखिरी तीन चैप्टर बीच में ही रह गए थे।

मुझे भी बीच-बीच में भील का ध्यान हो आता था। हमने हीरोइन को बोट में रोमांस करने छोड़ा था। ये लोग न आए होते, तो वह अब की आत्म-हत्या कर चुकी होती। तब मिसेज सक्सेना ज्यादा सहज भाव से काजू और निमकी की प्लेटें सबकी तरफ बढ़ा रही होतीं।

वेस्ट जर्मनी से लौटकर मिसेज सिंह ने अपने दामाद का जिक्र शुरू किया, तो मैं चौंक गया। मेजर सिंह एक इंच और नीचे को झुक गए।

"अपनी पैकिंग तो मैंने अभी की ही नहीं। सारा दिन लड़की की पैकिंग कराती रही। लड़की और दामाद आज ही वापस जा रहे हैं···।"

इससे पहले कि मेजर सिंह थोड़ा उठ पाते, दूसरी गाड़ी बाहर आ पहुंची।

नये आनेवाले लोग मेरे परिचित थे। सुदर्शन उन्हें अपनी गाड़ी में लेकर आया था। रमेश खन्ना और उसकी पत्नी शानो।

"हलो एव्रीबडी !" शानो ने अपना पल्लू फैलाए भरतनाट्यम् की मुद्रा में दहलीज के पास आकर कहा। उत्तर केवल मिसेज सक्सेना ने दिया, पोस्ट-ग्रेजुएट स्टाइल में, "हलो !"

सुदर्शन सिगरेट-साइज़ का सिगार मुंह में लगाए सबसे पीछे था। रमेश उससे आगे जैसे कि वह उन दोनों की हिरासत में हो।

"मैंने अपने दामाद से कहा···" सबके बैठते ही मिसेज सिंह ने अपनी बात फिर शुरू कर दी।

"आपका मतलब है···आपका···अपना दामाद !"

"हां, मेरा···मतलब मेरी······मतलब इनकी···बड़ी लड़की का पति।"

मेजर सिंह अब हरेक की तरफ देखकर मुसकराए। मेरी तरफ देखकर खास तौर से।

"हा-हा···!" शानो भी मेरी तरफ देखकर मुसकराई। साथ ही उसने पूछ लिया, "तुम गुमसुम होकर क्यों बैठे हो?"

मैंने एक बार बटनो की तरफ देख लिया। मुसकराकर कहा, "कुछ नहीं, ऐसे ही···बात सुन रहा था।"

शानो ने आँखें झपक लीं। ऐसे जैसे मेरा मतलब समझ गई हो।

सुदर्शन सबके लिए ह्विस्की डाल रहा था। शानो का गिलास उसे देता हुआ बोला, "मिसेज़ सिंह की लड़की हर हाइनेस है··· अब भी मध्यप्रदेश और राजस्थान में उनकी काफी जागीर है।"

"आई सी।"

"मेजर सिंह भी एक रियासत के आधे वारिस तो हैं ही।"

"आई सी।"

"मैंने अपने दामाद से कहा कि···" मिसेज़ सिंह बोलीं, "···कि हो सकता है इस बार मैं साल-भर बाहर ही रह जाऊं, तो पता है वह क्या बोला? बोला कि···"

"मज़ाक में···" मेजर सिंह ने आहिस्ता से समझा दिया, "वह इनसे अकसर मज़ाक करता है।"

"पर यह उसने मज़ाक में नहीं कहा था।" मिसेज़ सिंह ने होंठ भींच लिए।

मेजर सिंह हंस दिए। "तुम्हारी 'सेंस ऑफ ह्यूमर' भी किसीसे कम थोड़े ही है! हां, बताओ इन्हें···बात काफी दिलचस्प है।"

"यह मज़ाक नहीं है··" मिसेज़ सिंह ने फिर ज़ोर देकर कहा, "ही मेंट इट। उसने कहा कि मुझे साल-भर बाहर रहना हो, तो उसे उसके ड्राइंगरूम के लिए अपना एक बड़ा-सा पोर्ट्रेट बनवाकर भेज दूं···किसी भी अच्छे पेन्टर से। वह उसके लिए एक लाख तक खर्च करने को तैयार है।"

सुदर्शन ने पास जाकर खाली गिलास उनके हाथ से ले लिया और उसे भरता हुआ बोला, "काश, कि मुझे पेन्ट करना आता!"

"वह सीरियसली कह रहा था, सुदर्शन···!" मिसेज़ सिंह ने अपने हाथों को हाथ से मरोड़ लिया।

"मैं भी सीरियसली कह रहा हूं," सुदर्शन गिलास वापस देता हुआ बोला,

"मुझे चाहे एक लाख न भी मिलता।"

मेजर सिंह फिर हंसे · अकेले। "दैट्स इट···दैट्स इट। यह विट मुझे ब
पसन्द है। शाम की सारी उदासी एक फिकरे से दूर हो जाती है।"

"डोण्ट टेल मी···कि सारी शाम तुम उदास रहे हो!" मिसेज सिंह
के सोफे पर झुक गईं।

"नॉट दैट···नॉट दैट···" मेजर जल्दी से बोले, "मेरा मतलब था कि

"रहने दो," मिसेज सिंह ने उन्हें काट दिया, "तुम्हारा मतलब
बोरिंग होता है।"

मेजर पल-भर के लिए गम्भीर हुए, फिर मुसकरा दिए। मिसेज सिंह
के घूट भरने लगी।

मिसेज सक्सेना जाने किस वक्त उठकर बाहर चली गई थी
बरामदे के दरवाजे पर आकर उन्होंने कहा, "खाना मेज पर लग गया

इस बार सुदर्शन ने एक-एक करके सबकी तरफ देख लिया। फ
दीवार पर लगी तसवीर से बोला, "खाने की अभी क्या जल्दी है?"

"अब मेज पर लग गया है, तो पड़ा-पड़ा ठण्डा हो जाएगा।
मिसेज सक्सेना तहजीब से हीं वापस चली गईं। पर इससे पहले
अपना गिलास होंठों तक ले आता, या एक लफ्ज भी मुंह से क
तरह आकर बोलीं, "भई, जिसे गरम खाना हो, वह बाहर आ
मुझसे कोई न कहे कि खाना ठण्डा मिला है।"

मेजर सुनते ही उठ खड़े हुए, "मेरा खयाल है, खाना
मुझे भूख भी लग रही है ···"

"तुम चलकर शुरू करो," मिसेज सिंह सोफे की पीठ
बोलीं, "हम थोड़ी देर में आ रहे हैं।"

मेजर उठने के बाद फिर बैठ नहीं सके। दरवाजे की त
"ठीक है, ठीक है। मैं चलकर शुरू कर रहा हूं ···"

दूसरा उठनेवाला रमेश था। 'मेरा खयाल है, मि
करिए। मिसेज बाद में आ जाएंगी।"

अब मैंने भी उठना अपना फर्ज समझा। बटन बन
मेरे हैं,कम में हुमककर आगे मेरे पैर उखड़ रहे। मेरा

मुसकराने का सहारा भी नहीं मिला।

पर दहलीज़ लांघने से पहले शानो ने रोक लिया। "तुम्हें भूख लग आई है?"

"नहीं।"

"तो ठहर जाओ, बाद में हमारे साथ चलना।"

"मैं···" मैंने कहा, "वह··· दरअसल···"

"चन्दर आ जाए, तो सब लोग साथ चलते हैं।"

"अरे, हां, चन्दर तो अभी आया ही नहीं।" सुदर्शन अपनी जगह से उठकर इधर-उधर देखने लगा···ऐसे जैसे कोई खोई हुई चीज़ तलाश कर रहा हो।

"उसने कहा था कि साढ़े नौ बजे तक पहुंच जाएगा।" शानो ने अपनी घड़ी देखी और रूमाल से पसीना पोंछने लगी।

सुदर्शन खोई हुई चीज़ को ढूंढता हुआ बरामदे तक गया और वहां से लौट आया। आकर बोला, "शारदा न जाने कहां चली गई! शायद उधर किचन में हो। बिना चन्दर का इन्तज़ार किए उसे खाना नहीं लगाना चाहिए था। यह तो बहुत ही बुरी बात है। एक्सक्यूज़ मी···" और लम्बे कदम रखता हुआ वह पिछले दरवाज़े से अन्दर चला गया।

मैं ऐसे खड़ा था कि चेहरा शानो की तरफ रहते हुए भी बटन दूसरी तरफ रहें। दिमाग में वे दो लफ्ज़ नहीं आ रहे थे जो कहकर उसी एंगल से बाहर चला जाता। बगलों से टपककर पसीना बेल्ट के अन्दर जा रहा था।

"थोड़ी देर बैठो, अभी साथ ही चलते हैं," शानो ने कहा, तो एंगल बनाए रखने के लिए मुझे बैठ जाना पड़ा। बैठते हुए एक नोक अन्दर से चुभी लेकिन मैंने माथे पर शिकन नहीं आने दी।

"आजकल क्या कर रहे हो?" शानो ने पूछा।

"आजकल···" मुझे कुछ देर सोचते रहना पड़ा कि आजकल मैं क्या कर रहा हूं। लगा कि कोई ऐसा काम नहीं कर रहा जो बताने लायक हो। ऐसा भी नहीं जो न बताने लायक हो।

"*बहुत दिनों से नज़र ही नहीं आए*···" मुझे *लगा कि शानो चाहे बात* मुझसे कह रही है, पर उसकी दिलचस्पी मुझमें नहीं है। आंखें उसकी मिसेज़ सिंह के चेहरे पर टिकी थीं। इसलिए अपने नज़र न आने का मसला मुझे हल

नही करना पड़ा।

"कभी हमारे घर पर आओ," शानो बात को ऐसी जगह ले आई जह
उसका सीधा-सा जवाब दिया जा सकता था। मैंने झट से कहा, "तुम जब
कहो।"

"तुम्हें जिस दिन भी फुरसत हो," वह बोली "किसी भी दिन जब
फुरसत हो। रमेश नौ बजे चला जाता है। मैं सारा दिन घर पर ही रहती हूं

मिसेज सिंह ने अपने गिलास से आखिरी घूंट भरकर उसे तिपाई पर
और मुसकराईं। मुझे लगा कि वह मुसकराहट मेरे लिए है। पर मेरा
गलत था। वह दरअसल दीवार पर लगी तसवीर के लिए थी।

मैं तब तक जवाब में आधा मुसकरा चुका था। उतनी मुसकराहट
रखते हुए मैंने कहा, "अच्छी तसवीर है। नहीं ?"

मिसेज सिंह के होंठ सिकुड़ गए। "लगता है मक्खन के कूपन देक
है," कहकर वह फिर मुसकराईं। मैंने घूमकर तसवीर को एक बार
तरह देख लिया।

शानो ने भी देखा, मगर सरसरी नज़र से। "कितनी भयकर है
लज्ज़त के साथ कहा। मुझे यह फ़िकरा रिहर्सल किया हुआ लगा।
एक नाटक में उसने चारुमित्रा का पार्ट किया था।

मिसेज़ सिंह के चेहरे पर जो भाव आया, वह कुछ-कुछ फ़ांसी
था। कन्धे भी उन्होंने खास कॉण्टिनेण्टल अन्दाज़ से हिलाए। इ
से बाहर फैल गईं। उन्हें समेटती हुई वह उठ खड़ी हुईं। उठक
लेती नज़र उन्होंने नंगे फ़र्श पर डाली। दूसरी अपनी सैंडिल पर।
की दहलीज़ पर। "पुराना घर है," वह हल्के क़दमों से दह
चलती हुई बोली, "पचास साल से कम पुराना किसी भी तरह
कैसे···ये लोग···कैसे ये लोग रह लेते हैं यहां!"

दहलीज़ से उन्हें ठोकर लग सकती थी, पर नहीं लगी।
की ओट में हुईं, शानो ने मेरे हाथ पर चुटकी काटी। "तुम
उसने कहा।

'नहीं' कहने के लिए मैंने सिर हिलाया। मुंह से आवाज़
...लग रहा था कि परदे की ओट से मिसेज़ सिंह सारी बा

"यह सुदर्शन की एक्स-फियासे है।"

इस बार भी मैंने सिर ही हिलाया, मगर दूसरी तरह से।

"मैं आज पहले तो इसे पहचान ही नहीं सकी," शानो कहती रही, "तब से अब तक कितना फर्क आ गया है इसमें ! उन दिनों सुदर्शन इसे अपनी साइकिल पर बिठाकर कुतुब ले जाया करता था। बातें उन दिनों भी यह बहुत बढ़-चढ़कर करती थी। कहती थी कि हिज़ हाइनेस से कम किसीसे शादी नहीं करूंगी। सुदर्शन के अलावा और भी कई बॉय फ्रेंड थे इसके। एक सिफ्त थी कि अपनी कोई बात छिपाती नहीं थी। सुदर्शन से अपने सब लव-अफेयर डिस्कस किया करती थी। यहां तक कह देती थी कि आज मैंने अपने कमरे में किसीको बुला रखा है, इसलिए तुम्हारे साथ नहीं जा सकती।" वह एक पैर हिला रही थी और सोफे से टेक लगाए जाने क्या सोचकर खुश हो रही थी। "उम्मा नाम है इसका। छह-सात साल हुए, सुदर्शन ने बताया था कि किसी अड़तालीस साल के जागीरदार मेजर से इसने शादी कर ली है···तीसरी शादी।"

"तीसरी ?"

"हां, इसकी यह तीसरी शादी है," शानो मेरे कन्धे पर हाथ रखकर हंस दी, "मेजर की दूसरी।"

मुझे ईर्ष्या हुई···पता नहीं किससे। ईर्ष्या छिपाने के लिए मैं भी हंस दिया।

"तुम समझते हो, यह इस आदमी के साथ भी वफादार होगी ?" उसका हाथ मेरे दूसरे कन्धे तक बढ़ आया। मेरी ईर्ष्या गायब हो गई। साथ ही हंसी भी। "क्या पता है हो," मैंने कहा। कम से कम एक मौका मैं हरेक को देना चाहता था।

शानो ने मेरी गरदन को नाखून से कुरेद दिया। "तुम हो बस ऐसे ही !" उसने कहा।

"कैसा ?"

"ऐसे ही···"

परदा हिला और मिसेज़ सिंह दहलीज की दूसरी ठोकर बचाकर कमरे में आ गई। शानो ने आहिस्ता से अपनी बांह मेरे कन्धे से हटा ली।

"कुछ पता ही नहीं चलता क्या है," मिसेज़ सिंह वहीं से बोलीं, "इधर-

र सभी कोनों में मैंने देख लिया है।" एक हाथ से मोटे परदे का सिरा वह
व भी संभाले थी···जैसे कि उसे संभाले रहने से कमरे में आकर भी वह
मरे से बाहर हो।

शराफ़त का तक़ाज़ा था कि मैं कुर्सी से उठ जाऊं, मगर मैं उठा नहीं।
तना झुककर बैठा था, उससे थोड़ा और ज़्यादा झुक गया।

"आप बता सकती हैं?" मिसेज सिंह ने शानो से कहा। शानो अपना पर्स
लाती हुई उठ खड़ी हुई, "आप क्या ढूंढ़ रही हैं?"

"दैट थिंग···" मिसेज सिंह ने हाथ से पीछे की तरफ इशारा किया, "···दैट
देयर···"

इसपर शानो न जाने क्यों पहले से भी ज़्यादा खुश हो गई। उसकी तरफ
ती हुई बोली, "चलिए, मैं आपको दिखा देती हूं।"

वे दोनों ज्यों ही परदे के पीछे हुईं, मैं एक नज़र बटनों पर डालकर उठ खड़ा
। पर बरामदे में पहुंचने से पहले ही मिसेज़ सक्सेना से सामना हो गया।
ई नहीं है यहां?" उन्होंने पूछा। मैंने अपने होने का ज़िक्र करना बेकार
झा। उनकी निगाह परदे से टकराकर लौट आई, तो तुरत-फुरत उन्होंने मेरे
को स्वीकार कर लिया।

"वह कहां है?" इस बार उन्होंने सवाल छोटा कर दिया।

मैंने इसमें भी दिलचस्पी नहीं दिखाई कि वह किस 'वह' के लिए पूछ रही
"दोनों अन्दर हैं," मैंने इत्मीनान के साथ कह दिया।

मिसेज़ सक्सेना ने एक हाथ अपने गाल पर रख लिया। तब मुझे ख़याल
कि दीवार पर लगी तसवीर कहीं उनका पोर्ट्रेट ही तो नहीं। उसमें भी
चेहरे पर स्याह हाथ उसी तरह रखा था। मिसेज़ सक्सेना हाथ रखे रखे
राईं। फिर गम्भीर होकर उदास हो गईं। निगाह से बोझल और निराश
र बाहर की तरफ चलती हुई बोलीं, "उससे कह देना, वह आ गया है। मैं
इसका [illegible] बाहर ही वेट रही हूं।"

मैंने वाक्य में सर्वनाम निकालकर उनकी जगह संज्ञाएं रख लीं। उसने
··· अलबत्ता आंखों से कहना। वह आ गया है··· अलबत्ता अन्दर आ गया
अन्दर का दरवाज़ा मिसेज़ सक्सेना के अन्दर आने के बाद बाहर रखा गया।
अलबत्ता था कि वह उनके मेज़ से वाकिफ होते ही पता देने वाली थीं।

मैं जहां खड़ा था, वहीं खड़ा रहकर इन्तजार करता रहा। जैसे कि मिसेज सक्सेना मुझे वहां बांधकर छोड़ गई हो। बीच में दो बार परदे की तरफ देख लिया। एक बार फर्श की तरफ। एक बार पीले चेहरे की तरफ। एक बार अपनी तरफ।

अपनी तरफ नजर डाली ही थी कि मिसेज़ सक्सेना दूसरी बार अन्दर चली आईं। आते ही बोलीं, "वे अभी नहीं आईं?"

"नहीं," मैंने कहा और कुछ खुला-सा महसूस किया। एक कदम अपनी जगह से चल भी लिया।

"दीज़ विमेन!" मिसेज सक्सेना ने होंठ कस लिए। मुझे पोर्ट्रेट वाली बात पर और भी विश्वास हो गया।

"मैंने इन औरतों के बारे में जो कुछ लिखा है, गलत लिखा है?" वह बोली।

मैंने मुसकराकर हाथ जेबों में डाल लिए। उंगलियों से दोनों सूराख बन्द कर लिए।

"मैं अपना क्लाइमेक्स तुम्हें जरूर सुनाना चाहती थी," मिसेज़ सक्सेना मेरी मुसकराहट का गलत मतलब समझ गई, "उसमें कुल चार ही चैप्टर बाकी हैं।"

"मतलब उसके आत्महत्या करने में?"

मिसेज सक्सेना ने सिर हिलाया और पहले से ज्यादा गम्भीर हो गई। "होता इस तरह है," वह बोलीं, "किश्ती में लेटे-लेटे वह अपना हाथ झील के पानी में डाल देती है। तब उसे लगता है कि पानी में से कोई चीज उसे अन्दर खींच रही है। वह बहुत कोशिश करके अपना हाथ बाहर निकालती है…"

पर अब भी बात क्लाइमेक्स तक नहीं पहुंच सकी। परदे पर उस तरफ साड़ियों की फड़फड़ाहट सुनाई देने लगी। मिसेज़ सक्सेना जल्दी से बरामदे की तरफ चलती हुई बोलीं, "बाकी तुम्हें फिर किसी वक्त सुनाऊंगी। दानो को बता देना कि चन्दर ड्रिंक बाहर ही ले रहा है। मैं बाहर खाना सर्व कर रही हूं।"

मुझे दानो को बताना नहीं पड़ा। बात उसने सुन ली थी। मिसेज़ सक्सेना

के बाहर जाने से पहले ही वह और मिसेज सिंह परदा हटाकर कमरे में आ ग थीं। जैसे कि इन्तजार में ही रही हों कि कब मिसेज सक्सेना निकलें और वे अन्दर आए। "दिस वोमन !" शानो ने अन्दर आते ही कहा। मुझे समझ नहीं आया कि यह उसने किसके लिए कहा है, मिसेज सिंह के लिए या मिसेज सक्सेना के लिए ?

"बाहर आप लोगों का इन्तजार हो रहा है", मैंने बारी-बारी से दोनों की तरफ देखा। लगा जैसे अन्दर से वे किसी बात पर लड़कर आई हों।

पर उन्होंने मेरी बात जैसे सुनी ही नहीं। मिसेज सिंह चुपचाप अपने वाले सोफे पर जा बैठीं, शानो अपने सोफे पर। मुझे लगा कि यही वक्त है जब मैं बिना किसी रुकावट के वहां से निकलकर जा सकता हूं। मेरे एक जूते का तस्मा ढीला हो रहा था। मैंने झुककर उसे कस लिया और दोनों से 'एक्स मी' कहकर बाहर को चल दिया। अभी दहलीज ही लांघ रहा था कि पी सुना, "जरा चन्दर को भेज दीजिए। कहिए, मैं उसे बुला रही हूं।" आ शानो की होनी चाहिए थी। पर उसकी नहीं, मिसेज सिंह की थी। मैंने व आकर सरसरी नजर से पीछे देख लिया। वे दोनों एक-दूसरी की तरफ रही थीं।

बरामदे में हवा कमरे से ठण्डी थी। डाईनिंग टेबुल वाले हिस्से के अल आसपास ज्यादा रोशनी नहीं थी। डाईनिंग टेबुल से थोड़ा हटकर एक कु पर चन्दर बैठा था···अपना गिलास दोनों हाथों में लिए हुए। साथ की कु पर, जो लगभग उससे सटी हुई थी, मिसेज सक्सेना उसी तरह अपना गिला लिए बैठी थीं। बहुत धीमी आवाज में वह चन्दर से कुछ बात कर रही थी।

डाईनिंग टेबुल से कुछ फासले पर तीन आदमी अंधेरे में चुपचाप खड़े थे·· हाथों में खाने की प्लेटें लिए। मेजर सिंह, रमेश खन्ना और सुदर्शन। बात करते हुए भी तीनों एक-दूसरे की तरफ झुके हुए थे।

मैंने चन्दर के पास जाकर उसे मिसेज सिंह का सन्देश दिया, तो मिसेज सक्सेना त्यौरी डालकर मुझे देखने लगी। मैं चुपचाप डाईनिंग टेबुल के पास जाकर अपनी प्लेट में खाना डालने लगा। खाना लेकर अंधेरे में खड़े उस तीन के झुरमुट में जा शामिल हुआ···पर अपनी पीठ दीवार की तरफ किए हुए। तस्मा बांधने में बैक पॉकेट की पिनों में से भी एक की नोक खुल गई थी और पॉकेट में सूराख करके वह उधर से बाहर निकल आई थी।

खंडहर

सड़क की बत्तियां बुझ गईं।

बरफ के कारखाने का भोंपू भोंड़े स्वर में सुबह की चेतावनी देकर चुप हो गया।

अभी पहला कौआ भी नहीं बोला था कि किला भंगियां के चौराहे पर तिल कूटनेवालों का शब्द अपने निश्चित स्वर-ताल में गूजने लगा—हियँः अः-अः! हियँ. अः-अः! हियँ अः-अ.!

छः गठे हुए गदुमी शरीर, उनकी उभरी हुई पेशियां और चमकती हुई त्वचाएं, हाथों में उठते-गिरते मूसल, बीच में कुटते तिलों का अम्बार—ये सब और चारों तरफ की घुटी हुई हवा, सारा वातावरण ही बोल रहा था—हियँ अ.-अः! हियँ अः-अ!

और तिलों का अम्बार पसीज रहा था। वह कूटनेवालों को रोटी देगा। आधी चाहे सूखी, चने की या छिलके की। रोटी उन्हें ताकत देगी। ताकत पाकर वे फिर अन्नदाता को कूटेंगे। अन्नदाता उन्हें फिर रोटी देगा। वे उसे फिर कूटेंगे और सिलसिला चलता रहेगा।

उधर सड़क पर लेटा हुआ सांड़, जिसकी आजीविका भक्तों के खिलाए गो-ग्रासों से चलती थी, और जिसे इसके लिए सुबह-शाम नमक मण्डी तक के घरों का चक्कर काटना होता था, धीरे से अपनी टांगों पर खड़ा हुआ, और पूछ हिलाकर

विशेष शैली है और उस शैली का उस शहर जितना ही पुराना इतिहास है।

भोलूशाह के मुंह से लार निकल रही थी और सड़क पर झाड़ू देते हुए भंगी की उड़ाई धूल उसके नासा-रंध्रों में जा रही थी। फिर भी भोलूशाह एकचित्त होकर जीभ और तालू का व्यायाम किए जा रहा था। उसकी कला कला के लिए थी।

धूल भोलूशाह के वक्त-खाए शरीर को ढककर आगे बढ़ी और भक्तों के उस समुदाय में पहुंच गई जो मंगला-दर्शन के लिए बाबा बांके बिहारी के मंदिर की दहलीज के पास जमा हो रहा था। वृद्ध का शरीर मारे खांसी के दोहरा हो गया। हरे दोपट्टे वाली लड़की ने मुह एक तरफ हटाकर धूल से बचने की चेष्टा की। उधर से उसे वृद्ध के मुखामृत का छींटा मिला। उसने मुह दोपट्टे में छिपा लिया।

उधर सामने कुएं की चर्खी पर एक लाल लंगोट वाले की गागर ने उषा का पहला राग छेड़ दिया।

पर अभी भगवान के दर्शन खुलने में देर थी। भगवान के पुजारी गोस्वामी नृसिंहदत्त ने छत की पिछली कोठरी में शरीर से कम्बल उतारा ही था। अस्त-व्यस्त अंगोछे को, जो सोने के समय उसका एकमात्र परिधान था, कसकर कमर से लपेटते हुए उसने मंगला का पहला मन्त्र पढ़ा, "चेतू, कहां मरा है रे?"

चेतू, जो नीचे लंगोट लगाए और ऊपर खादी की कमीज पहने साथ की कोठरी की दीवार के सहारे ऊंघ रहा था, गुरु की कर्कश आवाज सुनते ही अपने को झटककर सचेत हो गया और झुक-झुककर संस्कृत व्याकरण का पाठ करने लगा—"इको यणचि इकः स्थाने यण् स्यादचि परे संहितायां विषये···।

"इधर आ रे यणचि के यण्!" गोस्वामी नृसिंहदत्त ने मन्त्र पूरा किया, "हुक्का भर जल्दी से।"

बारह साल का चेतू तत्परता से उठ पड़ा। उसे मंदिर में रहते कई महीने हो चुके थे। वह पुजारी की गालियों से ही नहीं, उसकी मार से भी पूरी तरह परिचित था। गोस्वामी जब भी कोई धमकी देता, चेतू के दिमाग में एक भंवर-सा घूमने लगता। उसके मन में आता था कि गोस्वामी की नाक को पकड़कर इतना खींचे, इतना खींचे कि गोस्वामी का गणेश बन जाए, मगर उसका साहस

चलने के लिए तैयार हो गया।

तभी एक हरिकीर्तन करता वृद्ध गण्डानवाले बाजार की तरफ से आया गोपुत्र को कान हिलाते देखकर उसने उसे प्रणाम किया। फिर बिना छिन कूटे बालों की तरफ देखे बिना उनकी जांघों की मछलियां लक्ष्य किए, खांसता, थूकता खंखारता और सांस आने पर हरिकीर्तन करता बाबा बांके बिहारी के मन्दिर में चला गया।

उस संकरी गली से, जिसका कोई नाम नहीं, और जिसकी नालियों की बदबू बाबा बांके बिहारी के मन्दिर के धूप-गुग्गुल की गन्ध में मिलकर एक नया संगम बनाया करती है, एक स्याही रंगे कपड़े वाली प्रौढ़ा अपनी हरे दोपट्टे वाली कन्या के साथ निकली। दोनों नंगे पांव वहां से गुजरीं जहां एक मगनदास छिन रहा था, पिट रहा था और प्रसन्न हो रहा था। प्रौढ़ा ने देखा तो छिलते हुए शरीर में और पसीना ही पसीना था। उसे घृणा हुई। युवती ने देखा तो युवा लहू चिकनी देहों में उबल रहा था। उसे सिहरन हुई। मां-बेटी जल्दी-जल्दी बाबा बांके बिहारी के मन्दिर में चली गईं।

शहर अमृतसर रात की नींद से जाग रहा था।

मस्तू हलवाई की दुकान अभी आधी खुली थी। उसका नौकर मसीता अपनी स्लेट जैसी कमीज से, जो जब सिली तब सफेद थी, और जब उसे सिली तब भूरी गर्मी या ठीक-ठीक उस रंग की थी जो इन्सान की मैल और धूल से तैयार होता है, रात की मजी हुई थालियों को मटके के पानी से धो-धोकर पोंछ रहा था। [illegible] मिला पानी [illegible] के गले हुए पट्टे पर से फिसलकर पार के [illegible] में गिरता हुआ उस बेंच को भिगो रहा था, जो सड़क पर ग्राहकों की सेवा और सुविधा के लिए रखी गई थी।

हलवाई के सामने की दुकान का भी [illegible] इस दिन भी उसी [illegible] के नीचे लिखे हुए [illegible] को फैलाकर [illegible] से [illegible] की कोशिश में परेशान होकर जोर जोर से [illegible] रहा था—[illegible]! [illegible]! [illegible]!

[illegible] में [illegible], छाती और [illegible] का जोर लगा रहा था। उसका बाप भी इसी तरह करता था। बाप का बाप भी इसी तरह करता था। [illegible]

विशेष शैली है और उस शैली का उस शहर जितना ही पुराना इतिहास है।

भोलूशाह के मुंह से लार निकल रही थी और सड़क पर झाड़ू देते हुए भंगी की उड़ाई धूल उसके नासा-रन्ध्रों में जा रही थी। फिर भी भोलूशाह एकचित्त होकर जीभ और तालू का व्यायाम किए जा रहा था। उसकी कला कला के लिए थी।

धूल भोलूशाह के वक्त-खाए शरीर को ढककर आगे बढ़ी और भक्तों के उस समुदाय में पहुंच गई जो मंगला-दर्शन के लिए बाबा बांके बिहारी के मंदिर की दहलीज के पास जमा हो रहा था। वृद्ध का शरीर मारे खांसी के दोहरा हो गया। हरे दोपट्टे वाली लड़की ने मुंह एक तरफ हटाकर धूल से बचने की चेष्टा की। उधर से उसे वृद्ध के मुखामृत का छींटा मिला। उसने मुंह दोपट्टे में छिपा लिया।

उधर सामने कुएं की चर्खी पर एक लाल लंगोट वाले की गागर ने उषा का पहला राग छेड़ दिया।

पर अभी भगवान के दर्शन खुलने में देर थी। भगवान के पुजारी गोस्वामी नृसिंहदत्त ने छत की पिछली कोठरी में शरीर से कम्बल उतारा ही था। अस्त-व्यस्त अंगोछे को, जो सोने के समय उसका एकमात्र परिधान था, कसकर कमर से लपेटते हुए उसने मंगला का पहला मंत्र पढ़ा, "चेतू, कहां मरा है रे?"

चेतू, जो नीचे लंगोट लगाए और ऊपर खादी की कमीज पहने साथ की कोठरी की दीवार के सहारे ऊंघ रहा था, गुरु की कर्कश आवाज़ सुनते ही अपने को झटककर सचेत हो गया और झुक-झुककर संस्कृत व्याकरण का पाठ करने लगा—"इको यणचि · इकः स्थाने यण् स्यादचि परे संहितायां विषये ··।

"इधर आ रे यणचि के यण्!" गोस्वामी नृसिंहदत्त ने मंत्र पूरा किया, "हुक्का भर जल्दी से।"

बारह साल का चेतू तत्परता से उठ पड़ा। उसे मंदिर में रहते कई महीने हो चुके थे। वह पुजारी की गालियों से ही नहीं, उसकी मार से भी पूरी तरह परिचित था। गोस्वामी जब भी कोई धमकी देता, चेतू के दिमाग में एक भंवर-सा घूमने लगता। उसके मन में आता था कि गोस्वामी की नाक को पकड़कर इतना खींचे, इतना खींचे कि गोस्वामी का गणेश बन जाए, मगर उसका साहस

नहीं पड़ता था क्योंकि गोस्वामी उसे रोटी देता था, कपड़ा देता था और सबसे बड़ी चीज़ विद्या देता था। रात को गोस्वामी उसे बड़ी रुचि के साथ अलंकार पढ़ाया करता था और हाथ से आकार बना-बनाकर बतलाया करता था कि इतने-इतने स्तनों वाली नारी को 'श्यामा' कहते हैं, और इतने-इतने स्तनों वाली नारी को 'पद्मिनी' कहते हैं। चेतू अभ्यास के तौर पर मंदिर में आने वाली युवतियों की छातियों की तरफ देखा करता था कि उनमें से कौन-सी 'श्यामा' है और कौन-सी 'पद्मिनी'। फिर वह कापी पर उन स्तनों की तस्वीरें बनाया करता था।

चेतू, जिसका असली नाम चेतनराम था, मोगा तहसील के एक छोटे-से गाव का रहनेवाला था। कुछ महीने पहले तक वह सतलुज के किनारे खड़ा होकर उस पार से आनेवाले कबूतरों के झुण्डों को देखा करता था। उसे गहरे पानी की हल्की लहरों पर बादलों की घनी छायाएं बहुत अच्छी लगा करती थीं। पर उसके चाचा ने एक दिन 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' हाथ मे देकर उसे शास्त्री प्रीतमदेव के पास पढाई के लिए अमृतसर भेज दिया। यहा आकर उसने जो दुनिया देखी, उसमे कबूतर बिजली के तारो पर बैठे रहते थे और बादल कभी आ जाते, तो पक्की छतों के ऊपर गरज-बरसकर और काले छातों को भिगोकर चले जाते थे। हा, गाव में वह सिर्फ रात को ही 'हीर' और 'माहिया' के गीत सुना करता था, पर यहा दोपहर को भी, जब लाला लोग भल्ले, पकौड़ी और तले हुए बेसन के साथ रोटी खाकर विश्राम के लिए लेटते, तो चारों तरफ से रेडियो पर दर्द-भरे फसाने सुनाई देते रहते थे।

चेतू ने जब तक हुक्का भरकर गोस्वामी को दिया, तब तक शास्त्री प्रीतमदेव की आंख भी खुल गई थी। शास्त्री प्रीतमदेव का मंदिर मे वही स्थान था जो घरों में उस पुराने बर्तन का होता है जिसमें कई साल तक पानी पिया जा चुका हो और जिसकी सतह में अब जगह-जगह सूराख हो गए हों। उसने लगातार बारह साल तक मंदिर मे रहकर ज्योतिष और मीमांसा का अध्ययन किया था और उसका वह सारा ज्ञान इस काम आता था कि दोनों समय ठाकुर जी के सामने शंख और घण्टी बजाया करे।

गोस्वामी हुक्का गुड़गुड़ाता और विष्णु-सहस्र-नाम का पाठ करता हुआ [illegible] कोठरी से बाहर निकला। उसे आते देखकर शास्त्री प्रीतमदेव भी धीरे-धीरे

दरवाजे की तरफ देखते हुए कहा, "गुरुजी, मंगला-दर्शन कितनी देर में खोलते हैं ?"

"अरे, खुल जाएंगे मंगला-दर्शन," गोस्वामी ने अपनी अधीरता दबाने की चेष्टा करते हुए कहा, "यह बता कि सेठ ने दिया क्या-क्या है ?"

शास्त्री प्रीतमदेव थोड़ा हिचकिचाया। मगर, गोस्वामी की कड़ाके-भरी आंखों ने उसे झूठ नहीं बोलने दिया। उसने होंठों पर जबान फेरकर कहा, "इक्कीस रुपया…"

"और ?"

"और…" शास्त्री ने शब्दों को जरा लंबा करते हुए कहा, "…एक कपड़ा।"

"क्या कपड़ा ?"

"दो…दोशाला।"

"और कुछ नहीं ?"

"नहीं।"

"देखूं, कहां है ?"

"अभी दिखाऊं ?"

"और कोई मुहूर्त निकलवाना है ?"

शास्त्री न चाहता हुआ भी उठा, और पिछले कोने में रखे घिसे-पुराने सन्दूक की घिसी-पुरानी चाबी को उसने ठोक-पीटकर खोला। सन्दूक के अन्दर से अपना अंगोछा निकालकर उसने माथे का पसीना पोंछा, फिर सन्दूक के अन्दर ही हाथों से कुछ कारगुजारी करने लगा, तब गोस्वामी उसके सिर पर आ खड़ा हुआ। गोस्वामी के सिर पर आ जाने से वह दोशाले की तह में रखी धोती और धोती की तह में रखे रेशमी रूमाल को छिपा नहीं सका।

"क्यों, झूठ बोलता था ?" गोस्वामी ने शास्त्री की लांगड़ी पर चोट जमा-कर कहा और कपड़े उससे लेकर बोला, "ला, रुपये भी निकाल।"

"रुपये तो क्या मेरे नहीं हैं, गुरुजी ?" शास्त्री का मासूम बचपन पहली बार बोला।

"अरे नहीं, रे ती…" और वाक्य को अधूरा छोड़कर गोस्वामी धीरे से बोला, "ये रुपये बड़ों का हक है न! वे भगवान के सेवक हैं, जो भगवान के

क्र

निमित्त दे देते हैं। तू साले, रोज भगवान के घर में नारंगियां-केले खाता है, दूध-दही भक्षण करता है, फिर भी तेरी तृष्णा नहीं मरती? यहां अब देनेवाले रहे कितने हैं? जो आता है, मुफ्त में ही भगवान के दर्शन करके चला जाता है। ला निकाल, रुपये कहां हैं!"

शास्त्री प्रीतमदेव ने सन्दूक में रखे अपने एकमात्र कोट की जेब में हाथ डालते हुए कहा, "दो रुपये तो मुझसे गुरुजी खर्च हो गए हैं।"

"खर्च हो गए हैं? कहां खर्च हो गए हैं?"

शास्त्री ने जेब से उन्नीस रुपये दो आने निकालकर गोस्वामी की तरफ बढ़ा दिए, और ज़मीन की तरफ देखते हुए कहा, "सिनीमा चला गया था।"

"सिनीमा चला गया था!" गोस्वामी ने रुपये उससे लेते हुए कहा, और उसकी खोपड़ी पर एक और धौल जमाकर दोहराया, "सिनीमा चला गया था।"

गोस्वामी अब अपनी कोठरी की ओर जाने के लिए मुड़ा, तो शास्त्री ने पीछे से दीन स्वर में कहा, "मेरे पास एक भी धोती नहीं है, गुरुजी!"

"यह जो पहने है, यह धोती नहीं है?" गोस्वामी ने उसे कुत्ते की तरह दुतकारा।

"यह तो बिलकुल फट गई है, गुरुजी! यह आज वाली नहीं, तो वह पारो वाली धोती ही दे दीजिए।"

गोस्वामी रुक गया। पारो का नाम लेकर शास्त्री ने जैसे उसे चुनौती दे दी थी कि एक धोती दे दो, हां, वरना···।

"कौन-सी पारो वाली धोती?" गोस्वामी ने फीकी पड़ती उग्रता के साथ पूछा।

शास्त्री की नाभि के पास से मुसकराहट उठी जिसमें उसकी छाती फूल गई। पर उसका गला इतना शुष्क हो रहा था कि मुसकराहट होंठों तक नहीं आ पाई।

"पता नहीं ··उस दिन पारो कह रही थी ··।"

"क्या कह रही थी मुझसे पारो?"

शास्त्री को गोस्वामी का फीकापन देखकर फिर मज़ा आया। पर मज़े का स्वाद उसके होंठों पर नहीं फैला, उसकी आंखों में भर गया।

"कहती थी, वह मेरे लिए एक धोती लाई थी, पर आपने वह पहने
इसलिए···"

"तो वह रांड तेरे साथ भी···!" और यह 'भी' कहकर गोस्वामी
किया कि उसने सौद कर दी है। बिना बात को आगे बढ़ाए उसने हाथ
शास्त्री को दे दी और कहा, "तुझे धोती चाहिए, सो ले ले। पर यारो
बातों पर तू विश्वास मत किया कर।"

धोती लेकर शास्त्री के मन में इतना आनन्द उमड़ा कि विभोर हो
फटे स्वर में गाने लगा, "प्रभुजी मोरे अवगुन चित न धरो।"

नीचे मन्दिर की दहलीज़ के पास भक्तों की भीड़ काफी बढ़ गई थी
धोती-कुर्ते और पगड़ी वाले सज्जन थे, कुछ धोती और दोपट्टे वाली
थीं, दो-एक तिल्ले-किनारे की साड़ी वाली नई ब्याहताएं थीं, दो-एक
पाजामे और काली गोल टोपी वाले नौजवान थे, एक खुली शिखा वाला
धारी था, एक सोने के बटनों वाला पहलवान था, और आठ-दस—'भगव
अपने ही रूप'—छोटे-छोटे बच्चे।

बाहर सड़क पर अखबार बेचनेवाले चिल्ला रहे थे—"मिलाप, प्र
ट्रिब्यून अखबार। अजीत पढ़िए, वीरभारत—ताज़ा-ताज़ा खबरें!"

"अमरीका में हाइड्रोजन बम बनने शुरू हो गए!"

"सरहिन्द के नज़दीक गाडी उलट गई!"

"पाकिस्तान ने लड़कर कश्मीर लेने की धमकी दे दी!"

और मन्दिर के बाहर सत्तू हलवाई की दुकान पर लस्सी पीनेवालों
जमघट लस्सी के साथ-साथ सत्तू की बातों का मज़ा ले रहा था! सत्तू
किशनचन्द से, जो इस समय अपने मोटे होंठों से लस्सी अन्दर खींच रहा था,
मंदिर के अन्दर जानेवाली हर आकृति को घूर रहा था, कह रहा था, "रौन
देख रहे हो, लाला जी? देखो, देखो, बाहर से ही भगवान के दर्शन करो
भगवान कोई न कोई फल ज़रूर देगा।"

बिशनदास को मुसकराते छोड़कर सत्तू ठिगने कद के मुनीम गुरादित्तामल
बोला, "लाला गुरांदित्ताजी! दूर क्यों खड़े हो? इधर आओ बादशाहो! आज
बीवी ने कितनी लस्सी पीने को कहा है? आधा सेर की या तीन पाव की?"

और गुरांदित्तामल को खीस निपोरते छोड़ वह मोटे मोहनलाल से बोला, "क्यों मोहनलाल जी, मछलियां गिन रहे हो भगवान के तालाब की? कितनी हैं? तुम जाल फेंकोगे तो उसे मगरमच्छ ही ले जाएंगे। अरे यार, कुछ तो भगवान की शरम करो। इधर आओ, लस्सी पियो।"

सामने भोलूशाह 'किटकिट' रेवड़ियां काट रहा था। उसके साथ का नत्थू पंसारी मिर्चें कूट रहा था। चौराहे की दूकान पर तिल कूटने वाले अब भी उसी तरह तिल कूट रहे थे—हियं: अ:-अ:! हियं अ:-अ:!

नत्थू पसारी मिर्चों की गंध से दो-एक बार छींका। भोलूशाह ने चाकू से अपनी उंगली काट ली। लाला बिशनदास लस्सी का गिलास आधा पीकर और आधा दुम हिलाती बिल्ली के लिए छोड़कर जल्दी-जल्दी मन्दिर के अन्दर चला गया, *क्योंकि दो सुन्दर लड़कियां उस समय अन्दर जा रही थीं।*

मुनीम गुरादित्तामल भी जल्दी-जल्दी लस्सी गले में उडेलने लगा, क्योंकि उसकी धर्मपत्नी बंसो घर से तैयार होकर आ गई थी, और बसो का आदेश था कि वह दोनों समय नहीं तो कम से कम एक समय ठाकुर जी के दर्शन किया जरूर करे।

जब गुरादित्तामल अपनी धर्मपत्नी के साथ मन्दिर के अन्दर चला गया तो सत्तू और मोहनलाल एक-दूसरे की आंखों में देखकर मुसकराए।

"भगवान बड़ा कारसाज है," सत्तू ने कहा। मोहनलाल ने पलकें झपककर इसका अनुमोदन किया।

मोहनलाल भी चलने को हुआ तो सत्तू ने स्वर दबाकर कहा "विलायती लट्ठा, दस थान मिला है—भेज दूं?"

मोहनलाल ने पलकें झपकाकर स्वीकृति दी।

"भाव वही पिछला ही है!" सत्तू ने उसी तरह कहा।

मोहनलाल ने फिर उसी तरह पलकें झपकाकर स्वीकृति दी। फिर वह भी किसी तरह अपने शरीर को धकेलता और काले माथे के नीचे जड़ी लाल आंखों से नाक की सीध में देखता हुआ मन्दिर के अन्दर चला गया, क्योंकि पुजारी ने किवाड़ खोल दिए थे और ठाकुर जी के आगने की घण्टी बजा दी थी।

सौदा

दिन के नौ बजे थे और रोज की तरह पहलगाम के बाजार में चहल-पहल शुरू हो गई थी। लोग नाश्ते के बाद अपने-अपने होटलों और खेमों से तैयार होकर आ रहे थे। कई-एक पार्टियां बाजार में एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहलकदमी करती दिखाई दे रही थीं। एल्सेशियन कुत्ते को लेकर घूमती चैक भद्र महिला से लेकर सैनफ्रैंसिस्को के तरुण दम्पति तक, और सिंधी डॉक्टर की लड़कियों से लेकर तिरुचिरापल्ली के विद्यार्थियों तक हर एक का चलने का अंदाज कुछ ऐसा था जैसे वह यहां दिग्विजय करने के लिए आया हो। कुछ सुन्दर छरहरे शरीर, दो-चार याद रहने वाले चेहरे, कहीं एक अच्छी मुसकराहट या घूम जाने वाली मुद्रा... वरना सिर्फ कपड़े, काले चश्मे और कैमरे! दो-एक चेहरे ऐसे भी दिखाई दे रहे थे जिनकी बदसूरती को शायद घंटों की मेहनत से निखारा गया था। दो अधेड़ व्यक्ति, अपने तरुण मित्रों के समुदाय में खड़े, और मचलते हुए लोगों को अपने युवा होने का प्रमाण देने की चेष्टा कर रहे थे। और इस वातावरण में घिरा एक व्यक्ति, जिसकी वेशभूषा से प्रकट था कि वह अमृतसर का लाला है, अपनी पत्नी और बच्चे के साथ एक तरफ खड़ा था। वह बहुत संवार-संवारकर चाकू से एक सेब के टुकड़े काट रहा था और उनके हाथों में देता जा रहा था। उन लोगों के पास एक दरी, एक मेवों की टोकरी और एक रोटी का डब्बा रखा था।

पहले पुल की तरफ से कुछ घोड़े वाले घोड़ों की लगामें थामे बाजार की तरफ आ रहे थे। घोड़ों की उजली सजावट के साथ उनके मैले-फटे कपड़ों की तुलना करने से लगता था कि वे घोड़ों के मालिक नहीं, घोड़े उनके मालिक हैं। सब आज बहुत धीरे-धीरे उस तरफ आ रहे थे, जो कि उनके स्वभाव के विरुद्ध ।। अक्सर उनमें जो जल्दबाजी रहती थी, वह आज नहीं थी।

घोड़े वालों के बाजार में पहुंचते ही बाजार की हलचल पहले से कई गुना ३ गई। बहुत-से लोग उन्हें घेरकर रोबीले स्वर में उनसे घोड़ों की माग रने लगे।

"हनो, पाच घोड़े लाओ। अच्छे जवान घोड़े चाहिए।"

"हनो, ये दोनों घोड़े हमारे साथ ले आओ, चन्दनवाड़ी चलना है।"

"चल हनो, उधर वे मेम साहब घोड़ा माग रही हैं।"

ज्यादातर लोगों को चन्दनवाड़ी के लिए घोड़े लेने थे। पहलगाम आने वाले व लोग एक बार चन्दनवाड़ी तक घुड़सवारी अवश्य करते हैं हालांकि चन्दनवाड़ी में ऐसा कोई खास आकर्षण नहीं है। वह अमरनाथ के रास्ते का एक साधारण-सा पड़ाव है। पर क्योंकि वहां जाने का रिवाज है, इसलिए लोग वहां गए बिना अपनी पहलगाम की यात्रा पूरी नहीं समझते।

उस लाला ने भी निश्चिन्ततापूर्वक सेब का टुकड़ा चबाते हुए एक घोड़े वाले को आदेश दिया, "तीन घोड़े इधर लाना, भाई! अच्छे बढ़िया घोड़े हों।"

मगर घोड़े वाले ने जवाब में उपेक्षा-सी दिखलाते हुए कहा, "तीन घोड़े के बारह रुपये होंगे।"

"सब घोड़े तीन-तीन रुपये में जाते हैं।" लाला थोड़ा तेज होकर बोला। "हम आज पहली बार नहीं आ रहे हैं।"

यह छोटा-सा झूठ उसकी व्यवहार-बुद्धि ने ही उससे बुलवा दिया, हालांकि कुछ देर पहले जिस तरह वह एक आदमी से चन्दनवाड़ी के बारे में पूछ रहा था, उससे स्पष्ट था कि वह जिन्दगी में पहली बार पहलगाम आया है और शायद पिछली शाम को ही आया है। उसी आदमी से उसे पता चला था कि घोड़े वाले चन्दनवाड़ी के तीन-तीन रुपये लेते हैं।

"चार रुपये सरकारी रेट है," घोड़े वाले ने घोड़े की जीन ठीक करते हुए कहा, "चार रुपये से कम में आज कोई घोड़ा नहीं जाएगा।"

"तू जा, अभी पचास घोड़े वाले मिल जाएंगे," लाला ने रूखे स्वर में उ
झिड़क दिया और दूसरे घोड़े वाले को आवाज़ दी।

मगर सब घोड़े वाले उस दिन चार रुपये ही मांग रहे थे। और लोग भी
इसी बात पर उनसे झगड़ रहे थे। वही घोड़े वाले जो रोज़ तीन-तीन रुपये में
चन्दनवाड़ी चलने के लिए लोगों की मिन्नतें किया करते थे, और कई बार दो-दो
रुपये में भी जाने को तैयार हो जाते थे, आज किसीसे सीधे मुंह बात ही नहीं कर
रहे थे। लोग आपस में कह रहे थे कि खुद उन्होंने ही घोड़े वालों के दिमाग
आसमान पर चढ़ाए हैं—कि घोड़े वाले उन्हें ज़रूरतमन्द समझकर ही इतना
नखरा दिखा रहे हैं। वे सब फैसला कर लें कि कोई घोड़ा नहीं लेगा तो अभी
घोड़े वाले उनकी खुशामद करने लगेंगे, और दो-दो रुपये में चलने को तैयार
हो जाएंगे।

"आज बात क्या है?" किसीने एक घोड़े वाले से पूछा।

"बात कुछ नहीं है, साहब" घोड़े वाले ने उत्तर दिया, "चार रुपये
सरकारी रेट है।"

"पहले भी तो सरकारी रेट चार रुपये था। फिर तुम लोग तीन रुपये क्यों
लेते थे?"

"यह तो मर्ज़ी की बात है, साहब" एक जवान घोड़े वाला बोला, "पहले
मर्ज़ी होती थी, ले लेते थे। आज मर्ज़ी नहीं है, नहीं ले रहे।"

पर धीरे-धीरे इधर-उधर की चेहमेगोइयों से पता चल गया कि कल किसी
बू ने एक घोड़े वाले को इस बात पर पीट दिया था कि वह चन्दनवाड़ी के तीन
बजाय चार रुपये लेना चाहता था। इसलिए सब घोड़े वालों ने आज फैसला
ा था कि वे चार रुपये से कम में चन्दनवाड़ी नहीं जाएंगे।

"थोड़ी देर इन्तज़ार कीजिए, ये लोग अभी रास्ते पर आ जाएंगे," लाला ने
माते हुए कहा, "आज हम इन्हें चार रुपये दे देंगे तो कल को ये पांच
मांगेंगे। जो जायज़ बनता है, वही इन्हें देना चाहिए। थोड़ी देर रुकिए,
और घोड़े वाले आ जाएंगे।"

ालसा होटल का नौकर आवाज़ दे रहा था कि होटल में अठारह घोड़े
इसलिए वे सब घोड़े वाले खालसा होटल की तरफ चल दिए। इधर
ों ने तुरन्त परिस्थिति से समझौता कर लिया और चार-चार रुपये में

अपने लिए घोड़े ठीक कर लिए। लाला और कुछ दूसरे लोगों ने नाराज़गी ज़ाहिर की कि वे खामखाह अपने को घोड़े वालों के सामने नीचा कर रहे हैं। पर जिन्होंने घोड़े ले लिए थे, वे चुपचाप उनपर सवार होकर चल दिए। लाला के साथ केवल तिरुचिरापल्ली के विद्यार्थी और एक बंगाली परिवार रह गया। लाला कुछ देर उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाता रहा। फिर अपने परिवार के पास आ गया।

क्योंकि उस जगह काफी बकझक हो चुकी थी, इसलिए वह अपनी पत्नी और बच्चे को साथ लिए पुल की तरफ चल दिया। उधर से और बहुत-से घोड़े वाले आ रहे थे। उसने उनमें से भी तीन-चार को रोककर पूछा, पर हरएक ने चार ही रुपये मांगे। वह कुछ दूर आगे जाकर उधर से लौट पड़ा। उसका बच्चा जो सामने से आते हुए घोड़ों को उत्सुकता की नज़र से देख लेता था, चलते-चलते ठोकरें खा रहा था। लाला आखिर मन ही मन एक फैसला करके सड़क के बीचों-बीच खड़ा हो गया। पास से गुज़रते तीन घोड़ों को उसने रोक लिया, और एक घोड़े वाले से कहा कि वह उसकी पत्नी को घोड़े पर बैठने में मदद दे। दूसरे घोड़े पर उसने बच्चे को बिठा दिया और तीसरे की रकाब में पांव रखकर इन्तज़ार करने लगा कि घोड़े वाला आकर उसके शरीर को ऊपर उछाल दे।

"कहां चलना है, लाला ?" घोड़े वाले ने उसे सहारा देते हुए पूछ लिया।

"चन्दनवाड़ी," कहता हुआ लाला घोड़े पर जमकर बैठ गया।

"चन्दनवाड़ी के चार-चार रुपये लगेंगे।"

लाला ने घोड़े की पीठ पर से एक विजेता की नज़र चारों तरफ डाली और घोड़े वाले की बात को महत्त्व न देकर कहा, "बताओ, लगाम किस तरह पकड़ते हैं ?"

घोड़े वाले ने लगाम उसके हाथ में दे दी। बोला, "साथ आठ-आठ आने आपको बख्शीश के देने होंगे।"

"जो मुनासिब है, दे देंगे," लाला ने कहा। "हम कभी किसीका हक नहीं रखते।" उसने लगाम को हल्का-सा झटका दिया। पर उससे घोड़ा आगे चलने की बजाय पीछे की तरफ घूम गया।

"लाला, यह ऐसे नहीं चलेगा," घोड़े वाला हंस दिया। "तुम पैसे की बात करो, यह अभी दौड़ने लगेगा।"

"तुमने कह दिया है न कि ठीक पैसे दे देंगे।"

"चार-चार रुपया भाड़ा और आठ-आठ आना बख्शीश।"

"तीन-तीन रुपया भाड़ा और चार-चार आना···!"

"उतर जाओ लाला," घोड़े वाला बीच में ही बोल उठा। "ती
मे आज कोई घोड़ा नहीं जाएगा।"

"कैसे नहीं जाएगा ?" लाला गुस्से के साथ बोला। "जब रोज़ जाता
आज भी जाएगा।"

"नहीं जाएगा साहब, आज हरगिज़ नहीं जाएगा।"

"तो हम भी घोड़े से नहीं उतरेंगे। खड़े रहो जितनी देर खड़े रहना है
और पंजाबी गालियां मिलाकर वह ऐसी हिन्दी बोलने लगा जिसमें केवल भ
ही भाव था, कला का स्पर्श तक नहीं था। तभी न जाने क्या हुआ कि उसक
पत्नी का घोड़ा बिदककर सरपट दौड़ उठा। उस बेचारी ने संभलने की बहुत
कोशिश की, पर कुछ गज जाते न जाने उसकी एक ही टांग ज़ीन पर रह गई,
और वह सिर के बल गिरने को हो गई। घोड़े वाले ने दौड़कर वक्त पर घोड़े को
रोक लिया।

लाला ऐसी हालत में था कि वह बिना घोड़े वाले की मदद के उतर भी नहीं
सकता था। उसने एक पैर रकाब से निकाल लिया था, पर उसे ज़मीन तक पहुंचाने
की कोशिश में दूसरा पैर उलझ गया था। घोड़े वाले ने उसे सहारा देकर उतार
दिया। तब तक उसकी पत्नी भी किसी तरह संभलकर उतर गई थी। लाला ने
अब खुद ही बच्चे को भी उतारा और उसी भाषा में फिर अपने उद्गार प्रकट
करने लगा। घोड़े वाले अपनी जबान में उसे जवाब देते हुए वहां से चले गए
क्योंकि दूर से कोई उन्हें हाथ के इशारे से बुला रहा था।

बंगाली परिवार और तिरुचिरापल्ली के विद्यार्थी भी अब घोड़ों पर सवार
होकर आ रहे थे। और भी कितने ही ग्रुप चन्दनवाड़ी की तरफ जा रहे थे। कुछ
युवतियां और युवक तेजी से घोड़े दौड़ाते पास से निकल गए। बच्चा हैरान-सा
हा उन्हें दूर जाते देखता रहा।

लाला की पत्नी ने उससे कहा कि यदि चलना हो, तो उन्हें भी और लोगों
तरह चुपचाप चार-चार रुपये में घोड़े ले लेने चाहिए। लाला ने जैसे बहुत
समझौता करते हुए उसकी बात मान ली, और एक घोड़े वाले को आवाज़ दी

कि वह उनके लिए तीन घोड़े ले आए।

मगर घोड़े वाले ने दूर से ही कहा, "नहीं साहब, घोड़ा खाली नहीं है।"

पास से निकलता एक और घोड़े वाला भी यही कहकर चला गया। तीसरे ने यह जवाब देना भी मुनासिब नहीं समझा। आखिर एक घोड़े वाले ने रुककर पूछ लिया, "चार रुपया भाड़ा और एक रुपया बख्शीश मिलेगा?"

"भाड़ा हम तुम्हें रेट के मुताबिक देंगे," लाला खिसियाने स्वर में बोला। "पर बख्शीश हमारी मर्जी पर है।"

"नहीं साहब," घोड़े वाले ने कहा। "बख्शीश की बात भी पहले तय होनी चाहिए। उधर एक और साहब घोड़ा माग रहा है। वह एक रुपया बख्शीश देगा।"

इससे पहले कि लाला कुछ निश्चय कर पाता, एक और घोड़े वाले ने उस घोड़े वाले को बुला लिया। वह एक यूरोपियन परिवार के लिए सात घोड़े इकट्ठे कर रहा था। लाला ने पत्नी और बच्चों को वहीं छोड़कर पूरे बाजार का एक चक्कर लगाया। पर सभी घोड़े तब तक जा चुके थे। तभी अचानक उसकी नजर एक घोड़े वाले पर पड़ी जो घोड़ा लिए क्लब की सड़क से बाजार की तरफ आ रहा था। वह रुककर उसकी राह देखने लगा। घोड़ा और घोड़े वाला बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। लगता था जैसे दोनों बीमार हों। पास पहुंचने पर लाला ने घोड़े वाले से पूछा कि वह चन्दनवाड़ी का क्या लेगा।

"चार रुपया," घोड़े वाले ने खासते हुए उत्तर दिया।

उसने साथ बख्शीश की माग नहीं की, इससे लाला के चेहरे पर खुशी की हल्की-सी लहर दौड़ गई। उसने घोड़े वाले से कहा कि वह जाकर उसके लिए दो घोड़े और ले आए।

"और घोड़ा आप देख लीजिए, मेरे पास एक ही घोड़ा है।" घोड़े वाला उसी तरह खासता रहा। "और लेना हो तो बताइए, नहीं तो मैं उधर से एक मेम साहब के बच्चों को घुमाने ले जाऊंगा।"

"तू मेरे साथ रह, अभी दो घोड़े और मिल जाएंगे," लाला ने कहा और उसे साथ लिए हुए वहां आ गया जहां उसकी पत्नी खड़ी थी। वहां आकर उसने गर्व के साथ पत्नी को बतलाया कि अब बिना बख्शीश के चार-चार रुपये में घोड़े मिल रहे हैं, और हो सकता है थोड़ी देर में इससे भी कम में मिलने लगें।

उसके बाद वह पत्नी और बच्चे को साथ लिए घोड़ों की तलाश में
चक्कर काटने लगा। बच्चा रोटी का डब्बा उठाए था, पत्नी मेवों क
हाथ में लिए थी और वह गुड़ की डली बगल में संभाले था। घोड़े वाला उन
पीछे घोड़े की लगाम थामे खांसता हुआ चल रहा था। वे बहुत देर त
इसी तरह ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर चक्कर काटते रहे, पर कहीं उ
भी और नामी घोड़ा नजर नहीं आया।

वासना की छाया में

पहले-पहल पुष्पा को मैंने घर के सामने पम्प पर पानी भरते देखा था। उसकी आंखें मुझे पतली कौड़ियों जैसी लगी। उसने दो-तीन बार आंख भरकर मुझे देखा तो मुझे लगा कि या तो मेरे बाल बहुत सफेद हो गए हैं, या मैं अपनी उम्र से चार-पांच साल छोटा लगता हूं। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि वह उस सहज विश्वास-भरी दृष्टि से मुझे देखती, मानो कह रही हो, "चलो आंखमिचौनी खेलते हो?"

पुष्पा की उम्र तेरह साल होगी। अधिक से अधिक चौदह साल होगी। उसका रंग गोरा पंजाबी था। उसके शरीर को पूरा खिलने मे दो-तीन साल रहते थे, फिर भी उसकी आंखों मे वह विस्मय भर गया था जो यौवन का अर्थ पहले-पहल समझने पर कुछ दिनों के लिए रहता है। उसे जैसे आश्चर्य था कि क्या वह अकेली ही जानती है कि गुलाब का रंग गुलाबी क्यों है?"

"आप पानी भर लीजिए," पुष्पा ने अपनी बाल्टी हटाकर मुझसे कहा।

"नहीं, तू भर ले," मैंने यह सोचकर कहा था कि शायद वह मेरे सफेद बालों का सम्मान कर रही है।

"आपको दफ्तर जाना है, आप भर लीजिए," उसने कहा। मुझे खुशी हुई कि उसे मेरे अस्तित्व का पता है, काम-काज का पता है और उसका लिहाज मेरे सफेद बालों तक सीमित नहीं।

"तेरा नाम क्या है ?" मैंने अपनी बाल्टी में पानी भरते हुए पूछा।

"पुष्पा," उसने संकोच के साथ उत्तर दिया।

"किस क्लास मे पढ़ती है ?"

वह और भी सकुचित हो गई। बिना मेरी ओर देखे बोली, "मैं स्कूल नहीं जाती।"

"क्यों ?" मुझे आश्चर्य हुआ कि इतनी अच्छी आंखों वाली लड़की स्कूल क्यों नहीं जाती ? यूं मैं किसी लड़की से ज्यादा सवाल नहीं करता, क्योंकि वे ज़रा-से परिचय को घनिष्ठता समझने लगती हैं। पर पुष्पा अभी उस रेखा से दूर थी जहा जाकर एक लडकी मेरे लिए लडकी बन जाती है।

"मैं यहा नही रहती," पुष्पा ने इस तरह कहा जैसे मेरा प्रश्न बिलकुल असंगत रहा हो। "मैं बापू के साथ गांव से आई हूं। बापू को यहां थोड़ा काम है। उसका काम हो जाएगा तो हम अपने गांव चले जाएंगे।"

मैंने देखा कि उसकी आखो ने अभी लजाना नही सीखा। उसके अन्दर अभी वही ताज़गी थी जो नई बहार की कलियों मे होती है। वह गाव से आई थी और गाव चली जाएगी। वहा जाकर सरसो के पीले-पीले फूलो से खेलेगी और मीठा नरम साग खाएगी। कोई रात को आग के पास हीर गाएगा और विभोर होकर सुनेगी। नही तो सरसराती हवा का संगीत ही सही—वह उसके रोम-रोम को थपथपाकर उसे सुला देगा।

सुबह उठकर वह पशुओं को चारा देगी। प्रभात के स्वर उसे फुसलाएंगे तो वह नगे पैरों नदी की ओर भाग जाएगी। जब तक मन मे आएगा वहां तैरती रहेगी। लौटती हुई वह धान के खेत से मूलियां और शलजम उखाड़ लाएगी। उसके गीले बाल सूखते ही सूख जाएंगे, पर उसे चिन्ता न होगी। उसके फूटते हुए वक्ष उसकी गीली कमीज में कटोरियां-सी निकाल देंगे, पर उसे उसकी होश न होगी। वह घर लौटकर गणित के प्रश्नो से नहीं उलझेगी। भूगोल की रेखाएं नहीं याद करेगी। कलम लेकर कविताओं के अर्थ नहीं ढूंढेगी। वह जिधर देखेगी कविताएं फूटने लगेंगी।

अचानक मैंने देखा कि मैं पम्प चलाए जा रहा हूं, हालांकि बाल्टी भर चुकी है और पानी इधर-उधर बिखर रहा है। अपनी अन्यमनस्कता छिपाने और पुष्पा के सौजन्य का बदला चुकाने के लिए मैंने अपनी बाल्टी उठाई और उसका सारा

पानी पुष्पा की बाल्टी में डाल दिया।

"ऊई!" वह एक कदम पीछे हट गई, "मेरी बाल्टी छू गई।"

"छू कैसे गई?" मैंने लज्जा और अपमान महसूस करते हुए पूछा।

पुष्पा ने मेरे छिपे हुए भाव को भांप लिया। उसने क्षमा मांगने के ढंग से कहा, "जी, मैं बाल्टी माजकर लाई थी। आपकी बाल्टी मंजी हुई नहीं थी।"

यह सुनकर मेरी आत्मा फिर उदार हो गई। मैंने अपने को याद दिलाया कि बाल्टी को राख से मला जाए, तभी जाकर वह पवित्र होती है। फिर चाहे गलीज फर्श पर रखकर उसमें पानी भरो, चाहे चबाई हुई दातुनों के ढेर पर।

"मेरी बाल्टी भी मंजी हुई थी, मैंने सवेरे मांजी थी," मैंने झूठ बोला। झूठ बोलना मेरी आदत है। बिना कारण के झूठ बोलता हूं। दिन में कई-कई बार बोलता हूं। यह मुझे अच्छा भी लगता है, मैं सच कह रहा हूं।

जो मुंह से झूठ नहीं बोला, वह मन में झूठ बोलता है। जो मन से झूठ बोलता है, वह मुझसे ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि वह सच का दावेदार है, इसलिए वह और भी झूठा है।

पुष्पा ने मुस्कराकर बाल्टी का पानी गिरा दिया और जमीन से मिट्टी उखाड़कर बाल्टी को मलने लगी। मैं अपनी बाल्टी में फिर से पानी भरने लगा।

किसीने दूर से उसे पुकारा, "पप्पीऽ!"

"आई बाबूऽ!" उसने पुकारकर उत्तर दिया।

"अभी पानी नहीं भरा?"

"नहीं बाबू!"

"जल्दी कर सिर मुंडीऽ।"

मैंने ऊपर देखा। एक लम्बा बूढ़ा जाट सामने की कोठी के बरामदे में खड़ा सिर पर पगड़ी लपेट रहा था। एक तो उसकी आवाज बहुत कर्कश थी, दूसरे उसकी सफेद दाढ़ी ऐसी नोकदार थी, जैसे उसीसे वह मुर्गियां झटकता रहा हो। उसकी आखों का रंग बताता था कि उसने रात को खूब शराब पी है, क्योंकि नशा अभी तक उसकी पुतलियों में तैर रहा था। पगड़ी लपेटकर उसने दाढ़ी पर हाथ फेरा और पुष्पा को फिर आवाज दी, "जल्दी कर, लाड़ की बच्ची, नहीं तेरा झोंटा सेंकू!"

यह देखकर कि मेरी बाल्टी अभी आधी भरी है, मैं जल्दी-जल्दी पम्प चलाने लगा। जाट ने पीठ मोड़ ली। पुष्पा मेरी ओर दो कौड़ियों का एक दांव फेंककर मुस्कराई। उसकी मुस्कराहट ने मुझसे कहा 'तुम बेवकूफ हो। बापू की गालियां बेटी को नहीं लगा करतीं।'

उसके बाद दो-तीन बार फिर मैंने पुष्पा को देखा। न जाने क्यों उसे देखकर हर बार मुझे गहरे लाल रंग के मखमली फूल याद आ जाते। बचपन में मैं वे फूल अपने कोट पर लगाया करता था।

दो-तीन बार पुष्पा के बापू को भी मैंने देखा—दातुन करते, जूड़ा बांधते या गालियां बकते। उसकी मुझ पर कुछ ऐसी छाप पड़ी जैसे बरसात होकर हटी हो और पुराने गले हुए टीन के छप्पर पर से महीनों का सूखा बीट पानी के साथ गल-गलकर टपक रहा हो।

उस दिन दफ्तर से लौटते हुए मैं अड्डा नकोदर से फर्लांग-भर आया था जब मैंने लक्षित किया कि सफेद दाढ़ी वाला वह जाट मुझसे दो कदम हटकर साथ-साथ चल रहा है। मैं ज़रा तेज चलने लगा। वह भी तेज चलने लगा। मैंने चाल धीमी कर दी। उसने भी चाल धीमी कर दी।

मुझे यह कभी सह्य नहीं कि मैं सड़क पर किसीके साथ-साथ चलूं, क्योंकि मैं जिसके साथ चलता हूं, वह अपेक्षा करता है कि मैं उसीकी तरह चलूं और उसीकी तरह सोचूं। पर कोई मेरे साथ-साथ चले तो वह मुझे बहुत अच्छा लगता है, क्योंकि वह मेरी तरह चलता है और अपनी तरह सोचता है।

"कहां चल रहे हो, बाबूजी ?" पुष्पा के बापू ने मेरा ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए पूछा।

"मॉडल टाउन," मैंने इस अन्दाज़ में कहा कि वह जान ले कि मैं एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हूं और सिर्फ इसलिए पैदल चल रहा हूं कि मुझे संध्या के समय पैदल घूमने का शौक है।

"हम भी वहीं चल रहे हैं। डॉक्टर गुरबख्शसिंह मदान को जानते हैं ? वे हमारे ही गांव के हैं। शहर मे आकर हमारा उन्हीके घर डेरा होता है।" फिर पास आकर बोला, "चलो राह चलते एक से दो भले।"

मैंने कहना तो चाहा कि मेरे साथ चलने में उसे भले ही लाभ हो, उसके साथ चलने मे मुझे कोई लाभ नहीं, पर इसलिए नहीं कहा कि कहीं दोआबा का

जाट जोश में आकर मेरे सिर का पंजाब न बना दे।

"आप इधर के ही हैं ?" जाट ने अब परिचय बढ़ाने की चेष्टा की।

"नहीं," मैंने उत्तर दिया।

"तो जालन्धर में कब से हैं ?"

मैंने उचित समझा कि वह जितने सवाल पूछ सकता है, उन सबका उत्तर एक साथ ही उसे दे दूं, जिससे उसकी जिज्ञासा पूरी शान्त हो जाए। इसलिए मैंने कहा कि मैं दो महीने से यहां हूं। सेक्रेटेरियट में असिस्टेंट सुपरवाइजर हूं। वेतन एक सौ बीस रुपया है। ऊपरी आमदनी हो जाने की आशा है। अभी ब्याह नहीं हुआ। लड़की देख रहा हूं। पढ़ाई की चौदह जमातें पास की हैं। तरकारियों में मुझे गोभी पसन्द है। फलों में मैं आम पसन्द करता हूं। हर इतवार को शरीर पर कड़वे तेल की मालिश करता हूं। मेरी रोटी एक गढ़वाली पकाता है। उसकी उम्र चालीस साल है। मेरे बरतन उसकी लड़की मलती है। उसकी उम्र बीस साल है।

यह सब उसे सुनाकर मैंने मन में कहा कि पूछ ताऊ, अब क्या पूछता है।

पर जाट ने फिर भी पूछा, "क्यों जी, गढ़वाली ने अभी तक लड़की का ब्याह नहीं किया ?"

यह हद थी ! मगर मैंने धैर्य नहीं छोड़ा। सन्तोष-असन्तोष अपने घर की चीज है। पर पीठ का दर्द जाकर डॉक्टर को दिखलाना पड़ता है। मुझे अपनी आत्मा पर इस बात का गर्व है कि वह हवा का रुख देखकर फौरन तिरछी से सीधी हो जाती है। मैंने जाट का प्रश्न बिलकुल स्वाभाविक समझकर उसका स्वाभाविक-सा उत्तर दिया, "उसकी लड़की विधवा है।"

"अच्छा जी, विधवा है ? फिर तो वह उसे दूसरी जगह बिठाएगा।"

मैं आधुनिक इतिहास का विद्यार्थी होता तो गढ़वाली से पूछ रखता कि वह अपनी लड़की को दूसरी जगह बिठाएगा या नहीं। पर इतिहास में मेरी रुचि तैमूरलंग की लड़ाई तक ही रही है, उससे आगे नहीं। फिर भी जाट को उत्तर देना आवश्यक था। उसकी मूंछों के बाल अंगड़ाइयां लेने लगे थे। मैंने रास्ता काटने की नीयत से कहा, "वह देख-भाल तो कर रहा है। आगे लड़की की तकदीर है।"

"लड़की देखने में अच्छी है ?" जाट ने पूछा।

[illegible] है और [illegible] की भी [illegible] है," मैं इसलिए कहा कि [illegible]

[illegible] "मन [illegible] नहीं है। [illegible]

"[illegible] है। हाँ, [illegible] करती है।"

[illegible] "[illegible] काम नहीं छुड़ाया।"

[illegible] उसकी ओर देखा तो उसकी आँखों [illegible] उसके होंठ सूखे [illegible] वासना की मार से [illegible]

कहा "[illegible] कभी-कभी निकल आता है।"

[illegible] ध्यान नहीं दिया। [illegible]

म कहा, "बाबूजी, आप [illegible] मुलाकात हो सकती है?"

"क्यों?" मैं उसकी ओर देखकर पूछा। मुझे लगा कि वासना का नाग फूं-फूंकर [illegible] और इन्सान के आकार में धरती पर रेंग रहा है।

"मुझे एक जमींदारनी की जरूरत है, बाबूजी!" बूढ़े ने कहा। "मैं जमीं-दार हूँ। गाम के पास में मेरी चार एकड़ जमीन है। पांच एकड़ जमीन जिला करनाल में है। वहाँ के गांव का नम्बरदार हूँ। घर वाली मर गई है। एक जवान लड़की है। उसका ब्याह कर दूं तो मेरी देख-भाल करने वाला कोई नहीं है। घर में एक गाय और दो भैंसें हैं। घरवाली आ जाए तो उनका चारापानी हो जाएगा और मेरी भी दो रोटियाँ हो जाएँगी।" फिर उसने मेरी बांह पकड़-कर मिन्नत के लहजे में कहा, "आपके गुण गाऊँगा सरकार, मेरा यह काम जरूर करा दीजिए।"

वह बोल रहा था तो उसके शब्दों की गूंज अपना अर्थ मुझे और तरह समझा रही थी। वह कह रही थी, "मुझे औरत के गर्म मांस की जरूरत है, बाबूजी! मैं चाहे बूढ़ा हूँ, पर मेरे अकेले के पास नौ एकड़ जमीन है। घर में गाय-भैंसें हैं और सब-कुछ है, सिर्फ औरत ही नहीं है। मेरी अपनी हड्डियों पर गर्म मांस नहीं रहा, पर बूढ़ी हड्डियाँ गर्म मांस का चारा अब भी मांगती हैं। इनके लिए चारा चाहिए, सरकार जैसे भी हो सके इनके चारे का प्रबन्ध कर दीजिए।"

किसी तरह गला छुड़ाने के लिए मैंने कहा, "गढ़वाली पंजाबियों के [illegible]

ब्याह नहीं करते, सरदारजी ! उसका बाप उसे किसी गढ़वाली के घर ही बिठाएगा।" मेरी बात सुनकर जाट ढीला हो गया। उसकी मूँछों के बाल, जो अब तक अंगड़ाइयां ले रहे थे, सुस्त होकर बैठ गए। वह ठंडी सांस लेकर बोला, "कहीं भी कामयाबी नजर नहीं आती। लोग कहते थे कि रिफ्यूजी कैम्पों से मिल जाती हैं। पर मैं सवा साल से चक्कर लगा-लगाकर हार गया, कोई नहीं मिली। डॉक्टर साहब ने एक पहाड़िन चार सौ में ठीक की थी, वह भी मेरी दाढ़ी देखकर मुकर गई।"

"पर तुमको तो घर की देख-भाल के लिए ही जरूरत है न, सरदारजी ?" मैंने कहा, "एक नौकर क्यों नहीं रख लेते ?"

"नौकर उतना काम नहीं दे सकता, बाबूजी ! जमींदार का घर है। चार आने वाले, चार जाने वाले। फिर सेवा के लिए एक गाय, दो भैंसें। इतना कुछ तो घरवाली ही संभाल सकती है।"

"तो तुम चाहते हो कि जवान लड़की आकर तुम्हारे गुर्दे भी दुरुस्त करे और तुम्हारी गाय-भैंसों का दूध भी दुहे ?"

"वह क्यों दुहे सरकार ? वह आराम से घर में बैठे। दूध दुहने को हम क्या मर गए हैं ?"

यह आज़माने के लिए कि वह अपने को कहां तक सौदे में डालता है, मैंने उपदेश के रूप में कहा, "इस उम्र में कोई मिलेगी भी तो ऐसी ही मिलेगी सरदारजी, जो पहले कई घरों में घूम चुकी हो और जिसे दूसरा ठौर-ठिकाना न हो। ऐसी को घर में डाल लोगे ?"

मैंने देखा, जाट की मूंछों के बाल फिर अंगड़ाइयां लेने लगे हैं। उसने आगे बढ़कर फिर मेरी बांह पकड़ ली और बोला, "आपके पास है बाबूजी, जरूर आपके पास कोई है !"

मैंने नहीं सोचा था कि मेरे शब्दों का यह अर्थ भी निकल सकता है। थोड़ा भद्दा पड़कर मैंने स्पष्ट करने के लिए कहा, "यह मतलब नहीं सरदारजी, कि मेरे पास कोई है। मैं तो सिर्फ बात के लिए बात कर रहा हूं।"

"नहीं बाबूजी, आपके पास जरूर कोई है," जाट ने विनय और अनुरोध के साथ कहा। "मेरी पगड़ी अपने पैरों पर समझो और मेरा काम करा दो। दो-चार सौ मैं आपके सिर से वार दूंगा — एक बार अपने मुंह से कह दो कि है।"

मैंने जाट को सिर से पैर तक देखा। उसकी भौंहें सफेद हो रही थीं। आंखें छोटी होकर केवल दाग कर गई थीं। गालों का मांस लटक आया था। दांत आधे टूट चुके थे। जो दांत शेष थे, उनकी जड़ों में लहू रिस-रिसा रहा था। बोलते-बोलते उसका थूक दाढ़ी के सफेद बालों में फैल गया था और वह मुझसे विश्वास माग रहा था कि मैं कह दूं है—एक औरत है, जो उसके लिए चारा बन सकती है, जो अपना यौवन रांधकर उसे खिला सकती है, क्योंकि वह जमींदार है और उसके घर मे एक गाय और दो भैंसें हैं, और उसकी हड्डियों में जितना ज़ोर है, उससे कहीं अधिक उसकी गांठ में पैसा है।

"बोले नहीं बाबूजी?" जाट व्याकुल उत्सुकता के साथ बोला।

"मैं किसीको नहीं जानता सरदारजी," मैंने धीरे से उत्तर दिया।

मॉडल टाउन अब सामने ही था। पक्की सड़क पर जाकर मेरी नज़र पुष्पा पर पड़ी जो बरामदे में खड़ी अपने बापू की प्रतीक्षा कर रही थी।

मुझे फिर लाल फूल याद हो आए। मैंने जाट की ओर देखकर पूछा, "तुम अभी कुछ दिन तो हमारे पड़ोसी हो न, सरदारजी ?"

"नहीं जी, हम कल अपने गांव जा रहे हैं," जाट ने कहा। "यहां अब किसके भरोसे बैठे रहें ? वहीं चलकर देख-भाल करेंगे। और नहीं तो बदले में ही कोई लड़की देखेंगे···"

"बदले में ?" मैंने हैरान होकर पूछा।

"हमारे में यह रिवाज है, बाबूजी! बराबर का रिश्ता हो तो दो घर आपस में लड़कियां बदल लेते हैं। मैं जाकर अपने जैसा ही कोई घर देखूंगा।"

मैंने देखा पुष्पा प्रतीक्षा कर रही है। बापू जो गाली देता है, वह गाली उसे नहीं लगती। पर बापू जो गाली नहीं देता, वह गाली उसे लग रही है।

मलबे का मालिक

साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आए थे। हॉकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गए थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई न कोई टोली घूमती नज़र आ जाती थी। उनकी आँखें इस आग्रह के साथ वहाँ की हर चीज़ को देख रही थीं जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा-खासा आकर्षण-केन्द्र हो।

तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक-दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे ··देख—फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गई हैं! उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्ठी थी, जहां अब वह पानवाला बैठा है।···यह नमक मण्डी देख लो, खान साहब! यहां की एक-एक लालाइन *वह नमकीन होती है कि बस*···!

बहुत दिनों के बाद बाजारों में तुर्रेदार पगड़ियां और लाल तुरकी टोपियां नज़र आ रही थीं। लाहौर से आए मुसलमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्हें *विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर से जाना पड़ा था।* साढ़े सात साल में आए अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आंखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता—वल्लाह! कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे

हकीम आसिफ़अली की दुकान थी न ? अब यहां एक मोची ने कब्ज़ा क
रखा है ?

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाने—अली, यह मस्जिद ज्यों की
त्यों खड़ी है ? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया ?

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुज़रती, शहर के लोग उत्सु-
कतापूर्वक उस तरफ देखते रहते । कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर
आशंकित-से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने
लगते । ज़्यादातर वे आगन्तुकों से ऐसे-ऐसे सवाल पूछते—कि आजकल लाहौर
का क्या हाल है ? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं ?
सुना है, शाहालमीगेट का बाज़ार पूरा नया बना है ? कृष्णनगर में तो कोई
खास तब्दीली नहीं आई ? वहा का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से
बना है ? कहते हैं, पाकिस्तान में अब बुर्क़ा बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक
है ?···इन सवालों मे इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था, लाहौर एक
शहर नहीं, हज़ारों लोगों का सगा-सम्बन्धी है, जिसके हाल जानने के लिए वे
उत्सुक हैं । लाहौर से आए लोग उस दिन शहर-भर के मेहमान थे जिनसे मिलकर
और बातें करके लोगो को बहुत खुशी हो रही थी ।

बाज़ार बांसा अमृतसर का एक उजड़ा-सा बाज़ार है, जहा विभाजन से
पहले ज़्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे । वहां ज़्यादातर बांसों और
शहतीरो की ही दुकानें थी जो सबकी सब एक ही आग में जल गई थी । बाज़ार
बांसां की वह आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी जिससे कुछ देर के लिए
तो सारे शहर के जल जाने का अंदेशा पैदा हो गया था । बाज़ार बांसां के आ
पास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था । ·
किसी तरह वह आग काबू में आ गई थी, पर उसमें मुसलमानों के एक-ए
घर के साथ हिन्दुओ के भी चार-चार, छः-छः घर जलकर राख हो गए थे । अ
साढ़े सात साल में उनमे से कई इमारतें फिर से खड़ी हो गई थी, मगर जगह
मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे । नई इमारतो के बीच-बीच वे मलबे के
अजीब वातावरण प्रस्तुत करते थे ।

[illegible] ·· मे उस दिन भी चहल-पहल नही थी क्योंकि उस बाज़ार के
[illegible] ·· लोग तो अपने मकानों के साथ ही

जो बचकर चले गए थे, उनमें से शायद किसीमें भी लौटकर आने की हिम्मत नहीं रही थी। सिर्फ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस दिन उस वीरान बाजार में आया और वहां की नई और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैयां में पड़ गया। बाईं तरफ जानेवाली गली के पास पहुंचकर उसके पैर अंदर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहां बाहर ही खड़ा रह गया। जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह वही गली है जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी-कीडा खेल रहे थे और कुछ फासले पर दो स्त्रियां ऊंची आवाज में चीखती हुई एक-दूसरी को गालियां दे रही थीं।

"सब कुछ बदल गया, मगर बोलियां नहीं बदलीं!" बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिए खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर को निकल रहे थे। घुटनों से थोड़ा ऊपर शेरवानी में तीन-चार पैबन्द लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर आ रहा था। उसने उसे पुचकारा, "इधर आ, बेटे! आ, तुझे चिज्जी देंगे, आ!" और वह अपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज़ ढूंढने लगा। बच्चा एक क्षण के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसी तरह होंठ बिसूरकर रोने लगा। एक सोलह-सत्रह साल की लड़की गली के अंदर से दौड़ती हुई आई और बच्चे को बांह से पकड़कर गली में ले चली। बच्चा रोने के साथ-साथ अब अपनी बांह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे अपनी बांहों में उठाकर साथ सटा लिया और उसका मुंह चूमती हुई बोली, "चुप कर, खसम-खाने! रोएगा, तो वह मुसलमान तुझे पकड़कर ले जाएगा! कह रही हूं, चुप कर!"

बुड्ढे मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह उसने वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर वहां थोड़ा खुजलाया और टोपी अपनी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने थोड़ा कांप रहे थे। उसने गली के बाहर की एक बंद दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहां पहले ऊंचे-ऊंचे शहतीर रखे रहते थे, वहां अब एक तिमंजिला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिलकुल जड़-सी बैठी थीं। बिजली के खंभे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते ज़र्रों को देखता रहा। फिर उसके

मुह से निकला, "या मालिक !"

एक नवयुवक चाबियों का गुच्छा घुमाता गनी की तरफ आया। बुड्ढे को यहां खड़े देखकर उसने पूछा, "कहिए मियांजी, यहां किसलिए खड़े हैं ?"

बुड्ढे मुसलमान को छाती और बांहों में हल्की-सी कपकपी महसूस हुई। उसने होंठों पर जबान फेरी और नवयुवक को ध्यान से देखते हुए कहा, "बेटे, तेरा नाम मनोरी है न ?"

नवयुवक ने चाबियों के गुच्छे को हिलाना बंद करके अपनी मुट्ठी में ले लिया और कुछ आश्चर्य के साथ पूछा, "आपको मेरा नाम कैसे मालूम है ?"

"साढ़े सात साल पहले तू इतना-सा था," कहकर बुड्ढे ने मुसकराने की कोशिश की।

"आप आज पाकिस्तान से आए हैं ?"

"हां ! पहले हम इसी गली में रहते थे," बुड्ढे ने कहा। "मेरा लड़का चिरागदीन तुम लोगों का दर्जी था। तकसीम से छः महीने पहले हम लोगों ने यहां अपना नया मकान बनवाया था।"

"ओ, गनी मियां !" मनोरी ने पहचानकर कहा।

"हां, बेटे, मैं तुम लोगों का गनी मियां हूं ! चिराग और उसके ब बच्चे तो अब मुझे मिल नहीं सकते, मगर मैंने सोचा कि एक बार मकान ही सूरत देख लूं !" बुड्ढे ने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरा, और अ आंसुओं को बहने से रोक लिया।

"तुम तो शायद काफी पहले यहां से चले गए थे," मनोरी के स्वर संवेदना भर आई।

"हां, बेटे, यह मेरी बदबख्ती थी कि मैं अकेला पहले निकलकर चला गया ा। यहां रहता, तो उनके साथ मैं भी...." कहते हुए उसे एहसास हो आया कि ह बात उसे नहीं कहनी चाहिए। उसने बात को मुंह में रोक लिया पर आंखों आए आंसुओं को नीचे बह जाने दिया।

"छोड़ो गनी मियां, अब उन बातों को सोचने में क्या रखा है ?" मनोरी ने गनी की बांह अपने हाथ में ले ली। "चलो, तुम्हें तुम्हारा घर दिखा दूं।"

गली में खबर इस तरह फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था''उसकी बहन वक्त पर उसे पकड़ लाई, नहीं तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह खबर मिलते ही जो स्त्रियां गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थीं, वे पीढ़े उठाकर घरों के अन्दर चली गईं। गली में खेलते बच्चों को भी उन्होंने पुकार-पुकारकर घरों के अन्दर बुला लिया। मनोरी गनी को लेकर गली में दाखिल हुआ, तो गली में सिर्फ एक फेरीवाला रह गया था, या रक्खा पहलवान जो कुएं पर उगे पीपल के नीचे बिखरकर सोया था। हां, घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से कई चेहरे गली में झांक रहे थे। मनोरी के साथ गनी को आते देखकर उनमें हल्की चेहमेगोइयां शुरू हो गई। दाढ़ी के सब बाल सफेद हो जाने के बावजूद चिरागदीन के बाप अब्दुल गनी को पहचानने में लोगों को दिक्कत नहीं हुई।

"वह था तुम्हारा मकान," मनोरी ने दूर से एक मलबे की तरफ इशारा किया। गनी पल-भर ठिठककर फटी-फटी आंखों से उस तरफ देखता रहा। चिराग और उसके बीवी-बच्चों की मौत को वह काफी पहले स्वीकार कर चुका था। मगर अपने नये मकान को इस शक्ल में देखकर उसे जो झुरझुरी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी जबान पहले से और खुश्क हो गई और घुटने भी ज्यादा कांपने लगे।

"यह मलबा?" उसने अविश्वास के साथ पूछ लिया।

मनोरी ने उसके चेहरे के बदले हुए रंग को देखा। उसकी बांह को थोड़ा और सहारा देकर जड़-से स्वर में उत्तर दिया, "तुम्हारा मकान उन्हीं दिनों जल गया था।"

गनी छड़ी के सहारे चलता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुंच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी जिसमें से जहां-तहां टूटी और जली हुई ईंटें बाहर झांक रही थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से कब का निकाला जा चुका था। केवल एक जले हुए दरवाजे का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था। पीछे की तरफ दो जली हुई अलमारियां थीं जिनकी कालिख पर अब सफेदी की हल्की-हल्की तह उभर आई थी। उस मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा, "यह बाकी रह गया है, यह?" और उसके घुटने जैसे जवाब दे गए और वह वहीं जले हुए चौखट को पकड़कर बैठ गया। क्षण-भर बाद

उसका सिर भी चौखट से जा सटा और उसके मुंह से बिलखने की-सी आवाज़ निकली, "हाय ओए चिरागदीना !"

जले हुए किवाड़ का वह चौखट मलबे में से सिर निकाले साढ़े सात साल खड़ा तो रहा था, पर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गई थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर आसपास बिखर गए। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ रहे। उन रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा जो गनी के पैर से छः-आठ इंच दूर नाली के साथ-साथ बनी ईंटों की पटरी पर इधर-उधर सरसराने लगा। वह छिपने के लिए सूराख ढूंढ़ता हुआ ज़रा-सा सिर उठाता, पर कोई जगह न पाकर दो-एक बार सिर पटकने के बाद दूसरी तरफ मुड़ जाता।

खिड़कियों से झांकनेवाले चेहरों की संख्या अब पहले से कहीं ज्यादा हो गई थी। उनमें चेहमेगोइयां चल रही थी कि आज कुछ न कुछ ज़रूर होगा… चिरागदीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की वह [illegible]ारी घटना आज अपने-आप खुल जाएगी। लोगों को लग रहा था जैसे वह [illegible]लबा ही गनी को सारी कहानी सुना देगा—कि शाम के वक्त चिराग [illegible] कमरे में खाना खा रहा था जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया—[illegible] वह एक मिनट आकर उसकी बात सुन ले। पहलवान उन दिनों गली [illegible] …ाह था। वहां के हिन्दुओं पर ही उसका काफी दबदबा था—चिराग त[illegible] खैर मुसलमान था। चिराग हाथ का कौर बीच में ही छोड़कर नीचे उत[illegible] आया। उसकी बीवी ज़ुबैदा और दोनों लड़कियां, किश्वर और सुलताना, खिड़कियों से नीचे झांकने लगी। चिराग ने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज़ के कॉलर से पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, "रक्खे पहलवान, मुझे मत मार ! हाय, कोई मुझे बचाओ !" ऊपर से ज़ुबैदा, किश्वर और सुलताना भी हताश स्वर में चिल्लाईं और चीखती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ दौड़ीं। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग की जद्दो-जेहद करती बाहें पकड़ ली और रक्खा उसकी जांघों को अपने घुटनों दबाए हुए बोला, "चीखता क्यों है, भैण के…तुझे मैं पाकिस्तान दे रहा हूं, पाकिस्तान !" और जब तक ज़ुबैदा, किश्वर और सुलताना नीचे पहुंचीं

चिराग को पाकिस्तान मिल चुका था।

आसपास के घरों की खिड़कियां तब बंद हो गई थीं। जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाज़े बंद करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया था। बंद किवाड़ों में भी उन्हें देर तक ज़ुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाजें सुनाई देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान दे दिया, मगर दूसरे तबील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पाई गईं।

दो दिन चिराग के घर की छानबीन होती रही थी। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी थी। रक्खे पहलवान ने तब कसम खाई थी कि वह आग लगाने वाले को ज़िंदा ज़मीन में गाड़ देगा क्योंकि उस मकान पर नज़र रखकर ही उसने चिराग को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन-सामग्री भी ला रखी थी। मगर आग लगाने वाले का तब से आज तक पता नहीं चल सका था। अब साढ़े सात साल से रक्खा उस मलबे को अपनी जायदाद समझता आ रहा था, जहां न वह किसीको गाय-भैंस बांधने देता था और न ही खुमचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी इजाज़त के कोई एक ईंट भी नहीं निकाल सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी ज़रूर किसी न किसी तरह गनी तक पहुंच जाएगी···जैसे मलबे को देखकर ही उसे सारी घटना का पता चल जाएगा। और गनी मलबे की मिट्टी को नाखूनों से खोद-खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाज़े के चौखट को बांह में लिए हुए रो रहा था, "बोल, चिराग-दीना, बोल! तू कहां चला गया, ओए? ओ किश्वर! ओ सुलताना! हाय, मेरे बच्चे ओएऽऽ! गनी को पीछे क्यों छोड़ दिया, ओएऽऽऽ!"

और भुरभुरे किवाड़ से लकड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे।

पीपल के नीचे सोए रक्खे पहलवान को जाने किसीने जगा दिया, या वह खुद ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुल गनी आया है और अपने मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया जिससे उसे खांसी आ गई और उसने कुएं के फर्श पर थूक दिया। मलबे की तरफ देखकर उसकी छाती से धौंकनी की-सी आवाज़ निकली और उसका निचला होंठ थोड़ा बाहर को फैल आया।

"गनी अपने मलबे पर बैठा है," उसके शागिर्द लच्छे पहलवान ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

"मलबा उसका कैसे है? मलबा हमारा है!" पहलवान ने झाग से भर-भराई आवाज़ में कहा।

"मगर वह वहां बैठा है," लच्छे ने आंखों में एक रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

"बैठा है, बैठा रहे। तू चिलम ला!" रक्खे की टांगें थोड़ी फैल गईं और उसने अपनी नंगी जांघों पर हाथ फेर लिया।

"मनोरी ने अगर उसे कुछ बता-वता दिया तो···?" लच्छे ने चिलम भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण ढंग से कहा।

"मनोरी की क्या शामत आई है?"

लच्छा चला गया।

कुएं पर पीपल की कई पुरानी पत्तियां बिखरी थीं। रक्खा उन पत्तियों को उठा-उठाकर अपने हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर चिलम उसके हाथ में दी, तो उसने कश खींचते हुए पूछा, "और तो किसीसे गनी की बात नहीं हुई?"

"नहीं।"

"ले," और उसने खांसते हुए चिलम लच्छे के हाथ में दे दी। मनोरी गनी की बांह पकड़े मलबे की तरफ से आ रहा था। लच्छा उकड़ू होकर चिलम के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। उसकी आंखें आधा क्षण रक्खे के चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण गनी की तरफ लगी रहतीं।

मनोरी गनी की बांह थामे उससे एक कदम आगे चल रहा था—जैसे उसकी कोशिश हो कि गनी कुएं के पास से बिना रक्खे को देखे ही निकल जाए। मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे गनी ने उसे दूर से ही देख लिया। कुएं के पास पहुंचते न पहुंचते उसकी दोनों बांहें फैल गईं और उसने कहा, "रक्खे पहलवान!"

रक्खे ने गरदन उठाकर और आंखें ज़रा छोटी करके उसे देखा। उसके गले अस्पष्ट-सी घरघराहट हुई, पर वह बोला कुछ नहीं।

"रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नहीं?" गनी ने बांहें नीची करके

"मैं गनी हूं, अब्दुल गनी, चिरागदीन का बाप !"

पहलवान ने ऊपर से नीचे तक उसका जायजा लिया। अब्दुल गनी की आंखों में उसे देखकर एक चमक-सी आ गई थी। सफेद दाढ़ी के नीचे उसके चेहरे की झुर्रियां भी कुछ फैल गई थीं। रक्खे का निचला होंठ फड़का। फिर उसकी छाती से भारी-सा स्वर निकला, "सुना, गनिया !"

गनी की बांहें फिर फैलने को हुईं, पर पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गईं। वह पीपल का सहारा लेकर कुएं की सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियों में चेहमेगोइयां तेज़ हो गईं कि अब दोनों आमने-सामने आ गए हैं, तो बात ज़रूर खुलेगी···फिर हो सकता है दोनों में गाली-गलौज भी हो। · अब रक्खा गनी को हाथ नहीं लगा सकता। अब वे दिन नहीं रहे। ·· बड़ा मलबे का मालिक बनता था ! ·· असल में मलबा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मलकियत है ! मरदूद किसी को वहां गाय का खूंटा तक नहीं लगाने देता !···मनोरी भी डरपोक है। इसने गनी को बता क्यों नहीं दिया कि रक्खे ने ही चिराग और उसके बीवी-बच्चों को मारा है !···रक्खा आदमी नहीं सांड है ! दिन-भर सांड की तरह गली में घूमता है ! ·· गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है ! दाढ़ी के सारे बाल सफेद हो गए हैं ! ···

गनी ने कुएं की सिल पर बैठकर कहा, "देख रक्खे पहलवान, क्या से क्या हो गया है ! भरा-पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहां यह मिट्टी देखने आया हूं ! बसे घर की आज यही निशानी रह गई है ! तू सच पूछे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को मन नहीं करता !" और उसकी आंखें फिर छलछला आईं।

पहलवान ने अपनी टांगें समेट लीं और अंगोछा कुएं की मुंडेर से उठाकर कंधे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ बढ़ा दी। वह कश खींचने लगा।

"तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह ?" गनी किसी तरह अपने आंसू रोककर बोला। "तुम लोग उसके पास थे। सबमें भाई-भाई की-सी मुहब्बत थी। अगर वह चाहता, तो तुममें से किसी के घर में नहीं छिप सकता था ? उसमें इतनी भी समझदारी नहीं थी ?"

"ऐसे ही है," रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज़ में एक अस्वाभाविक-सी गूंज है। उसके होंठ गाढ़े लार से चिपक गए थे। मूँछों के नीचे से पसीना उसके होंठ पर आ रहा था। उसे माथे पर किसी चीज़ का दबाव महसूस हो रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

"पाकिस्तान में तुम लोगों के क्या हाल हैं?" उसने पूछा। उसके गले की नसों में एक तनाव आ गया था। उसने अंगोछे से बगलों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुँह में खींचकर गली में थूक दिया।

"क्या हाल बताऊँ, रक्खे," गनी दोनों हाथों से छड़ी पर बोझ डालकर झुकता हुआ बोला। "मेरा हाल तो मेरा खुदा ही जानता है। चिराग वहाँ साथ होता, तो और बात थी।...मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। पर वह ज़िद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर नहीं जाऊँगा—यह अपनी गली है, यहाँ कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न हो, पर बाहर से तो खतरा आ सकता है! मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी!...रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आई, तो रक्खे के रोके भी न रुकी।"

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी। अपनी कमर और जांघों के जोड़ पर उसे सख्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास से जैसे कोई चीज़ उसकी सांस को रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके तलुओं में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में नीली फुलझड़ियां-सी ऊपर से उतरती और तैरती हुई उसकी आंखों के सामने से निकल जाती। उसे अपनी जबान और होंठों के बीच एक फासला-सा महसूस हो रहा था। उसने अंगोछे से होंठों के कोनों को साफ किया। साथ ही उसके मुँह से निकला, "हे प्रभु, तू ही है, तू ही है, तू ही है!"

गनी ने देखा कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं और उसकी आंखों के गिर्द दायरे गहरे हो गए हैं। वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "जो होना था, हो गया रक्खिया! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है! खुदा नेक की नेकी बनाए रखे और बद की बदी माफ करे! मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूंगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे!" और वह

छड़ी के सहारे उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने कहा, "अच्छा रक्खे, पहलवान!"

रक्खे के गले से मद्धिम-सी आवाज़ निकली। अंगोछा लिए हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गए। गनी हसरत-भरी नज़र से आसपास देखता हुआ धीरे-धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयां चलती रहीं—कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर ज़रूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा : कि गनी के सामने रक्खे का तालू कैसे खुश्क हो गया था!···रक्खा अब किस मुंह से लोगों को ···मलबे पर गाय बांधने से रोकेगा? बेचारी ज़ुबैदा! कितनी अच्छी थी वह! रक्खे मरदूद का घर···न घाट, इसे किसीकी मां-बहन का लिहाज़ था?

थोड़ी देर में स्त्रियां घरों से गली में उतर आईं। बच्चे गली में गुल्ली-डण्डा खेलने लगे। दो बारह-तेरह साल की लड़कियां किसी बात पर एक-दूसरी से गुत्थम-गुत्था हो गईं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएं पर बैठा खंखारता और चिलम फूंकता रहा। कई लोगों ने वहां गुज़रते हुए उससे पूछा, "रक्खे शाह, सुना है आज गनी पाकिस्तान से आया था?"

"हां, आया था," रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

"फिर?"

"फिर कुछ नहीं। चला गया।"

रात होने पर रक्खा रोज़ की तरह गली के बाहर बाईं तरफ की दुकान के तख्ते पर आ बैठा। रोज़ वह रास्ते से गुज़रने वाले परिचित लोगों को आवाज़ दे-देकर पास बुला लेता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताता रहता था। मगर उस दिन वह वहां बैठा लच्छे को अपनी वैष्णो देवी की उस यात्रा का वर्णन सुनाता रहा जो उसने पंद्रह साल पहले की थी। लच्छे को भेजकर वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पण्डित की भैंस को देखकर वह आदत के मुताबिक उसे धक्के दे-देकर हटाने लगा—"तत-तत-तत···तत-तत···!"

भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय सुनसान थी। कमेटी की बत्ती न होने से वहां शाम से ही अंधेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज़ करता बह रहा था।

रात की खामोशी को काटती हुई कई तरह की हल्की-हल्की आवाजें मलबे की मिट्टी में से सुनाई दे रही थीं···च्यु-च्यु-च्यु···चिक्-चिक्-चिक्···किर्र्र्र्-र्र्र्र्-रीरीरीरी-चिर्र्र्र्···। एक भटका हुआ कौआ न जाने कहां से उड़कर उस चौखट पर आ बैठा। इससे लकड़ी के कई रेशे इधर-उधर छितरा गए। कौए के यहां बैठते न बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और जोर-जोर से भौंकने लगा—वऊ-अऊ-वऊ! कौआ कुछ देर सहमा-सा चौखट पर बैठा रहा, फिर पंख फड़फड़ाता कुएं के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की तरफ मुंह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज में बोला, "दुर् दुर् दुर्··· दुरे!"

मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा—वऊ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ···।

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की तरफ फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बंद नहीं हुआ। पहलवान कुत्ते को मां की गाली देकर वहां से उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे जाकर कुएं की सिल पर लेट गया। उसके वहां से हटते ही कुत्ता गली में उतर आया और कुएं की तरफ मुंह करके भौंकने लगा। काफी देर भौंकने के बाद जब उसे गली में कोई प्राणी चलता-फिरता नजर नहीं आया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट गया और वहां कोने में बैठकर गुर्राने लगा।

उसकी रोटी

बालो को पता था कि अभी बस के आने मे बहुत देर है, फिर भी पल्ले से पसीना पोंछते हुए उसकी आंखें बार-बार सड़क की तरफ उठ जाती थी। नकोदर रोड के उस हिस्से मे आसपास कोई छायादार पेड़ भी नहीं था। वहां की जमीन भी बंजर और ऊबड़-खाबड थी— खेत वहां से तीस-चालीस गज के फासले से शुरू होते थे। और खेतों मे भी उन दिनों कुछ नहीं था। फसल कटने के बाद सिर्फ जमीन की गोडाई ही की गई थी, इसलिए चारों तरफ बस मटियालापन ही नजर आता था। गरमी से पिघली हुई नकोदर रोड का हल्का सुरमई रंग ही उस मटियालेपन से जरा अलग था। जहां बालो खड़ी थी वहां से थोड़े फासले पर एक लकड़ी का खोखा था। उसमे पानी के दो बड़े-बड़े मटकों के पास बैठा एक अधेड़-सा व्यक्ति ऊंघ रहा था। ऊंघ मे वह आगे को गिरने को होता तो सहसा झटका खाकर संभल जाता। फिर आसपास के वातावरण पर एक उदास-सी नजर डालकर, और अंगोछे से गले का पसीना पोंछकर, वैसे ही ऊंघने लगता। एक तरफ अढ़ाई-तीन फुट मे खोखे की छाया फैली थी और एक भिखमंगा, जिसकी दाढ़ी काफी बढ़ी हुई थी, खोखे से टेक लगाए ललचाई आंखों से बालो के हाथों की तरफ देख रहा था। उसके पास ही एक कुत्ता दुबककर बैठा था, और उसकी नजर भी बालो के हाथों की तरफ थी।

बालो ने हाथ की रोटी को मैले आंचल मे लपेट रखा था। वह उसे बद

आया था। फिर नकोदर के पंडित जीवाराम के साथ उसका झगडा हुआ, तो उसे उसने कत्ल करवा दिया। गाव के लोग उससे दूर-दूर रहते थे, मगर उससे बिगाड नहीं रखते थे। मगर उस आदमी की लाख बुराइया सुनकर भी उसने यह कभी नही सोचा था कि वह इतनी गिरी हुई हरकत भी कर सकता है कि चौदह साल की जिंदां को अकेली देखकर उसे छेडने की कोशिश करे। वह यूं भी जिंदां से तिगुनी उम्र का था और अभी साल-भर पहले तक उसे बेटी-बेटी कह-कर बुलाया करता था। मगर आज उसकी इतनी हिम्मत पड़ गई कि उसने खेत मे से आती जिंदां का हाथ पकड लिया ?

उसने जिंदां को नन्ती के यहा से उपले माग लाने को भेजा था। इनका घर खेतो के एक सिरे पर था और गाव के बाकी घर दूसरे सिरे पर थे। वह आटा गूधकर इतजार कर रही थी कि जिंदां उपले लेकर आए, तो वह जल्दी से रोटियां सेंक ले जिससे बस के वक्त से पहले सडक पर पहुंच जाए। मगर जिंदां आई, तो उसके हाथ खाली थे और उसका चेहरा हल्दी की तरह पीला हो रहा था। जब तक जिंदां नही आई थी, उसे उसपर गुस्सा आ रहा था। मगर उसे देखते ही उसका दिल एक अज्ञात आशका से काप गया।

"क्या हुआ है जिंदो, ऐसे क्यों हो रही है ?" उसने ध्यान से उसे देखते हुए पूछा।

जिंदां चुपचाप उसके पास आकर बैठ गई और बाहों मे सिर डालकर रोने लगी।

"खसम खानी, कुछ बताएगी भी, क्या बात हुई है ?"

जिंदां कुछ नही बोली। सिर्फ उसके रोने की आवाज तेज हो गई।

"किसीने कुछ कहा है तुझसे ?" उसने अब उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

"तू मुझे उपले-कुपले लेने मत भेजा कर," जिंदां रोने के बीच उखड़ी-उखडी आवाज मे बोली। "मैं आज से घर से बाहर नही जाऊंगी। मुआ जगी आज मुझसे कहता था···" और गला रुंध जाने से वह आगे कुछ नहीं कह सकी।

"क्या कहता था जगी तुझसे ?···बता···बोल···" वह जस एक बोझ के नीचे दबकर बोली, "खसम खानी, अब बोलती क्यों नही ?"

"वह कहता था," जिंदां सिसकती रही, "चल जिंदो, अन्दर चलकर गन्ना

पी ले। आज तू बहुत सोहणी लग रही है…।"

'मुआ कमजात!" वह सहसा उबल पड़ी। "मुए को अपनी माँ रंडी नहीं सोहणी लगती? मुए की नजर में कीड़े पड़ें। निपूते, तेरे घर में लड़की होती, तो इससे बड़ी होती, तेरे दीदे फटें!…फिर तूने क्या कहा?"

"मैंने कहा चाचा, मुझे प्यास नहीं है," जिंदा कुछ सँभलने लगी।

"फिर?"

"कहने लगा प्यास नहीं है, तो भी एक घूंट पी लेना। चाचा का शरबत पिएगी तो याद करेगी।…और मेरी बांह पकड़कर खींचने लगा।"

"हाय रे मौत-मरे, तेरा कुछ न रहे, तेरे घर में आग लगे। आने दे सुच्चासिंह को। मैं तेरी बोटी-बोटी न नुचवाऊं तो कहना, जल-मरे! तू गोया तो ही जाए।…हां, फिर?"

"मैं बांह छुड़ाने लगी, तो मुझे मिठाई का लालच देने लगा। मेरे हाथ से उपले वहीं गिर गए। मैंने उन्हें वैसे ही पड़े रहने दिया और बांह छुड़ाकर भाग आई।"

उसने ध्यान से जिंदा को सिर से पैर तक देखा और फिर अपने साथ सटा लिया।

"और तो नहीं कुछ कहा उसने?"

"अब मैं थोड़ी दूर निकल आई, तो पीछे से ही-ही करके बोला, 'बेटी, तू बुरा तो नहीं मान गई? अपने उपले तो उठाकर ले जा। मैं तो तेरे साथ हंसी कर रहा था। तू इतना भी नहीं समझती? बस, आ इधर, नहीं आती, तो मैं आज तेरे घर आकर तेरी बहन से शिकायत करूंगा कि जिन्दां बहुत गुस्ताख हो गई है, कहा नहीं मानती।'…मगर मैंने उसे न जवाब दिया, न मुड़कर उसकी तरफ देखा। सीधी घर चली आई।"

"अच्छा किया। मैं मुए की हड्डी-पसली एक करवाकर छोड़ूंगी। तू आने दे सुच्चासिंह को। मैं अभी जाकर उससे बात करती। इसे यह नहीं पता कि जिन्दां सुच्चासिंह ड्राइवर की साली है, जरा सोच-समझकर हाथ लगाए।" फिर कुछ सोचकर उसने पूछा, "वहां तुझे और किसी ने तो नहीं देखा?"

"नहीं। किसों के इस तरफ आम के पेड़ के नीचे रामू चाचा बैठा था। उसने देखकर पूछा कि बेटी, इस वक्त धूप में कहां से आ रही है, तो मैंने कहा कि खेत

के पेट में दर्द था, हकीमजी से चूरन लाने गई थी।"

"अच्छा किया। मुआ जगी तो शोहदा है। उसके साथ अपना नाम जुड़ जाए, तो अपनी ही इज्जत जाएगी। उस सिर-जले का क्या जाना है? लोगों को तो करने के लिए बात चाहिए।"

उसके बाद उपले लाकर खाना बनाने में उसे काफी देर हो गई। जिस वक्त उसने कटोरे में आलू की तरकारी और आम का अचार रखकर उसे रोटियों के साथ खद्दर के टुकड़े में लपेटा, उसे पता था कि दो कब के बज चुके हैं और वह दोपहर की रोटी सुच्चासिंह को नहीं पहुंचा सकती। इसलिए वह रोटी रखकर इधर-उधर के काम करने लगी। मगर जब बिलकुल खाली हो गई, तो उससे यह नहीं हुआ कि बस के अन्दाज़े से घर से चले। मुश्किल से साढ़े तीन-चार ही बजे थे कि वह चलने के लिए तैयार हो गई।

"बहन, तू कब तक आएगी?" जिन्दां ने पूछा।

"दिन ढलने से पहले ही आ जाऊंगी।"

"जल्दी आ जाना। मुझे अकेले डर लगेगा।"

"डरने की क्या बात है?" वह दिखावटी साहस के साथ बोली, "किसकी हिम्मत है जो तेरी तरफ आंख उठाकर भी देख सके? सुच्चासिंह को पता लगेगा, तो वह उसे कच्चा ही नहीं चबा जाएगा? वैसे मुझे ज्यादा देर नहीं लगेगी। सांझ से पहले ही घर पहुंच जाऊंगी। तू ऐसा करना कि अन्दर से साकल लगा लेना। समझी? कोई दरवाजा खटखटाए तो पहले नाम पूछ लेना।" फिर उसने जरा धीमे स्वर में कहा, "और अगर जगी आ जाए, और मेरे लिए पूछे कि कहां गई है, तो कहना कि सुच्चासिंह को बुलाने गई है। समझी?" "पर नहीं। तू उससे कुछ नहीं कहना। अंदर से जवाब ही नहीं देना। समझी?"

वह दहलीज़ के पास पहुंची तो जिंदा ने पीछे से कहा, "बहन, मेरा दिल धड़क रहा है।"

"तू पागल हुई है?" उसने उसे प्यार के साथ झिड़क दिया, "साथ गांव है, फिर डर किस बात का है? और तू अब भी मुटियार है, इस तरह घबराती क्यों है?"

मगर जिन्दा को दिलासा देकर भी उसकी अपनी तसल्ली नहीं हुई। सड़क

पी ले। आज तू बहुत सोहणी लग रही है···।"

"मुआ कमजात !" वह सहसा उबल पड़ी। "मुए को अपनी माँ राँड नहीं सोहणी लगती ? मुए की नजर में कीड़े पड़ें। निपूते, तेरे घर में लड़की होती, तो इससे बड़ी होती, तेरे दीदे फटें ! ···फिर तूने क्या कहा ?"

"मैंने कहा चाचा, मुझे प्यास नहीं है," जिंदां कुछ संभलने लगी।

"फिर ?"

"कहने लगा प्यास नहीं है, तो भी एक घूंट पी लेना। चाचा का शरबत पिएगी तो याद करेगी।···और मेरी बांह पकड़कर खींचने लगा।"

"हाय रे मौत-मरे, तेरा कुछ न रहे, तेरे घर में आग लगे। आने दे मुख्तारसिंह को। मैं तेरी बोटी-बोटी न नुचवाऊं तो कहना, जल-मरे ! तू सोया ही रह जाए।···हां, फिर ?"

"मैं बांह छुड़ाने लगी, तो मुझे मिठाई का लालच देने लगा। मेरे हाथ से उपले वहीं गिर गए। मैंने उन्हें वैसे ही पड़े रहने दिया और बांह छुड़ाकर भाग आई।"

उसने ध्यान से जिंदां को सिर से पैर तक देखा और फिर अपने साथ सटा लिया।

"और तो नहीं कुछ कहा उसने ?"

"जब मैं थोड़ी दूर निकल आई, तो पीछे से ही-ही करके बोला, 'मेरी बुरा तो नहीं मान गई ? अपने उपले तो उठाकर ले जा। मैं तो तेरे साथ हँसी कर रहा था। तू इतना भी नहीं समझती ? चल, आ इधर, नहीं मानी, तो मैं आज तेरे घर आकर तेरी बहन से शिकायत करूंगा कि जिंदां बहुत [illegible] गई है, कहा नहीं मानती।'···मगर मैंने उसे न जवाब दिया, [illegible] तरफ देखा। सीधी घर चली आई।"

"अच्छा किया। मैं मुए की हड्डी-पसली एक [illegible] दे मुख्तारसिंह को। मैं अभी जाकर उससे बात [illegible] जिन्दां मुख्तारसिंह ड्राइवर की साली है, [illegible] फिर कुछ सोचकर उसने पूछा, "वहां [illegible]

"नहीं। खेतों के इस तरफ [illegible] देखकर पूछा कि बेटी, इस [illegible]

एक बस धूल उड़ाती आकाश के उस छोर से इस तरफ को आ रही थी। बालो ने दूर से ही पहचान लिया कि वह सुच्चासिंह की बस नहीं है। फिर भी बस जब तक पास नहीं आ गई, वह उत्सुक आंखों से उस तरफ देखती रही। बस प्याऊ के सामने आकर रुकी। एक आदमी प्याज और शलगम का गट्ठर लिए बस से उतरा। फिर कण्डक्टर ने ज़ोर से दरवाज़ा बंद किया और बस आगे चल दी। जो आदमी बस से उतरा था, उसने प्याऊ के पास जाकर प्याऊ वाले को *जगाया और चुल्लू से दो लोटे पानी पीकर मूंछें साफ करता हुआ* अपने गट्ठर के पास लौट आया।

"वीरा, नकोदर से अगली बस कितनी देर में आएगी?" बालो ने दो कदम आगे जाकर उस आदमी से पूछ लिया।

"घंटे-घंटे के बाद बस चलती है माई," वह बोला। "तुझे कहां जाना है?"

"जाना नहीं है वीरा, बस का इंतज़ार करना है। सुच्चासिंह ड्राइवर मेरा घरवाला है। उसे रोटी देनी है।"

"ओ सुच्चा स्यो!" और उस आदमी के होंठों पर खास तरह की मुसकराहट आ गई।

"तू उसे जानता है?"

"उसे नकोदर में कौन नहीं जानता?"

बालो को उसका कहने का ढंग अच्छा नहीं लगा, इसलिए वह चुप हो रही। सुच्चासिंह के बारे में जो बातें वह खुद जानती थी, उन्हें दूसरों के मुंह से सुनना उसे पसन्द नहीं था। उसे समझ नहीं आता था कि दूसरों को क्या हक है कि वे उसके आदमी के बारे में इस तरह बात करें?

"सुच्चासिंह शायद अगली बस लेकर आएगा," वह आदमी बोला।

"हां! इसके बाद अब उसीकी बस आएगी।"

"बड़ा ज़ालिम है जो तुझसे इस तरह इंतज़ार कराता है।"

"चल वीरा, अपने रास्ते चल!" बालो चिढ़कर बोली, "वह क्यों इन्तज़ार कराएगा? मुझे ही रोटी लाने में देर हो गई थी जिससे उसकी बस निकल गई। वह बेचारा सवेरे से भूखा बैठा होगा।"

"भूखा? कौन सुच्चा स्यो?" और वह व्यक्ति दांत निकालकर हंस दिया। बालो ने मुंह दूसरी तरफ कर लिया। "जा साईं सच्चे!" कहकर उस आदमी

के किनारे पहुंचने के वक्त से ही वह चाह रही थी कि किसी त
आ जाए जिससे वह रोटी देकर झटपट जिंदा के पास वापस पहुंच

"वीरा, दो बजे वाली बस को गए कितनी देर हुई है?"
से पूछा जिसकी आंखें अब भी उसके हाथ की रोटी पर लगी
चुभन अभी कम नहीं हुई थी, हालांकि खोखे की छाया अब पहले से
हो गई थी। कुत्ता प्याऊ के तख्ते के नीचे पानी को मुंह लगाकर
चक्कर काट रहा था।

"पता नहीं भैणा," भिखमंगे ने कहा, "कई बसें आती हैं। क
यहां कौन घड़ी का हिसाब है!"

वालो चुप हो रही। एक बस अभी थोड़ी ही देर पहले नकोदर
गई थी। उसे लग रहा था धूल के फैलाव के दोनों तरफ दो अ
दुनियाएं हैं। बसें एक दुनिया से आती हैं और दूसरी दुनिया की त
जाती है। कैसी होंगी वे दुनियाएं जहां बड़े-बड़े बाज़ार हैं, दुकानें हैं, अ
एक ड्राइवर की आमदनी का तीन-चौथाई हिस्सा हर महीने खर्च हो जात
देवी अक्सर कहा करता था कि सुच्चासिंह ने नकोदर में एक रखेल रख र
उसका कितना मन होता था कि वह एक बार उस औरत को देखे। उस
बार सुच्चासिंह से कहा भी था कि उसे वह नकोदर दिखा दे, पर सुच्चासि
डाटकर जवाब दिया था, "क्यों, तेरे पर निकल रहे हैं? घर में चैन
पड़ता? सुच्चासिंह वह मरद नहीं है कि औरत की बांह पकड़कर उसे स
पर घुमाता फिरे। घूमने का ऐसा ही शौक है, तो दूसरा खसम कर ले।
तरफ से तुझे खुली छुट्टी है।"

उस दिन के बाद वह यह बात जबान पर भी नहीं लाई थी। सुच्चासि
कैसा भी हो, उसके लिए सब कुछ वही था। वह उसे गालियां दे लेता था, मार
पीट लेता था, फिर भी उससे इतना प्यार तो करता था कि हर महीने तनखाह
मिलने पर उसे बीस रुपये दे जाता था। लाख बुरी कहकर भी वह उसे अपनी
घरवाली तो समझता था! जबान का कड़वा भले ही हो, पर सुच्चासिंह दिल
का बुरा हरगिज नहीं था। वह उसके जिंदा को घर में रख लेने पर अक्सर बुरा
करता था, मगर पिछले महीने खुद ही जिंदा के लिए कांच की चूड़ियां और
अढ़ाई गज मलमल लाकर दे गया था।

एक बस धूल उडाती आकाश के उस छोर से इस तरफ को आ रही थी। बालो ने दूर से ही पहचान लिया कि वह सुच्चासिंह की बस नही है। फिर भी बस जब तक पास नही आ गई, वह उत्सुक आंखों से उस तरफ देखती रही। बस प्याऊ के सामने आकर रुकी। एक आदमी प्याज और शलगम का गट्ठर लिए बस से उतरा। फिर कण्डक्टर ने ज़ोर से दरवाजा बंद किया और बस आगे चल दी। जो आदमी बस से उतरा था, उसने प्याऊ के पास जाकर प्याऊ वाले को जगाया और चुल्लू से दो लोटे पानी पीकर मूछें साफ करता हुआ अपने गट्ठर के पास लौट आया।

"बीरा, नकोदर से अगली बस कितनी देर मे आएगी ?" बालो ने दो कदम आगे जाकर उस आदमी से पूछ लिया।

"घंटे-घंटे के बाद बस चलती है माई," वह बोला। "तुझे कहा जाना है ?"

"जाना नही है बीरा, बस का इंतज़ार करना है। सुच्चासिंह ड्राइवर मेरा घरवाला है। उसे रोटी देनी है।"

"ओ सुच्चा स्यो !" और उस आदमी के होठो पर खास तरह की मुसकराहट आ गई।

"तू उसे जानता है ?"

"उसे नकोदर मे कौन नही जानता ?"

बालो को उसका कहने का ढंग अच्छा नही लगा, इसलिए वह चुप हो रही। सुच्चासिंह के बारे मे जो बातें वह खुद जानती थी, उन्हें दूसरों के मुह से सुनना उसे पसन्द नहीं था। उसे समझ नही आता था कि दूसरों को क्या हक है कि वे उसके आदमी के बारे में इस तरह बात करें ?

"सुच्चासिंह शायद अगली बस लेकर आएगा," वह आदमी बोला।

"हा ! इसके बाद अब उसीकी बस आएगी।"

"बड़ा जालिम है जो तुझसे इस तरह इंतज़ार कराता है।"

"चल बीरा, अपने रास्ते चल !" बालो चिढ़कर बोली, "वह क्यों इतज़ार कराएगा ? मुझे ही रोटी लाने मे देर हो गई थी जिससे उसकी बस निकल गई। वह बेचारा सवेरे से भूखा बैठा होगा।"

"भूखा ? कौन सुच्चा स्यो ?" और वह व्यक्ति दात निकालकर हस दिया। बालो ने मुह दूसरी तरफ कर लिया। "या साईं सच्चे !" कहकर उस आदमी

ने अपना गट्ठर सिर पर उठा लिया और खेतों की पग
वालों की दाईं टांग सो गई थी। उसने भार दूसरी टांग
लम्बी सांस ली और दूर तक के वीराने को देखने लगी।

न जाने कितनी देर बाद आकाश के उसी कोने से उ
तरफ आती नजर आई। तब तक खड़े-खड़े उसके पैरों की
थी। बस को देखकर वह पोटली का कपड़ा ठीक करने लगी
रहा था कि वह रोटियां कुछ और देर से बनाकर क्यों ना
रात तक कुछ और ताजा रहतीं। सुच्चासिंह को कड़ाह
शौक है—उसे क्यों यह ध्यान नहीं आया कि आज थोड़
बनाकर ले आए ?...खैर, कल गुर परब है, कल जरूर क
लाएगी।...

पीछे गर्द की लम्बी लकीर छोड़ती हुई बस पास आती उ
ने बीस गज दूर से ही सुच्चासिंह का चेहरा देखकर समझ लि
बहुत नाराज है। उसे देखकर सुच्चासिंह की भवें तन गई
होंठ का कोना दांतों में चला गया था। बालो ने धड़कते दि
हाथ ऊपर उठा दिया। मगर बस उसके पास न रुककर पा
जाकर रुकी।

दो-एक लोग वहां बस से उतरने वाले थे। कण्डक्टर बस क
एक आदमी की साइकिल नीचे उतारने लगा। बालो तेजी से
की सीट के बराबर पहुंच गई।

"सुच्चा स्यां!" उसने हाथ ऊंचा उठाकर रोटी अन्दर प
करते हुए कहा, "रोटी ले लें।"

"हट जा," सुच्चासिंह ने उसका हाथ झटककर पीछे हटा दि
"सुच्चा स्या, एक मिनट नीचे उतरकर मेरी बात सुन ले।
वजह हो गई थी, नहीं तो मैं...।"

"बक नहीं, हट जा यहां से," कहकर सुच्चासिंह ने कण्डक
वहां का सारा सामान उतर गया है या नहीं।

"बस एक पेटी बाकी है, उतार रहा हूं," कण्डक्टर ने छत से

कहा, "तू नीचे उतरकर मेरी बात तो सुन ले।"

"उतर गई पेटी ?" सुच्चासिंह ने फिर कण्डक्टर से पूछा।

"हां, चलो," पीछे से कण्डक्टर की आवाज़ आई।

"सुच्चा स्या ! तू मुझपर नाराज़ हो ले, पर रोटी तो रख ले। तू मंगलवार को घर आएगा तो मैं तुझे सारी बात बताऊंगी।" बालो ने हाथ और ऊंचा उठा दिया।

"मंगलवार को घर आएगा तेरा···," और एक मोटी-सी गाली देकर सुच्चासिंह ने बस स्टार्ट कर दी।

दिन ढलने के साथ-साथ आकाश का रंग बदलने लगा था। बीच-बीच में कोई एकाध पक्षी उड़ता हुआ आकाश को पार कर जाता था। खेतों में कहीं-कहीं रंगीन पगड़ियां दिखाई देने लगी थीं। बालो ने प्याऊ से पानी पिया और आंखों पर छींटे मारकर आंचल से मुंह पोंछ लिया। फिर प्याऊ से कुछ फासले पर जाकर खड़ी हो गई। वह जानती थी, अब सुच्चासिंह की बस जालंधर से आठ-नौ बजे तक वापस आएगी। क्या तब तक उसे इंतज़ार करना चाहिए ? सुच्चासिंह को इतना तो करना चाहिए था कि उतरकर उसकी बात सुन लेता। उधर घर में जिंदा अकेली डर रही होगी। मुआ जंगी पीछे किसी बहाने से आ गया तो? सुच्चासिंह रोटी ले लेता, तो वह आधे घण्टे में घर पहुंच जाती। अब रोटी तो वह बाहर कहीं न कहीं खा ही लेगा, मगर उसके गुस्से का क्या होगा ? सुच्चासिंह का गुस्सा बेजा भी तो नहीं है। उसका मेहनती शरीर है और उसे कसकर भूख लगती है। वह थोड़ी और मिन्नत करती, तो वह ज़रूर मान जाता। पर अब ?

प्याऊ वाला प्याऊ बंद कर रहा था। भिखमंगा भी न जाने कब का उठकर चला गया था। हां, कुत्ता अब भी वहां आसपास घूम रहा था। धूप ढल रही थी और आकाश में उड़ते चिड़ियों के झुण्ड सुनहरे लग रहे थे। बालो को सड़क के पार तक फैली अपनी छाया बहुत अजीब लग रही थी। पास के किसी खेत में कोई गभरू जवान खुले गले से माहिया गा रहा था.

"बोलण दी थां कोई नां।
जिहड़ा सानूं ला वे दित्ता,
उस रोग दा नां कोई नां।"

माहिया की वह लय पारो की रग-रग में बसी हुई थी। बचपन में गर्मियों की शाम को वह और बच्चों के साथ मिलकर रहट के पानी की धार के नीचे नाच-नाचकर नहाया करती थी, तब भी माहिया की लय इसी तरह हवा में समाई रहती थी। साँझ के झुटपुटे के साथ उस लय का एक नाता ही बन गया था। फिर ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती गई, जिन्दगी के साथ उस लय का सम्बन्ध और गहरा होता गया। उसके गाँव का युवक था लाली जो बड़ी लोच के साथ माहिया गाया करता था। उसने कितनी बार उसे गाँव के बाहर पीपल के नीचे कान पर हाथ रखकर गाते सुना था। पुष्पा और पारो के साथ वह देर-देर तक उस पीपल के पास खड़ी रहती थी। फिर एक दिन आया जब उसकी माँ कहने लगी कि वह अब बड़ी हो गई है, उसे इस तरह देर-देर तक पीपल के पास नहीं खड़ी रहना चाहिए। उन्हीं दिनों उसकी सगाई की भी चर्चा होने लगी। जिस दिन सुच्चासिंह के साथ उसकी सगाई हुई, उस दिन पारो आधी रात तक ढोलक पर गीत गाती रही थी। गाते-गाते पारो का गला रह गया था फिर भी वह ढोलक छोड़ने के बाद उसे बाहों में लिए हुए गाती रही थी—

"कोठे, चंबा है खोहले खोहले किउँ खड़ी,
नी माये किउँ खड़ी ?
मैं तां खड़ी सां बाबल जी दे बार,
मैं कंनिया कंवार,
बाबल वर लोड़िए !
नी जाइए, किहो जिहा वर लोड़िए ?
जिउँ तारिआं विचों चन,
चनां विचों कन,
मंडी विचों कान्ह-कन्हैया वर लोड़िए...!"

वह नहीं जानती थी कि उसका वर कौन है, कैसा है, फिर भी उसका मन कहता था कि उसके वर की सूरत-शक्ल ठीक वैसी ही होगी जैसी कि गीत को सुनकर सामने आती है। सुहागरात को जब सुच्चासिंह ने उसके चेहरे पर से घूँघट हटाया, तो उसे देखकर लगा कि वह सचमुच बिल्कुल वैसा ही कान्ह [illegible] वर आ गया है। सुच्चासिंह ने उसकी ठोड़ी ऊपर की, तो [illegible] उसके सिर से [illegible] के बाजुओं में आ सकती। उसे लगा कि [illegible]

न जाने ऐसी कितनी सिहरनों से भरी होगी जिन्हें वह रोज़-रोज़ महसूस करेगी और अपनी याद में संजोकर रखती जाएगी।

"तू हीरे की कणी है, हीरे की कणी," सुच्चासिंह ने उसे बांहों में भरकर कहा था।

उसका मन हुआ था कि कहे, यह हीरे की कणी तेरे पैर की धूल के बराबर भी नहीं है, मगर वह शरमाकर चुप रह गई थी।

"माई, अंधेरा हो रहा है, अब घर जा। यहां खड़ी क्या कर रही है?" प्याऊ वाले ने चलते हुए उसके पास रुककर कहा।

"वीरा, यह बस आठ-नौ बजे तक जालंधर में लौटकर आ जाएगी न?" बालो ने दयनीय भाव से उससे पूछ लिया।

"क्या पता कब तक आए? तू उतनी देर यहां खड़ी रहेगी?"

"वीरा, उसकी रोटी जो देनी है।"

"उसे रोटी लेनी होती, तो ले न लेता? उसका तो दिमाग ही आसमान पर चढ़ा रहता है।"

"वीरा, मर्द कभी नाराज़ हो ही जाता है। इसमें ऐसी क्या बात है?"

"अच्छा खड़ी रह, तेरी मर्ज़ी। बस नौ से पहले क्या आएगी!"

"चल, जब भी आए।"

प्याऊ वाले से बात करके वह निश्चय खुद-ब-खुद हो गया जो वह अब तक नहीं कर पाई थी—कि उसे बस से जालंधर से लौटने तक वहां रुकी रहना है। जिंदां थोड़ा डरेगी—इतना ही तो न? जंगी की अब दोबारा उससे कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ सकती। आखिर गांव की पंचायत भी तो कोई चीज़ है। दूसरे की बहन-बेटी पर बुरी नज़र रखना मामूली बात है? सुच्चासिंह को पता चल जाए, तो वह उसे केशों से पकड़कर सारे गांव में नहीं घसीट देगा? मगर सुच्चासिंह को यह बात न बताना ही शायद बेहतर होगा। क्या पता इतनी-सी बात से दोनों में सिर-फुटव्वल हो जाए? सुच्चासिंह पहले ही घर के झंझटों से घबराता है, उसे और झंझट में डालना ठीक नहीं। अच्छा हुआ जो उस वक्त सुच्चासिंह ने बात नहीं सुनी। वह तो अभी कह रहा था कि मंगलवार को घर नहीं आएगा। अगर वह सचमुच न आया, तो? और अगर उसने गुस्से होकर घर आना बिलकुल छोड़ दिया, तो? नहीं, वह उसे कभी कोई परेशान करने वाली

बात नहीं बताएगी। सुच्चासिंह खुश रहे, घर की परेशा
सकती है।

वह ज़रा-सा सिहर गई। गांव का लोटूसिंह अपनी
गया था। उसके पीछे वह टुकड़े-टुकड़े को तरस गई थी।
छलांग लगाकर आत्महत्या कर ली थी। पानी से फूलक
भयानक हो गई थी?

उसे थकान महसूस हो रही थी, इसलिए वह जाकर प्याउ
गई। अंधेरा होने के साथ-साथ खेतों की हलचल फिर शांत
माहिया के गीत का स्थान अब झींगुरों के संगीत ने ले
जालंधर की तरफ से और एक नकोदर की तरफ से आकर नि
सिंह जालंधर से आखिरी बस लेकर आता था। उसने पिछली
पता कर लिया था कि अब जालंधर से एक ही बस आनी रहती है
की बत्तियां दिखाई देंगी, वह सुच्चासिंह की ही बस होगी। थकान
आंखें मुंदी जा रही थीं। वह बार-बार कोशिश से आंखें खोलकर
अंधेरे और उन काली छायाओं पर केन्द्रित करती जो धीरे-धीरे ग
रही थी। ज़रा-सी भी आवाज़ होती, तो उसे लगता कि बस आ रह
सतर्क हो जाती। मगर बत्तियों की रोशनी न दिखाई देने से एक ठंडी
फिर से निढाल हो रहती। दो-एक बार मुंदी हुई आंखों से जैसे बस
अपनी ओर आती देखकर वह चौंक गई—मगर बस नहीं आ रही
उसे लगने लगा कि वह घर में है और कोई ज़ोर-ज़ोर से घर के किवा
रहा है। जिंदा अंदर सहमकर बैठी है। उसका चेहरा हल्दी की तरह
रहा है।... रहट के बैल लगातार घूम रहे हैं। उनकी घंटियों की ताल
पीपल के नीचे बैठा एक युवक कान पर हाथ रखे माहिया गा रहा है।
की धुन उड़ रही है जो धरती और आकाश की हर चीज़ को ढंक से
वह अपनी गोटेवाली पोटली को संभालने की कोशिश कर रही है, म
उसके हाथ से निकलती जा रही है।...प्याऊ पर घुंघे मटके रखे हैं जिनम
बूंद भी पानी नहीं है। वह बार-बार मोटा मटके में झांकती
पाकर निराश हो जाती है।

है।···जिंदां अपने खुले बाल घुटनों पर डाले रो रही है। कह रही है, "तू मुझे छोड़कर क्यों गई थी ? क्यों गई थी मुझे छोड़कर ? हाय, मेरा परांदा कहां गया ? मेरा परांदा किसने ले लिया ?"

सहसा कंधे पर हाथ के छूने से वह चौंक गई।

"सुच्चा स्यां !" उसने जल्दी से आंखों को मल लिया।

"तू अब तक घर नहीं गई ?" सुच्चासिंह तख्ते पर उसके पास ही बैठ गया। बस ठीक प्याऊ के सामने खड़ी थी। उस वक्त उसमें एक भी सवारी नहीं थी। कण्डक्टर पीछे की सीट पर ऊंघ रहा था।

"मैंने सोचा रोटी देकर ही जाऊंगी। बैठे-बैठे झपकी आ गई। तुझे आए बहुत देर तो नहीं हुई ?"

"नहीं, अभी बस खड़ी की है। मैंने तुझे दूर से ही देख लिया था। तू इतनी पागल है कि तब से अब तक रोटी देने के लिए यहीं बैठी है ?"

"क्या करती ? तू जो कह गया था कि मैं घर नहीं आऊंगा !" और उसने पलकें झपककर अपने उमड़ते आंसुओं को सुखा देने की चेष्टा की।

"अच्छा ला, दे रोटी, और घर जा ! जिंदां वहां अकेली डर रही होगी।" सुच्चासिंह ने उसकी बांह थपथपा दी और उठ खड़ा हुआ।

रोटीवाला कटोरा उससे लेकर सुच्चासिंह उसकी पीठ पर हाथ रखे हुए उसे बस के पास तक ले आया। फिर वह उचककर अपनी सीट पर बैठ गया। बस स्टार्ट करने लगा, तो वह जैसे डरते-डरते बोली, "सुच्चा स्यां, तू मंगल को घर आएगा न ?"

"हां, आऊंगा। तुझे बाहर से कुछ मंगवाना हो, तो बता दे।"

"नहीं, मुझे मंगवाना कुछ नहीं है।"

बस घरघराने लगी, तो वह दो कदम पीछे हट गई। सुच्चासिंह ने अपनी दाढ़ी-मूछ पर हाथ फेरा, एक डकार लिया और उसकी तरफ देखकर पूछ लिया, "तू उस वक्त क्या बात बताना चाहती थी ?"

"नहीं, ऐसी कोई खास बात नहीं थी। मंगल को घर आएगा ही···"

"अच्छा, अब जल्दी से चली जा, देर न कर। एक मील बाट है···!"

"...अच्छा म्याँ, कल गुर परब है। कल मैं तेरे लिए कड़ाह प्रसाद बनाकर लाऊँगी...।"

"अच्छा, अच्छा..."

बस चल दी। बाकी पहियों की धूल में घिर गई। धूल साफ होने पर उसने ल्ले से आँखें पोंछ लीं और तब तक बस के पीछे की लाल बत्ती को देखती रही ब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गई।

बस-स्टैण्ड की एक रात

…लैम्प-पोस्ट के गिर्द कितने ही चक्कर काट लिए मगर रात नहीं कटी। बीस फुट की ऊंचाई पर टंगे लैम्प की मद्धिम रोशनी कभी ग्रांखों में हल्की नींद भर देती है, फिर सहसा चौंकाकर नींद भगा देती है। ग्रड्डा बिलकुल सुनसान है। एक कोने में दो छोटी-छोटी छकड़ानुमा बसें खड़ी हैं। शायद इन्हीं पुरानी मनहूस ग्रौर बेडौल बसों में से एक सुबह पांच बजे की सर्विस बनकर रवाना होगी।

एक, दो, तीन, चार…सर्दी की रात में जागकर समय काटने का एक ही रास्ता है कि कदम गिने जाएं। दस, ग्यारह, बारह…बयालीस, तैंतालीस, चवालीस…छप्पन, सत्तावन, ग्रट्ठावन…परन्तु सख्या सौ तक नहीं पहुंचती। हर बार बीच में ही खो जाती है। फिर नये सिरे से नये विश्वास के साथ गिनती ग्रारम्भ होती है…एक-दो, तीन-चार, पाच-छः, सात-ग्राठ…।

बायीं तरफ टूटा-फूटा बरामदा है। बरामदे के पीछे लम्बा-सा ग्रंधेरा कमरा है। बरामदे की बेंच पर कोई लिहाफ के नीचे करवट बदलता है। कमरे में कोई कुनमुनाता है—जैसे गहरी यातना में कराह रहा हो। देखने पर वहां ग्रंधेरा ही ग्रंधेरा नजर ग्राता है। लगता है वह ग्रंधेरा बाहर के ग्रंधेरे से कहीं गहरा ग्रौर गर्म है। जैसे सारे कमरे में कोमल काले रोयें भरे हों।

लैम्प-पोस्ट के पास ग्राकर सर्दी कम नहीं होती। हां, ग्रकेलापन जरूर कुछ

कम होता है। टहलते हुए फुटपाथ की तरफ चले जाओ, तो दूर तक लम्बी सड़क नज़र आती है। लैम्प-पोस्ट के पास आकर लगता है कि दुनिया वीरान नहीं है। मैं लैम्प-पोस्ट से टेक लगा लेता हूं। जैसे लैम्प-पोस्ट लैम्प न होकर एक इन्सान हो, और मैं उससे टेक लगाकर उसे अपनी आत्मीय विश्वास दिलाना चाहता होऊं। मगर शरीर में ठण्डे लोहे की सनाक-सी गड़ है और मैं उससे हटकर टहलने लगता हूं।

एक, दो, तीन, चार···।

पर गिनती सौ तक नहीं पहुंचती। हाथों पर मास्टर हरबंसलाल के डंडे मार ताज़ा हो आती है।

"सत्तर नौ?"

"उनहत्तर।"

"स्टैण्ड अप···अस्सी नौ?"

"उनासी।"

"अस्सी नौ उनासी? हाथ सीधे कर।···अस्सी नौ?"

"उना-आ···।"

दो डंडे दायें हाथ पर, दो बायें हाथ पर।

"अब अस्सी नौ?"

अब अस्सी नौ—सिसकियां और आंसू।

"कह, अस्सी नौ नवासी।"

"अ-अ-अ···।"

"बोल दस बार, अस्सी नौ नवासी, अस्सी नौ नवासी।"

"अ-अ-अ···।"

"बोऽऽल।"

"अ-अ-अ···अं-अ···आं-आं-आं-आं···।"

कमरे में किसीने सिगरेट सुलगा लिया है। हर कश के साथ अंधेरा कम होता है। कमरे में भी लिहाफों और कम्बलों में लिपटी कई आकृतियां पड़ी हैं जो एक क्षण दिखाई देती हैं और दूसरे क्षण अदृश्य हो जाती है। पता नहीं कि रात कितनी है। शायद एक बजा है और मुझे अभी चार घण्टे इसी तरह टहलना है।

· ।२ बज चुके हैं और अब थोड़ी ही देर में उन दो मनहूस बसों में से

एक खड़खड़ाती हुई पठानकोट-डलहौज़ी रोड पर चल देगी। छः-आठ मील जाकर सूर्य निकलेगा और दोनों ओर वृक्ष-पंक्तियां दिखाई देंगी। कुछ ही देर में दुनेरा पहुंचकर सिब्बू हलवाई की दुकान से गर्म-गर्म चाय पिएंगे।

सर्दी, रात और चाय।

'चाय गर्म है। धुआं उठ रहा है। हल्का-हल्का और लच्छेदार। मेरी प्याली पर नटराज नाच रहा है…।"

हिश्त्!

सिगरेट बुझ गया है मगर कमरे का अंधेरा अब उतना गाढ़ा नहीं है। कोई लगातार खांस रहा है। मन होता है कि वह व्यक्ति लगातार खांसता रहे जिसमें जल्दी से सुबह हो जाए। वह खांसना बन्द कर देगा तो सुबह दूर चली जाएगी। मुझे खामोशी अच्छी नहीं लगती और न मुझसे कदम गिने जाते हैं, न ही लैम्प-पोस्ट का मुंह देखा जाता है। लगता है सर्दी पहले से बढ़ गई है। मैं लैम्प-पोस्ट से हटकर टहलता हूं। जैसे लैम्प-पोस्ट से लड़ाई हो। मैंने अब तक कितना चल लिया है? शायद कई मील। कितने कदम का एक मील होता है? मास्टर हरवंसलाल फिर डंडा लेकर सामने हैं।

"इकतीस हजार…।"

"इकतीस हजार…।"

"छः सौ…।"

"छः सौ।"

"अस्सी फुट के…।"

"अस्सी फुट के…।"

"मील बनाओ।"

हम जैसे अथाह समुद्र में फेंक दिए गए हों। सवाल निकलने लगता है। स्लेट पर मास्टर हरवंसलाल का गंजा सिर और छोटी-छोटी आंखें बन जाती हैं। एक तरफ इकतीस हजार, दूसरी तरफ छः सौ और तीसरी तरफ अस्सी…।

सिर पर एक चपत पड़ती है।

"यह फुटों के मील बना रहा है? स्टैण्ड अप!"

खड़े हो जाते हैं। सिर झुका है।

"यह क्या बन रहा है?"

सिर झुका रहता है। मन में गुदगुदी उठती है। पर चेहरे पर गाम्भीर्य
मौन है।

"चल वहां कोने में मुर्गा बन।"

चुपचाप कोने में जाकर मुर्गा बन जाते हैं। मालूम होती है कि पीछे से हंसी भी पहुंचे। मगर शायद स्लेट पर बनी आकृति मास्टर हरबंसलाल से पहचानी नहीं जाती। दो बार कान छोड़कर और सिर उठाकर देखते हैं। मास्टर हरबंसलाल के जूते चिर-चिर करते दूर चले जाते हैं। मुर्गा अपनी बोली बोल देता है।

एक कदम अगर डेढ़ फुट का हो, तो मील में कितने कदम हुए? सत्रह सौ साठ जरब तीन तकसीम···। इस समुद्र में गोता लगाने से अच्छा है कदम गिने जाएं। सिगनल-पोस्ट से चढ़ाई है। कदम स्टेशन रोड पर बढ़ने लगते हैं। एक, दो, तीन, चार। स्टेशन पर शायद चाय भी मिल जाए। सर्दी की रात में चाय की एक गर्म प्याली से अच्छी कोई चीज़ नहीं। मतलब इस हाल में···।

स्टेशन अन्दर और बाहर से सुनसान है।

हाथ मलते हुए—शाब्दिक अर्थ में—वापस लौटते हैं।

दोनों तरफ छः-छः, आठ-आठ बसें पंक्तियों में खड़ी हैं। एक तरफ कश्मीर गवर्नमेंट ट्रांसपोर्ट और एन॰डी॰ राधाकिशन की बसें हैं, दूसरी तरफ कुल्लू वैली ट्रांसपोर्ट और हिमाचल राज्य परिवहन की। उन पंक्तियों के बीच अनायास टांगें तन जाती हैं···लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···र
लेफ्ट···लेफ्ट।

हज़ारीलाल ड्रिल मास्टर भौंहें चढ़ा रहा है।

"लाइन में चलो।"

लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···।

"आगे के लड़के की गरदन देखो।"

लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···।

आगे के लड़के की गरदन पर मैल जमी है।

"मास्टरजी, यह नहाकर नहीं आया।"

"डोंट टॉक!"

लेफ्ट-राइट···लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···।

"मास्टरजी, यह पीछे से किक मारता है।"

"शट अप !"

लेफ्ट···लेफ्ट···लेफ्ट···।

दूर से अड्डे पर आग दिखाई देती है। अड्डे पर आग कहां से आ गई ? धुए से घिरी एक लपट उठ रही है। अभी वह लपट छोटी है। धीरे-धीरे फैलकर बड़ी हो जाएगी। फिर वह आसपास की हर चीज़ को घेर लेगी। दोनों छकड़ा-नुमा बसें जलकर राख हो जाएंगी। कमरे में बन्द अंधेरे के कोमल रोयें जल उठेंगे।

मगर लपट छोटी हो जाती है। अड्डे पर एक अंगीठी जल रही है और धुआं छोड़ रही है। आसपास चार-छः आकृतियां जमा हैं। कांपते प्रकाश में चेहरों की केवल रेखाएं ही दिखाई देती हैं। एक स्त्री का ढीला-ढाला शरीर सरककर आग के बहुत निकट आ जाता है।

"चौधराइन, आज कुछ कमाई हुई ?"

चौधराइन मुंह बिचका देती है।

"नूरजहां बेगम आजकल बात नहीं करती !"

नूरजहां बेगम कुछ न कहकर पिंडली खुजलाने लगती है।

"चाय पिएगी ?"

नूरजहां बेगम फिर मुंह बिचका देती है।

"नूरजहां बेगम, उदास क्यों है ? इसलिए कि तेरा बाप कोढ़ी मर गया है?"

नूरजहां बेगम चुपचाप आग तापती रहती है।

"आज सर्दी बहुत है।"

"नूरजहां बेगम को दुअन्नी दे और साथ ले जा।"

"क्यों नूरजहां ?"

नूरजहां कुछ नहीं कहती।

"आज चौधराइन मस्ती में है।"

"अरे तुम चौधराइन को क्या समझते हो ? किसी खानदान में पैदा होती, तो स्टेज में डान्स किया करती।"

"हा-हा-हा !"

"चौधराइन डान्स करेगी ?"

"हो हो-हो !"

कम्बलो में लिपटे दोनों बाबू अंगीठी पर अधिकार जमा लेते है। शेष आकृतियां हटने लगती हैं। चौधराइन सरककर लैम्प-पोस्ट के नीचे चली जाती है। एक आदमी सीटी बजाता हुआ बस के मड-गार्ड पर जा बैठता है। केवल एक बुड्ढा कुली आग के पास रह जाता है। वह अंगीठी से इस तरह सटकर बैठा है जैसे अपने हाथों की झुलसी चमड़ी को जला लेना चाहता हो। कमरे से दो-तीन व्यक्ति और निकल आते हैं।

"आ जाओ वसन्तराम जी, यहा आग के पास आ जाओ।"

दोनों-तीनों वसन्तराम आग के पास पहुंच जाते है। मैं कदमों की गिनती भूल चुका हू। लैम्प-पोस्ट ने चौधराइन से दोस्ती कर ली। वह उससे टेक लगाकर पिंडली खुजला रही है। बस के मड-गार्ड पर बैठा व्यक्ति ऊंची आवाज में अपने दिल के हजार टुकड़ो की गाथा सुना रहा है। मैं टहलता हुआ अंगीठी के पास पहुंच जाता हूं। इस बार अच्छे लडके को डाट नही पडती क्योकि अंगीठी के पास सब वसन्तराम खड़े है।

"बहुत सर्दी है," एक कांपकर कहता है।

"बड़ी जबर-जुलम सर्दी है जी," बुड्ढा कुली आखें उठाकर सबकी तरफ देखता है। उसकी आखें इस बात पर उनसे दोस्ती करना चाहती है कि उन सबको बराबर की जबर-जुलम सर्दी लग रही है। मगर उनमे से कोई मास्टर हरबंसलाल बोल उठता है, "अरे जबर-जुलम क्या होता है ? बोलना हो तो ठीक लफ्ज़ बोल—जाबिर और ज़ालिम।"

बुड्ढा कुली हक्का-बक्का उसकी तरफ देखता रहता है।

जाबिर और ज़ालिम !

ज़ेर और ज़बर !

"मास्टरजी, जेर कहा लगती है ?"

एक डडा टखनों पर।

"यहा···और जबर यहा।"

और एक डंडा गरदन पर।

ज़ेर टखनो पर। ज़बर गरदन पर।

कमरे से दो-तीन वसन्तराम और निकल आते हैं। आग के गिर्द खासा जमघट हो गया है। बुड्ढे कुली की आंखें बीच-बीच मे ऊपर उठती है, जैसे

एवरेस्ट की चोटी तक पहुंचना चाहती हों मगर रास्ते में ही सिमट जाती हों। वह मांगता है और अपने में सिकुड़ जाता है। उसके हाथ अंगीठी के कोयलों को ढक लेना चाहते हैं। अंगीठी बीच-बीच में चिनगारियां छोड़ देती है। कुछ कोयले अभी जले नहीं हैं। बुड्ढा कुली गर्म हाथ मुंह पर फेरता है।

"बाबा, सारी आग तो तूने रोक रखी है।"

"अब उठ जा, दूसरों को भी सेंकने दे।"

बाबा मांगता है, याचना की दृष्टि से सबकी तरफ देखता है और थोड़ा सरक जाता है।

"बुड्ढे को जान बहुत प्यारी है।"

बुड्ढा आंखों से इसका अनुमोदन करना चाहता है, पर तब तक उसके और अंगीठी के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। वह एक दार्शनिकता की सांस छोड़कर उठ खड़ा होता है। उठकर हाथ बगलों में दबा लेता है, जैसे अपने आस-पास की गर्मी को समेटकर साथ ले जाना चाहता हो।

अंगीठी चिनगारियां छोड़ रही है।

"क्यों भाई साहब, क्या खयाल है, गोआ हिन्दुस्तान को मिल जाएगा या नहीं?"

"गोआ हिन्दुस्तान का है साहब, और हिन्दुस्तान का ही रहेगा।"

"कहते हैं गोआ बहुत खूबसूरत जगह है?"

"जी हां, गोआ का लैंडस्केप—क्या कहने हैं!"

"यहां से गोआ किस रास्ते से जाते हैं?"

"यहां से गोआ जाना हो तो पहले पूना, पूना से लोंडा, फिर वहां से गाड़ी में मार्मुगाव···मार्मुगाव नेचुरल हार्बर है। बहुत खूबसूरत जगह है।"

"आप गोआ गए हैं?"

"जी हां, मैं एक बार गोआ हो आया हूं।"

"कहते हैं गोआ में सभी कुछ बहुत सस्ता है!"

"माफ कीजिए भाई साहब, लफ्ज़ गोआ नहीं गोआ है।"

"एक ही बात है जी, गोआ हुआ या गोआ हुआ।"

"यह साहब, हिन्दुस्तानी मेंटेलिटी है।"

"जैसे आप हिन्दुस्तानी नहीं हैं!"

कोयले सुलग गए हैं। गर्मी शरीर में रच रही है। अब दांतों की किटकिटी नहीं बजती। मड-गार्ड पर बैठा कुली अपने दिल के टुकड़े बिखेरकर खामोश हो गया है और इस तरह उकड़ूं बैठा है जैसे सिर से पैर तक शरीर के हर अंग को छाती में समेट लेना चाहता हो। बुड्ढा कुली खांसता हुआ फुटपाथ पर खड़ा है और इस तरह दाईं तरफ देख रहा है जैसे उधर से सुबह के आने का इन्तज़ार कर रहा हो। चौधराइन लैम्प-पोस्ट के पास अर्द्ध चन्द्राकार होकर लेट गई है और वह अर्द्धचन्द्र धीरे-धीरे छोटा होता जा रहा है।

अंगीठी के पास गोश्रा की समस्या को लेकर लड़ाई लड़ी जा रही है। एक भाई साहब चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर पुर्तगालियों को गोश्रा से निकाल देना चाहते हैं। दूसरे वाइन, विमिन एण्ड वाचिंग के बारे में सुनकर अन्तर्मुख हो गए हैं। मेरे शरीर में गर्म बुदकियां भर रही हैं। मैं लैम्प-पोस्ट की तरफ देखता हूं, जैसे कहना चाहता होऊं—क्यों बे?

"हीरे!" बरामदे की तरफ से आवाज़ आती है।

मड-गार्ड पर बैठा कुली चौंकता है और भागता हुआ बरामदे की तरफ चला जाता है। फिर वह नये सिरे से दिल के टुकड़े बिखेरता हुआ अंगीठी के पास आ जाता है।

"हट जाओ सा'ब।"

और इससे पहले कि साहब हटने की बात सोचें, वह दोनों कुंडों से अंगीठी को उठा लेता है।

"अबे कहां ले जा रहा है?"

"मैनेजर साहब के कमरे में।"

अंगीठी के प्रकाश में उसके चेहरे पर एक लम्बी मुसकराहट प्रकट होती है। वह इस तरह टांगें फैलाकर कंधे हिलाता हुआ जाता है जैसे किसी मोर्चे में उसे फतह का सेहरा हासिल हुआ हो।

गोश्रा की लड़ाई बीच में ही रह गई है। चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर पुर्तगालियों को निकालनेवाले भाई साहब अपना कम्बल अच्छी तरह लपेटकर कमरे की तरफ चले गए हैं। गवा और गोश्रा का भेद करनेवाले साहब शिकायत कर रहे हैं कि मैनेजर को अंगीठी अपने कमरे में मंगवाने का कोई अधिकार नहीं है।

मैं बगलों में हाथ दबाए टहलने लगता हूँ। आग के पास से हटकर सर्दी और भी ज़ाहिर और ज़ालिम प्रतीत होती है। सारे शरीर के रोंगटे खड़े हैं और बार-बार सिर से पैर तक एक सिहरन दौड़ जाती है। अंगीठी के पास जितने लोग खड़े थे, वे न जाने किन कोनों में जा समाए हैं! मैं फुटपाथ तक जाकर लौटता हूँ। शरीर फिर कांप जाता है। लैम्प-पोस्ट मुसकरा रहा है। वह एकटक देखता जाता है। जैसे अब वह कहना चाहता हो—क्यों बे?

मिट्टी के रंग

मैथिलोन ने अनन्नास का टुकड़ा जबान से छुआते ही मुंह बिचकाकर कहा, "किसी काम का नहीं। पैसा लेकर पैसे का मूल्य देना ये इजिप्शियन लोग जानते ही नहीं। सूप था तो वह गरम पानी। रोटी थी तो वह कचरे की। मास जाने कुत्ते का था या लोमड़ का। और अब आखिरी कोर्स में यह बुसा हुआ अनन्नास! धन्य रे पिरामिडों के देश!"

मैथिलोन का चेहरा देखकर सदानन्द मुस्कराया। उसे अनन्नास की बजाय उस समय अपनी पतलून की लकीर का अधिक ध्यान था। खाने की बात को महत्त्व देना उसे पसन्द नहीं था। उसका विचार था कि अच्छा-बुरा जो भी खा लो पेट में जाकर सब गल जाता है। पर पतलून की लकीर एक ऐसी चीज है जो दिखाई देती है, इसलिए जब तक शहर में रहो, वह ठीक रहनी चाहिए।

सदानन्द को मुस्कराते देख मैथिलोन की टेढ़ी भौंहें पिघलकर सीधी हो गईं और नासिकाओं पर कांपता क्रोध धुल गया। रूमाल से होंठ पोंछते हुए उसने मदिर भाव से पूछ लिया, "उसका नाम क्या है?"

"किसका नाम?"

"उसका, जिसकी याद में तुम मुस्करा रहे हो?"

सदानन्द और भी मुस्कराया। उसने पत्थर मारने की तरह हाथ हिलाकर कहा, "तू यहूदी!"

लगी थी। गोली एक फुट ऊंची आती तो उसकी छाती में लगती। उसका अर्थ होता मौत! मौत क्यों? जमीन जीतने के लिए। जमीन जो सारी ताजमहल और पिरामिड नहीं, मिट्टी है, मिट्टी जिसके नीचे हैं कीड़े, सांप, छछूदर। ऊपर हैं ठग, गुण्डे, वेश्याएं!

सदानन्द की आंखें मैथिलोन से मिलीं तो मैथिलोन के चेहरे की हल्की झुर्रियां खिलते मांस में विलीन हो रही थीं। मैथिलोन ने कुहनियां मेज पर टिकाकर पूछा, "अच्छा बता तो दो, उसका नाम क्या है?"

"किसका नाम?" सदानन्द ने बिना अपने विचारों से बाहर निकले कहा,

"उसका जिसकी याद में तुम रोने जा रहे हो।"

"मैं अपनी पत्नी की बात सोच रहा हूं।" सदानन्द ने भावुक होकर कहा। "यह छल्ला उसने मुझे आते समय दिया था।"

कहकर उसने छल्ले वाली उंगली मैथिलोन की ओर बढ़ा दी। मैथिलोन ने छल्ले को उसकी उंगली में घुमाया और उठते हुए कहा, "इज्जाएल!"

सड़क पर आकर वे दोनों देर तक चुपचाप चलते रहे। हवा की खुश्क वीरानगी इधर-उधर से धूल सहेज रही थी। मैथिलोन बड़े-बड़े संग्रहालयों की सजावट देखता चल रहा था, पर सदानन्द एक ऐसी अनुभूति में खो रहा था जो इन्सान के लिए वातावरण को रसहीन बना देती है और अन्दर से उसकी आत्मा, 'यहां नहीं वहां, यहां नहीं वहां' की धुन छेड़ देती है।

चौराहे के पास आकर मैथिलोन ने कहा, "आज की रात और कल की रात बीच में है। परसों हमारी टुकड़ी फ्रंट पर भेज दी जाएगी। उसके बाद फिर जाने काहिरा का यह फुटपाथ, यह खम्भा और ये इश्तिहार कभी देखने को मिलेंगे या नहीं! क्या कहते हो?"

"मैं लड़ना नहीं चाहता।" सदानन्द के मन की विकलता एक वाक्य में बाहर निकल आई।

"तो जहर खा लो। जब तक जिन्दा हो तब तक तुम लड़ने के लिए मजबूर हो। तुम्हारे चाहने-न चाहने की परवाह यहां किसीको नहीं। तुम्हारी जान दूसरों ने खरीद रखी है। उनके काम आओ, नहीं तो नष्ट हो जाओ।" इतना कहकर मैथिलोन ने उसके कन्धे पर हाथ रखा और फिर कहा, "हम दूसरों की लड़ाई लड़ रहे हैं दोस्त! इस लड़ाई में सिपाही की एक ही चीज अपनी है,

और वह है वेतन के रुपये। उन्हें वह जिस तरह चाहे खर्च कर सकता है।" अचानक वह बोलता-बोलता रुक गया और दूर अंधेरी गली की ओर देखने लगा। कुछ देर तक एकटक देखकर वह धीरे से बोला, "वह उस गली के बाहर एक लड़की खड़ी है। बोलो, चलते हो?"

सदानन्द ने वहां इजिप्शियन पोशाक में एक चुस्त युवती को देखा, जिसकी आंखें मलमली घूंघट के पीछे चंचल हो रही थीं।

"तुम कैसे जानते हो, वह मिल सकती है?" उसने झिझक के साथ पूछा।

"मैं आंखें देखने के लिए और नाक सूंघने के लिए इस्तेमाल करता हूं। बोलो, चलते हो?"

"नहीं।" सदानन्द ने कहा और उसके हाथ ने उंगली के छल्ले को छू लिया। एक क्षण में उसे ढुलकते आंसुओं, धड़कते वक्षों और अधकहे वाक्यों का स्मरण हो आया। वह माधवी को कितने-कितने वचन और आश्वासन देकर आया था।

"परसों फ्रंट पर जाना है, पता है?" मैथिलोन ने जैसे तरस खाकर कहा।

"पता तो है ही।"

"फिर भी नहीं चलते?"

"नहीं।"

"तुम बेसमझ हो।"

"नहीं, मैं बेसमझ नहीं हूं।"

"तो तुम नपुंसक हो।" कहकर मैथिलोन ने उसके मुरझाए चेहरे पर नज़र डाली और फिर उसे बच्चे की तरह थपथपाकर कहा, "अच्छा जाओ, बैरक में जाकर सो रहो। मैं सवेरे परेड के मैदान में मिलूंगा।"

और सीटी बजाता वह उसे छोड़कर अंधेरी गली की ओर चला गया।

कुछ दिन बाद जब रात आधी जा चुकी थी, पूरा चांद आकाश में चमक रहा था और ठण्डी हवा ठण्डी रेत के पहाड़ों को उड़ाकर इधर से उधर बिखेर रही थी, सदानन्द और मैथिलोन अपनी टुकड़ी के साथ रेत पर पेट के बल रेंगते हुए बढ़ रहे थे। तीन ओर से वे घिरे हुए थे, और एक ही दिशा थी जिधर जाकर . . रहने की संभावना थी। वे उसी दिशा में धीरे-धीरे सरक रहे थे।

पूरा सन्नाटा था। फिर भी रह-रहकर सदानन्द को आभास हो रहा था

कि जर्मन मशीनें अब गरजने ही वाली हैं। न जाने कौन-सा क्षण आए, जब तीनों दिशाएं एक साथ फट पड़ें। उस क्षण से जूझने के लिए वह तैयार था, पर समय का यह खामोश अन्तराल इतना बड़ा और इतना ठण्डा था कि इसे सहन करना उसे असम्भव लग रहा था। दूर क्षितिज तक फैली रेत थी। रेत के ऊपर फैली चांदनी थी। चांदनी में सैंकड़ों छोटे-छोटे रेत के टीले जली हुई चिताओं की तरह दिखाई दे रहे थे। इस समय वह यदि यहां मर जाए, कोई उसे उठाए नहीं और रेत उसे ढाप ले, तो वह भी दूर से एक ऐसा ही टीला नजर आए। इतना ही ठण्डा, एकान्त और डरावना!

टुकड़ी टीलों के बीच से सरकती हुई बढ़ रही थी। सिपाही जानते थे कि वे जितनी दूर जा सकें, जिन्दगी के उतने ही नज़दीक रहेंगे। इसलिए वे आगे, आगे, और आगे सरकते जा रहे थे, कि अचानक—

चिटचिटचिटचिट चिटाख चिटचिटाख चिटचिटचिट चिटाख···पीछे दायें और बायें से गोलियां बरसने लगी। सरकते हुए सैनिकों की टुकड़ी ने रुख बदल लिए और अपनी रायफलों के घोड़े दबा दिए। सदानन्द वातावरण को भूलकर अंधाधुंध गोलियां चलाने लगा। जिन्दगी कुछ देर के लिए चिटचिटचिटाख की ध्वनियां सुनने और पैदा करने में ही सीमित हो गई। कौन गिरा, मरा, कराहा या घायल होकर तड़पा, यह जानने का अवकाश नहीं था। एक गोली सदानन्द के कंधे को छील गई। वह अपना घाव देखने के लिए भी नहीं रुक सका। वह अभी ध्वनियां पैदा कर सकता था, इसलिए वह ध्वनियां पैदा करता रहा। चिटचिटचिटाख चिटचिटचिट चिटाख।

एक बाह ने उसके कंधे को छुआ। घाव दुख गया। सदानन्द ने तड़पकर देखा। मैथिलोन था। मैथिलोन बुरी तरह ज़मीन पर रेंग रहा था। अपने पीछे वह रेत पर गाढ़े लहू की मोटी लकीर छोड़ता आ रहा था। उसकी वर्दी के सीने पर लहू का बड़ा-सा दाग बन रहा था, जो धीरे-धीरे और बड़ा होता आ रहा था। उसे इस अवस्था में पहचानकर सदानन्द का हाथ रुक गया। वह मैथिलोन के शरीर पर झुका। झुकने पर उसके अपने कंधे का लहू मैथीलोन के होंठों और गालों पर गिरने लगा। सदानन्द पीछे हट गया। मैथिलोन का चेहरा गूंधे हुए आटे जैसा हो रहा था। उसने सदानन्द को देखकर कुछ बोलने की चेष्टा की पर उसके होंठ नहीं खुल सके। कठिनता से उसने अपना हाथ उठाया और

और वह है वेतन के रुपये। उन्हें वह जिस तरह चाहे खर्च कर सकता है।" एका
नक वह बोलता-बोलता रुक गया और दूर अंधेरी गली की ओर देखने लगा
कुछ देर तक एकटक देखकर वह धीरे से बोला, "वह उस गली के बाहर एक
लड़की खड़ी है। बोलो, चलते हो?"

सदानन्द ने वहां इजिप्शियन पोशाक में एक चुस्त युवती को देखा, जिसकी
आंखें मलमली घूंघट के पीछे चंचल हो रही थी।

"तुम कैसे जानते हो, वह मिल सकती है?" उसने झिझक के साथ पूछा।

"मैं आंखें देखने के लिए और नाक सूंघने के लिए इस्तेमाल करता हूं।
बोलो, चलते हो?"

"नहीं।" सदानन्द ने कहा और उसके हाथ में उंगली के छल्ले को छू लिया।
एक क्षण में उसे ढुलकते आंसुओं, धड़कते वक्षों और अधजले आकारों का स्मरण
हो आया। वह माधवी को कितने-कितने वचन और आश्वासन देकर आय

"परसों फ्रंट पर जाना है, पता है?" मैंथिलोन ने जैसे तरस खाकर

"पता तो है ही।"

"फिर भी नहीं चलते?"

"नहीं।"

"तुम बेसमझ हो।"

"नहीं, मैं बेसमझ नहीं हूं।"

"तो तुम नपुंसक हो।" कहकर मैंथिलोन ने उसके मुरझाए चेहरे पर नज़
डाली और फिर उसे बच्चे की तरह थपथपाकर कहा, "अच्छा जाओ, डेरे
जाकर सो रहो। मैं सवेरे परेड के मैदान में मिलूंगा।"

और सीटी बजाता वह उसे छोड़कर अंधेरी गली की ओर चला गया।

कुछ दिन बाद जब रात आधी आ चुकी थी, पूरा चांद आकाश में चमक
रहा था और ठण्डी हवा ठण्डी रेत के पहाड़ों को उड़ाकर इधर से उधर
ले जा रही थी, सदानन्द और मैंथिलोन अपनी टुकड़ी के साथ रेत पर पेट
के बल पड़े हुए थे। तीन ओर से वे घिरे हुए थे, और एक ही
उनके बच रहने की सम्भावना थी। वे उसी दिशा में
पूरा सन्नाटा था। फिर भी रह-रहकर

उसे अपना गांव याद आया। कहां है वह गांव ? इस धरती के किस कोने ? क्या वह धरती और यह धरती एक ही है ?

सहसा उसे मैथिलोन का गूथे आटे जैसा चेहरा याद हो आया। मैथिलोन ा को मर गया। हां सकता था वह भी रात को मर जाता। पर वह नहीं ा। वह भाग आया और बच गया।

उसने मैथिलोन की डिबिया निकाली। उसमें दो हीरे-जड़ी अंगूठियां थीं। देर तक उन्हें देखता रहा। अंगूठियां धूप में बहुत चमकती थीं। फिर उसने थिलोन का तह किया हुआ कागज़ खोला। वह एक पत्र था जिसपर छः महीने ले की तिथि थी और जो मैथिलोन ने अपनी बहन के नाम लिखा था :

"मैं नहीं जानता कि कब किस घड़ी मेरी मौत हो जाएगी। इसलिए यह पत्र आज ही लिखकर अपने पास रख रहा हूं। मुझे मौत की आशंका हर समय यद्यपि मैं नहीं जानता कि मेरी मौत किस उद्देश्य से होगी। मैं जिनसे लड़ता वे क्यों मेरे दुश्मन हैं, मैं नहीं जानता। मैं लड़ता हूं क्योंकि मुझे लड़ने का तन मिलता है। वे लड़ते हैं क्योंकि उन्हें लड़ने का वेतन मिलता है। सिपाही कमांडर तक हर एक को वेतन मिलता है। मिनिस्टर और प्राइम मिनिस्टर ो वेतन मिलता है। सम्राट और उसके परिवार को वेतन मिलता है। इतने तनों के पीछे कोई लड़ाने वाली शक्ति है। मैं उसे नष्ट नहीं कर सकता क्योंकि मुझे हर महीने वेतन की ज़रूरत पड़ती है। मैं वेतन पाने के लिए उन्हीं पर गोलियां चलाता हूं जो मेरी तरह वेतन लेते हैं, और गोलियां चलाते हैं। मेरी गोलियों ने कइयों की जानें ली हैं। किसीकी गोली एक दिन मेरी जान ले लेगी। फिर मैं तुमसे नहीं मिल सकूंगा। इसलिए दो अंगूठियां तुम्हारे लिए ला रखी हैं। भी वेतन के पैसों की हैं। मेरा कोई मित्र इन्हें तुम तक पहुंचा देगा। इन्हें री ज़िन्दगी और मौत की याद के रूप में अपने पास रख छोड़ना, विदा !"

उसने अंगूठियां बन्द करके रख लीं, और एक ठण्डी सांस ली। काश, कि वह आज हिन्दुस्तान जा सके, और ये अंगूठियां मैथिलोन की बहन के हाथ में दे सके।

विदा ! विदा ! अब मैथिलोन मुंह से विदा कहने नहीं आएगा। उसे जान देनी पड़ी क्योंकि उसके प्राण बिके हुए थे। केवल ये अंगूठियां उसकी अपनी थीं। क्या मैथिलोन की बहन इन अंगूठियों के हीरों में अपने भाई की लाश को देख ाएगी ?

दहलते दिल से सदानन्द ने सोचा, जब वह हिन्दुस्तान जाएगा, तब वह माधवी के लिए भी दो ऐसी हीरों की अगूठियां बनवाकर लेता जाएगा। माधवी को उसने कभी कोई उपहार नहीं दिया। अभी परसों पहली तारीख है। पहली तारीख को वेतन मिलेगा। उस दिन वह एक हल्का-सा छल्ला खरीदेगा और...।

रेत का एक बवण्डर पास से उठा और वह सिर से पैर तक रेत में ऐसे घिर गया कि कई क्षण सांस भी नहीं ले सका। उस एक झोंके से उसका विश्वास डावां-डोल हो गया। उसने सोचा, परसों पहली तारीख है, पर पहली तारीख तक वह अपनी छावनी में पहुंच जाएगा? यह रेत का तूफान उसे जाने देगा? यदि वह नहीं निकल सका, और उसका राशन-पानी समाप्त हो गया, फिर? क्या यह रूखी जमीन उसे जीता छोड़ेगी?

सदानन्द डर गया, और डरकर उठ खड़ा हुआ। पश्चिम को लक्ष्य में रख-कर वह चलने लगा। काफी देर तक वह चलता रहा। जब धूप में सन्ध्या की छायाएं घुलने लगीं, तब उसने रुककर चारों ओर देखा। सब ओर धरती का फैलाव उतना ही था जितना उसने चलते समय देखा था। दूर सामने एक विशाल टीला था जो उसकी राह में जिन्दगी और मौत की दीवार की तरह खड़ा था। उसने मन को समझाया कि टीले के पार ही शायद छावनी होगी, और छावनी नहीं तो कोई आबादी होगी, और आबादी नहीं तो कोई झोंपड़ी होगी। वहां जाकर उसके प्राण बच जाएंगे। इसलिए वह टीले की ओर दौड़ने लगा। थोड़ी देर में चारों ओर चांदनी फैल गई। वह इसी विश्वास के साथ दौड़ता रहा। उसे इतना ही धैर्य था कि रास्ता कट रहा है। पर बहुत दौड़ चुकने के बाद यह धैर्य भी टूटने लगा। क्योंकि टीला अब पहले से भी दूर चला गया था। फिर भी वह बहुत देर तक और बहुत दूर तक दौड़ा। पर टीला उसकी पहुंच में नहीं आया।

कुछ रोज बाद काहिरा के मिलिट्री अस्पताल में एक हिन्दुस्तानी सिपाही की लाश पोस्टमार्टम के लिए आई क्योंकि वह रेत में मरा हुआ पाया गया था और उसके शरीर पर गोली का कोई घातक निशान नहीं था। वह लाश सदानन्द की थी।। चीर-फाड़ के बाद लाश जलवा दी गई।

पर जिस सिपाही ने उस लाश को पहले-पहल देखा था, उसे उसके हाथ में

एक छोटी-सी डिबिया और पेंसिल से लिखा हुआ कागज भी मिला था।

इस सिपाही का नाम महानन्द था। यह भी हिन्दुस्तानी फौज की एक टुकड़ी में था। कागज की लिखावट को पढ़कर उसकी आंखों में आंसू आ गए थे, और उसने अपने-आप यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी कि उस डिबिया को, पता-ठिकाना पूछकर, मरे हुए सिपाही के घर भेज देगा। कागज उसीके नाम था जिसे वह मिल जाए और उसमें सदानन्द ने लिखा था—

"मैं नहीं जानता था कि अब मेरे जीवन की कितनी घड़ियां शेष हैं। मैं चाहता हूं कि मैं मरने से पहले एक बार अपने घर जा सकूं, और एक बार मां और माधवी के चेहरे देखकर पहचान सकूं। मेरे नीचे ठण्डी जमीन है, और इस जमीन को मैं नहीं पहचानता। मेरे चारों ओर चांदनी है, पर चांदनी का यह रूप वह नहीं है, जो मेरे घर के आंगन में था। यह चांदनी मौत की तरह डरावनी है। मैं यह चांदनी नहीं चाहता। मैं मरना नहीं चाहता। पर मुझे लगता है मैं मर रहा हूं। मुझे अभी वेतन लेकर पैसे घर भेजने हैं। मुझे हीरे की अंगूठियां माधवी को देनी हैं। मैं मर गया तो मुझे हर महीने वेतन नहीं मिलेगा। माधवी के पास कोई गहना नहीं जिसे वह बेच ले। मेरे पास दो हीरे की अंगूठियां हैं। मैं भगवान से कह दूंगा। वह मेरी बात समझ जाएगा। पर मेरे घर अंगूठियां लेकर कौन जाएगा? मेरा घर बहुत दूर है।"

महानन्द का हृदय पढ़ते-पढ़ते इतना पिघला, कि वह उस पत्र को फिर दूसरी बार नहीं पढ़ सका।

और महानन्द को दो दिन की छुट्टी मिली तो वह अपने एक साथी के साथ संध्या को शहर में घूमने गया। वहां एक अंधेरी गली के पास एक चुस्त इजिप्शियन युवती उसकी ओर मुसकराई। महानन्द की जेब में उस समय पूरे महीने का वेतन था, इसलिए युवती से उसे रात-भर के लिए प्रेम मिल गया।

जब वह प्रेम का मूल्य चुकाकर विदा होने लगा, तो युवती ने उसकी आंखों में आंखें डालकर उससे कोई ऐसी निशानी मांगी जिससे वह उसे हमेशा के लिए याद रख सके।

महानन्द ने जेब से एक हीरे की अंगूठी निकालकर बड़े प्यार से उसे पहना दी। युवती ने पूरे स्नेह के साथ महानन्द के होंठों को चूम लिया। महानन्द ने दूसरी अंगूठी निकालकर उसके दूसरे हाथ में पहना दी।

[illegible]ह बलज्जत

किसीने काउण्टर के पास आकर सरदार सुन्दरसिंह के कान में कहा कि पुली[illegible] गाड़ी सुन्दरी और उसकी बहन को लिए हुए सिविल लाइन्ज में घूम रही है, [illegible] उसका मुंह लाल हो गया, हाथ कांप गया और पेंसिल हाथ से गिर गई।

यह बात सुबह से सुनी जा रही थी कि सुन्दरी पुलीस को उन सब लोगों के पते-ठिकाने बता रही है जिन-जिनके घर उसे और उसकी बहन शम्मी को ले जाया गया था। कुछ बड़े-बड़े आसामियों की गिरफ्तारियां हो चुकी थीं जिनमें एक मैजिस्ट्रेट का भाई और एक पुलिस इंस्पेक्टर भी था। फिर भी सरदार सुन्दरसिंह का दिल कह रहा था कि उसकी गिरफ्तारी नहीं हो सकती। जो लमहे उसने सुन्दरी के साथ बिताए थे, वे उसकी जिन्दगी के सबसे खुशगवार लमहे थे। क्या जिन्दगी ऐसी ना-इन्साफी उसके साथ कर सकती थी कि उन हसीन और खुशगवार लमहों की याद उससे छीनकर उसे बिलकुल दीवालिया कर दे! इसके अलावा उससे कोई बदफेली भी नहीं हुई थी। बुनियादी तौर पर वह एक नेक और शरीफ आदमी था, और उसका दिल कह रहा था कि उस जैसे नेक और शरीफ आदमी को कभी हथकड़ी नहीं लग सकती। उसे विश्वास था कि उसका दिल कभी गलत बात नहीं कहता!

कुछ बरस पहले वह चाय और शरबत का सामान ठेला-गाड़ी में रखकर [illegible]गली घूमा करता था तो उसके दिल ने [illegible]

बहुत बड़ा होटल खोलेगा और कई-कई बैरे और खानसामे उसके नीचे काम करेंगे। उसके दिल की यह बात जितनी जल्दी उसने आशा की थी, उससे कहीं जल्दी पूरी हो गई थी। पांच-छः बरस में ही वह फटे हुए पाजामे-कुर्ते से शार्क-स्किन की बुश्शर्टों तक पहुंच गया, दो रुपये रोज़ से उसकी आमदनी तीस-चालीस रुपये रोज़ तक चली गई, और उसके बोल-चाल और चलने-फिरने के अन्दाज़ में इतना अन्तर आ गया कि उसे जाननेवाले भी नहीं कह सकते थे कि यह वही सुन्दरसिंह है जो एक दिन ठेला लगाया करता था। उसे महसूस होता था कि उसके बाहर की चीज़ ही नहीं बदली, वह अन्दर से भी पूरी तरह बदल गया है। केवल एक चीज़ नहीं बदली थी और वह थी उसकी बीवी, जिसकी सूरत से उसे नफरत थी। उसके पास जाकर सुन्दरसिंह के दिल की सारी उमगें ठण्डी पड़ जाती थीं, जिस वजह से पंद्रह बरस में वाहगुरु ने उसे कोई बच्चा-अच्चा नहीं दिया था। मगर उसका दिल कहता था कि उसकी सारी उम्र इसी तरह नहीं गुज़रेगी। वह, सरदार सुन्दरसिंह सलवाड़ एक न एक दिन अपनी सारी हसरतें ज़रूर पूरी करेगा। इसलिए जिस दिन सुन्दरी के उसके घर में आने की बात तय हुई, वह अपने दिल की बात का और भी कायल हो गया। उसे लगा कि उसके अन्दर ज़रूर किसी औलिया का वास है।

उसने बड़ी मुश्किल से मनाकर अपनी बीवी को उसके बाप के घर भेज दिया। वह जाना चाहती थी क्योंकि बहुत दिनों में जब-जब उसने जाने की इच्छा प्रकट की थी, सुन्दरसिंह ने यह कहकर उसका प्रस्ताव रद्द कर दिया था कि वह अपना एक-एक पैसा बिज़नेस के बढ़ाने में लगा रहा है, उसके पास उसे इधर-उधर भेजने के लिए पैसे नहीं हैं। मगर इस बार उसने अपने पिछले रवैये के लिए उससे माफी तक मांगी और अनुरोध किया कि वह उसका दिल रखने के लिए चली ही जाए। बीवी के चले जाने पर उसने खाली घर को इस तरह देखा जैसे अभी-अभी उसे उसने आले-पाले उतारकर ठीक किया हो, और खाली पलंग पर लेटकर इस परिवर्तन को महसूस करने का प्रयत्न किया।

सुन्दरी उस रात दस बजे से लेकर साढ़े बारह बजे तक उसके पास रही। वह मोटी-सी औरत हरजीतकौर उसे छोड़कर चली गई तो सुंदरसिंह ने दरवाज़ा बन्द करके बत्ती बुझा ली। यह उसकी ज़िन्दगी में पहला मौका था कि एक इतनी हसीन लड़की उसके इतनी नज़दीक थी और उसके मन में किसी भी तरह

का डर या अन्देशा नहीं था। वह अपनी सारी हसरत और अरमान उसके शरीर पर पूरे कर सकता था। उसने पास जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "सोहणेश्रो, बैठ जाश्रो।"

सुन्दरी ने हाथ छुड़ा लिया और कमरे में टहलने लगी। सुन्दरसिंह उससे छोटी-मोटी छेड़खानियां करने लगा। कभी उसे कन्धे से पकड़कर उसके गाल चूम लेता और कभी उसके गदराए हुए वक्ष को हाथ से मसल देता। उसे छूते ही उसके शरीर में बिजलियां दौड़ जाती। किसी-किसी क्षण उसे विश्वास नहीं होता कि जो कुछ हो रहा है वह एक हकीकत है। उसने सुन्दरी का हाथ मजबूती से पकड़ लिया और फिर कहा, "चूजेश्रो, बैठ जाश्रो।"

सुन्दरी बैठ तो गई पर सुन्दरसिंह को लगा कि वह उसे विचित्र सन्देह-भरी नजर से देख रही है। सहसा उसके शरीर की बिजलियां ठंडी होने लगी। उन बिजलियों की गर्मी बनाए रखने के लिए उसने उसे खींचकर अपने साथ सटा लिया और कहा, "सोहणेश्रो, तुम हमें प्यार नहीं करते?"

सुन्दरी ने उसकी बांहों से मुक्त होने का प्रयत्न किया तो सुन्दरसिंह और ढीला पड़ने लगा। वह उससे इस तरह लिपट गया जैसे डूबते आदमी के हाथ में किसी तैराक की बाह आ गई हो और वह किसी भी तरह उसे छोड़ना न चाहता हो। वह उससे कहने लगा कि वह जिन्दगी में आज पहली बार दिल से प्यार कर रहा है, अपनी बीवी से वह आज तक प्यार नहीं कर सका, वह उसे बता नहीं सकता कि अपनी बीवी के हाथों वह कितना दुःखी है। उसने यह भी कहा कि सुन्दरी अपने सुन्दर को सिर्फ एक ग्राहक समझने की भूल न करे, सुन्दर उसे अपनी जान से बढ़कर मानता है, और उसके एक इशारे पर अपना घर-बार और बिजनेस सब कुछ छोड़ सकता है। आज उसके दिल में एक ही कामना है कि उसकी सुन्दरी हमेशा-हमेशा के लिए इसी तरह उसके पास रहे। मगर बात कहते-कहते ही उसे ध्यान हो आया कि उसकी चाही हुई अक्सर बातें सच्ची हो जाती है, इसलिए उसने घर-बार, बिजनेस छोड़ने की बात को तुरन्त लौटा लिया।

"सोहणेश्रो, तुम मेरे पास रहो तो मैं तुम्हें बंगला बनवा दूं, कार रख दूं— तुम सुन्दरसिंह को ऐसा-वैसा ही न समझना।"

उसने सोचा कि यह कहकर उसने बिजनेस की कुरबानी की बात रद्द कर दी है। सुन्दरी का शरीर अब कसमसा नहीं रहा था और सुन्दरसिंह का हाथ

धीरे-धीरे उसकी पीठ को सहला रहा था। वह सोचने लगा, क्या सचमुच ऐस
दिन उसकी ज़िन्दगी मे आ सकता है जब सुन्दरी उसकी पत्नी के रूप मे उसके
घर मे रही हो, वह उसकी बाह मे बाहे डाले हुए घर से निकले और उन्हे देख
ही ड्राइवर कार का दरवाजा खोलकर खड़ा हो जाए ? मगर इससे पहले कि दि
का ग्रौलिया इस बात की गवाही देता, उसने झट से अपनी कल्पना मे थोड़ा परि
वर्तन कर लिया। उसने सोचा कि चाहे सुन्दरी खूबसूरत है, फिर भी क्या वह
ज़िन्दगी-भर के लिए घर मे रख सकता है ? वह एक शरीफ आदमी है और व
पेशेवर बदमाश है। इसलिए उसने जल्दी से तय कर लिया कि शरीफ आदमी होने
के नाते घर मे रखने के लिए उसे एक शरीफ लड़की ही चाहिए, सुन्दरी जैसी
बाज़ारू लड़की नही।

मगर उसकी शराफत ने हज़ार कोशिश करने पर भी उस समय उसके दिल
के अरमान पूरे नहीं होने दिए। कहा उसने सोचा था कि उस दिन उसके चालीस
बरस के सारे अरमान निकल जाएगे और कहा वह अढाई घण्टे मे अपने अरमान
निकालने की भूमिका भी नही तैयार कर पाया। साढे बारह बजे हरजीतकौर
ने दरवाज़ा खटखटाया तो सुन्दरी मुह बिचकाकर उससे अलग हो गई और वह
आप पसीना-पसीना हुआ, उठ खड़ा हुआ। दरवाज़ा खोलकर उसने हरजीतकौर
से अनुनय किया कि वह सुन्दरी को कुछ देर और उसके पास रहने दे, वह उसे
दुगने पैसे तक देने को तैयार है। मगर सुन्दरी ने एक झिलमिलाहट-भरी नजर से
उसकी तरफ देखा, जैसे वह इन्सान न होकर एक चलता-फिरता दवाईखाना हो
और बेरुखी से सीढ़ियों की तरफ चली गई। हरजीतकौर भी कन्धे झटककर उसके
पीछे-पीछे सीढ़िया उतर गई।

*सुन्दरसिंह अपनी खुली हुई पगड़ी उठाकर आईने के सामने जा खड़ा
हुआ।*

"सुन्दरसिंह तू गधा है, तू बैंगन है, तू अमरूद है," कहकर उसने दो-तीन
बार अपने मुह पर चपत मारी और पगड़ी लपेटने लगा। पगडी लपेटकर उसने
फिर एक बार अपने मुंह पर चपत मारी।

"सुन्दरसिंह, तू शलगम है शलगम। तू होटल छोड़ और ठेला चला।"

मगर कुछ दिन बाद जब सुन्दरी और हरजीतकौर पकड़ी गई और शह
मे हर व्यक्ति के मुंह से सुन्दरी-कांड की चर्चा सुनाई देने लगी, तो सरदार सुन्द

सिंह के दिल से अपनी असफलता का खेद बहुत हद तक जाता रहा। उसे यह भी लगा कि कुदरत ने इस तरह उसके तिरस्कार का बदला ले लिया है। सुन्दरी ने पुलीस के सामने बयान दिया था कि वह अभी नाबालिग है, और हरजीतकौर जबरदस्ती उससे यह पेशा कराती है। इससे सुन्दरसिंह को लगा कि उसकी असफलता के पीछे भी शायद कुदरत का ही हाथ था—वाहगुरु ने अपनी बांह बढ़ाकर उसे इस अपराध का हिस्सेदार बनने से बचा लिया है। उसने मन ही मन वाहगुरु की अरदास की।

मगर यह सुनकर कि पुलीस की गाड़ी सिविल लाइन्ज़ में घूम रही है, उसका दिल खामखाह धड़कने लगा। उसे विश्वास था कि जिस तरह वाहगुरु ने अब तक उसकी लाज रखी है, उस तरह आगे भी रखेगा। मगर उसे लगा कि पुलीस की गाड़ी अचानक उधर आ निकले और सुन्दरी उसे काउण्टर पर खड़े देखकर पहचान ले, तब तो वाहगुरु के लिए भी लाज रखना मुश्किल होगा। क्या पता वे लोग एक-एक प्याली चाय पीने के लिए ही उसके होटल का रुख कर लें और वहां आकर पुलीसवाले सुन्दरी की आंखों से ताड़ लें कि दाल में कुछ काला है, और वहीं तहकीकात शुरू कर दें? उसने कांपते हाथ से गिरी हुई पेंसिल को उठाया मगर उनसे बिल-बुक में हिसाब ठीक नहीं लिखे गए। उसने पेंसिल बीच में रखकर बिल-बुक बन्द कर दी। काउण्टर से हटकर उसने हरदित्तसिंह बैरे को इशारे से अपने पास बुलाया और उससे कहकर कि उसके सिर में दर्द है, वह उसकी जगह काउण्टर संभाल ले, वह पिछली गली के रास्ते घर की तरफ चल दिया।

घर में दाखिल होकर सुन्दरसिंह ने गली में खुलनेवाला दरवाज़ा बन्द कर लिया। सीढ़ियां चढ़कर वह ऊपर पहुंचा तो उसका उस कमरे में जाने को मन नहीं हुआ, जहां उसकी ज़िन्दगी का हसीन ख्वाब पूरा होते-होते रह गया था। पहले हर रोज़ वह घर आते ही उस कमरे पर एक हसरत-भरी नज़र डाल लेता था, मगर आज वह सीधा चौके में अपनी पत्नी भागवन्ती के पास चला गया। भागवन्ती ने ज़रा भी आश्चर्य प्रकट नहीं किया कि सरदारजी आज जल्दी क्यों चले आए हैं। वह चुपचाप आटे के पेड़े पर बेलन चलाती रही।

"भागवन्ती," सुन्दरसिंह ने उसके पास मोढ़े पर बैठते हुए कहा।

भागवन्ती ने हाथ रोककर आंखें उसकी ओर उठाईं जैसे कह रही हो, कुछ बात कहनी है तो जल्दी से कह डालो, नहीं मुझे काम करने दो।

"भागवन्ती, मुझे आज एक खयाल आया है।"

भागवन्ती ज़रा सतर्क हो गई। पन्द्रह बरस के विवाहित जीवन में जब कभी उसने इस तरह मुलायम होकर बात की थी, उसके पीछे कोई न कोई मतलब रहा था। एक बार जब उसे होटल खोलना था, उसने इसी तरह बात करके उससे उसके गहने मांगे थे। फिर जब उसे होटल का काम बढाने के लिए पैसे की ज़रूरत थी तो उसने इसी तरह की बातों से उसे अपने बाप से मिला हुआ घर गिरवी रखने के लिए राज़ी किया था। अब उसके पास अपनी सम्पत्ति के रूप मे चांदी के कुछ बरतनों के सिवा कुछ नहीं था। वे भी उसके दहेज में आए थे। वह पहले भी एक बार उससे कह चुकी थी कि वह किसी भी परिस्थिति मे अपने बरतन उसे बेचने के लिए नहीं देगी। उसकी भौंह तिरछी हो गई और माथे पर बल पड़ गए।

"भागवन्ती, मैंने आज तक तेरे लिए कुछ नही किया।" सुन्दरसिंह ने आखें भरे हुए यह बात कही तो भागवन्ती के हाथ से बेलन छूट गया। सुन्दरसिंह का अपने कुछ न करने की बात कहना या सोचना उसके लिए बिलकुल अस्वाभाविक चीज़ थी। उसने बेलन सभालते हुए तीखी नज़र से उसे देखा कि आखिर इस बात का गहरा मतलब क्या हो सकता है। सुन्दरसिंह ने पगड़ी उतारकर आले पर रख दी और घुटने ऊंचे उठा लिए।

"भागवन्ती, मैं तेरे लिए सोने की चूड़िया बनवाना चाहता हूं।"

भागवन्ती ने एक लम्बी सास ली, बेली हुई चपाती तवे पर डाली और कहा कि उसे गर्म फुलका खाना हो तो वह उसकी थाली लगा दे, सोने की चूड़िया वह बहुत पहन चुकी है।

"भागवन्ती, तूने सुन्दरसिंह का दिल नहीं देखा। देखेगी तो कहेगी कि हां सुन्दरसिंह भी कुछ चीज़ है," कहता हुआ वह पगड़ी सिर पर रखकर उठ खड़ा हुआ।

भागवन्ती ने कुछ नहीं कहा, सिर्फ इतना पूछ लिया कि वह रोटी अभी खाएगा या ठहरकर। सुन्दरसिंह के मन में था कि वह उसके पास बैठकर उससे देर तक बातें करे और रोटी खाकर उसके साथ ही बीच के कमरे मे जाए। उसने यह भी सोचा था कि मौका लगा तो वह सारी बात बताकर उससे माफी भी मांगेगा। क्योंकि उसे ख़याल था कि अगर सुन्दरी ने पुलिस को पता बता दिया और पुलीस उसके घर आ गई तो भागवन्ती ही उसका बचाव कर सकेगी। मगर

मालवन्ती का उदासीन भाव देखकर उससे कुछ भी नहीं कहा गया और वह रोटी के लिए मना करके चौके से निकल आया। मालवन्ती ने एक बार भी उससे अनुरोध नहीं किया कि वह रोटी खाकर ही जाए। वह कहने पर रोटी को पुकाकर भूखा न रहे। सुन्दरसिंह का मन खीझ गया कि इस औरत की वजह से उसकी ज़िन्दगी तबाह हो गई है। आज अगर उसे हथकड़ी लगेगी, तो इसीकी खबर न मांगेगी। मगर वह तब भी शायद इसी तरह चकले पर बेलन चलाती रहेगी, और चिमटे से आग ठीक करती रहेगी।

कमरे में आकर वह पलंग पर लेट गया तो उसे रह-रहकर मालवन्ती पर क्रोध आने लगा। वह उसमें आज तक नफ़रत बरतता आया है, इसलिए वह इसे बिलकुल ही बोदा समझती है। वह भी तो उसकी नफ़रत ही थी कि जिस दिन वह सुन्दरी को घर लाया, उस दिन उसने उसे उसके मैके भेज दिया। चाहिए तो यह था कि वह उसके सामने ही घर में यह करतब करता, जिससे वह एक बार तो महसूस करती कि वह उतना गावदी नहीं है जितना वह समझती है। अब तो वह ऐसे उससे व्यवहार करती है जैसे वह आदमी न होकर मिट्टी का ढेला हो।

गली में चार-छः व्यक्तियों के चलने की आवाज़ सुनकर सुन्दरसिंह चौंक गया। एक बार उसका दिल ज़ोर से धड़क गया और उसे अफ़सोस हुआ कि उसने कमरे की बत्ती जलती क्यों रहने दी है। उसे लगा कि दो ही क्षण बाद उसके दरवाज़े पर दस्तक दी जाएगी और उसके कुछ ही देर बाद शायद पुलीस उसे हथकड़ी लगाकर कोतवाली की तरफ़ ले जा रही होगी। मगर पैरों की आवाज़ शीघ्र ही दूर चली गई और धीरे-धीरे समाप्त हो गई। सुन्दरसिंह पलंग से उठा और खिड़की के पास चला गया। खिड़की की सलाखें बहुत ठंडी थीं और नीचे गली सुनसान थी। सुन्दरसिंह का मन एक विचित्र-सी निराशा से भर गया। उसने उन दो ही क्षणों में अपने मन को पुलीस के सामने घटित होने वाले दृश्य के लिए तैयार कर लिया था। मगर पुलीस तो क्या, गली में इन्सान की छाया तक न थी। वह फिर आकर पलंग पर लेट गया।

दिन में उसने कई तरह के क़िस्से सुने थे कि सुन्दरी ने लोगों के घरों में जाकर पुलीस को क्या-क्या चीज़ें बताई हैं। लोग सुन्दरी की याददाश्त पर हैरानी प्रकट कर रहे थे कि कैसे उसने एक-एक घर का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। चौके से अब भी चकले-बेलन की आवाज़ आ रही थी। सुन्दरसिंह ने करवट

बदलकर सोचा कि इस समय सचमुच सुन्दरी पुलीस को लिए हुए वहा ग्रा जाए ग्रौर पुलीस उसे हथकड़ी पहना दे, तो निःसंदेह भागवन्ती उसकी मर्दानगी के प्रति इस तरह उदासीन नही रह सकेगी ग्रौर उसके दिल मे उसके लिए कद्र पैदा होगी। उसके सामने वह पूरा दृश्य जैसे घटित होने लगा।

दरवाज़े पर दस्तक होती है और भागवन्ती दरवाज़ा खोलती है। सुन्दरी ग्रौर पुलीस के सिपाहियों को देखकर वह भौचक हो जाती है।

"माई, सरदार सुन्दरसिंह का मकान यही है ?" एक सिपाही पूछता है।

"हा, यही मकान है," सुन्दरी कहती है, "सीढियों के साथ ही इनका बड़ा कमरा है। उसमे दाई ग्रोर एक पलग बिछा है। चलिए ऊपर।"

भागवन्ती घबराई-सी उनके लिए रास्ता छोड देती है। वे सब ऊपर पहुंच जाते हैं। भागवन्ती भी डरी-डरी-सी उनके पीछे ऊपर ग्रा जाती है। सुन्दरी पास ग्राकर उसका हाथ पकड़ लेती है।

"यह है सरदार सुन्दरसिंह," वह कहती है, "लगा लो इसे हथकड़ी।"

"हाथ ग्रागे करो सरदारजी," सिपाही पास ग्राकर उसे हथकडी पहनाने लगता है, "बहुत मौज कर ली, ग्रब चलकर हवालात की हवा खाग्रो।"

वह तनकर खड़ा हो जाता है ग्रौर कहता है कि वह इस मामले मे बिलकुल बेकसूर है। वाहगुरु की सौगन्ध खाकर कह सकता है कि वह बिलकुल बेकसूर है। यह लडकी खामखाह उसका नाम लगा रही है।

भागवन्ती उसके ग्रौर सिपाही के बीच ग्राकर खड़ी हो जाती है ग्रौर कहती है कि वे उसके पति को गिरफ्तार नही कर सकते। उसका पति कभी ग्रपराधी नही हो सकता। वह बेचारा तो किसी ग्रौरत की तरफ ग्राख उठाकर भी नहीं देखता। वह गौ की तरह ग्रसील ग्रौर सौ शरीफो का एक शरीफ है।

यहा तक ग्राकर सुन्दरसिंह को लगा कि सिलसिला गलत हो गया है। इस तरह पुलीस के हाथो से भागवन्ती उसे बचा ले, तब तो वह उसके सामने ग्रौर भी हीन हो जाएगा। ग्रौर वह चाहता यह है कि भागवन्ती के दिल पर इस बात का सिक्का बैठ जाए कि वह मिट्टी का माधो नही है, एक दिल ग्रौर गुर्देवाला खालिस ग्रादमी है; यह ग्रौर बात है कि वह ग्रपने दिल को उससे मुहब्बत करने के लिए राज़ी नही कर पाता। इसलिए पुलीस के ऊपर ग्राने के बाद की बात

...ता हुआ कहता है कि सरदारजी, चलो चलकर हस्पताल की हवा खाओ तो वह भागवन्ती पर एक गहरी नज़र डालकर हाथ आगे कर देता है। भागवन्ती पास आकर उसकी बाँह पकड़ लेती है।

"हाय सरदारजी," वह रोती आवाज़ में कहती है, "ये लोग आपको कहाँ लिये जा रहे हैं? हाय मैं आपके बिना अकेली घर में कैसे रहूँगी?"

सुन्दरी भागवन्ती को बाँह से पकड़कर परे हटा देती है और कहती है कि [illegible] नहीं की पहु? बुरे काम करने से रोकती, अब क्यों रोती है? भागवन्ती कोने में जाकर फफक-फफककर रोने लगती है और सुन्दरी पलंग के नीचे से उसके जूते निकालकर उसके आगे रख देती है, और अलमारी से उसकी पगड़ी निकालकर उसे दे देती है।

"सरदारजी, जूते पहन लो और पगड़ी बाँध लो, फिर इनको मनवाना," वह कहती है। वह इनको मनवाकर चलने के लिए तैयार हो जाता है तो सुन्दरी अलमारी से निकालकर एक रूमाल भी उसकी जेब में रख देती है।

"अच्छा, भागवन्ती, मैं जा रहा हूँ। घर का ख़याल रखना," वह कहता है और सिपाहियों के साथ चल देता है। भागवन्ती रो-रोकर कहती रहती है कि सरदारजी, न जाओ, मुझे घर में अकेली छोड़कर न जाओ, हाय मैं आपके पीछे घर में अकेली कैसे रहूँगी? वे लोग सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आते हैं तो पुलीस की गाड़ी का ड्राइवर उसके लिए दरवाज़ा खोल देता है—और उसे एक बार फिर अपने दिमाग़ के ओनिया की बात पर विश्वास हो उठता है कि उसने जो तमाशा उसे दिखाया था वह किसी हद तक तो पूरा हो ही गया।

पुलीस की गाड़ी में बैठ जाने के बाद सुन्दरसिंह की कल्पना आगे काम नहीं कर सकी। उसने एक-दो बार करवट बदली और सीधा हो गया। भागवन्ती चूल्हा बुझा रही थी। पानी पड़ने से लकड़ियों से सी-सी की आवाज़ निकल रही थी। गली में कोई आहट सुनाई नहीं दे रही थी। वह उठकर सीढ़ियों के पास चला गया और कुछ क्षण नीचे की तरफ़ देखता रहा। फिर उसने भागवन्ती को आवाज़ देकर कहा कि वह बाहर जा रहा है और पैरों से आवाज़ करता हुआ सीढ़ियाँ उतरने लगा। उसे आशा थी कि शायद भागवन्ती उसे पीछे से आवाज़ दे कि उसे जाना है तो रोटी खाकर जाए, मगर भागवन्ती ने उसकी आवाज़ का

उत्तर भी नहीं दिया और बुझी हुई लकड़ियों को कोने मे फेंकती रही।

सुन्दरसिंह गली से निकलकर बाजार मे आया तो ज्यादातर दुकानें बन्द हो चुकी थी। वह घूमता हुआ अपने होटल की तरफ चला गया। होटल मे कोई गाहक नही था। बैरे सामान सभालकर वहा से चलने की तैयारी कर रहे थे।

"सरदारजी, अब सिरदर्द ठीक है ?" हरदित्तसिंह बैरे ने पूछा।

"हा ठीक है," कहकर सुन्दरसिंह ने खाली मेज-कुर्सियो पर एक नजर डाली और पूछा कि उसके पीछे कोई उसे पूछने के लिए तो नहीं आया।

"नहीं सरदारजी, कोई नही आया," हरदित्तसिंह ने उत्तर दिया।

"कोई भी नही आया ?" उसने फिर पूछा।

"नहीं।"

सुन्दरसिंह दाढ़ी के बाल बैठाता हुआ होटल से निकल आया और कुछ देर सड़को के चक्कर काटता रहा। वह कम्पनी बाग से होकर ट्रेनिंग कालेज की तरफ निकल गया। उधर से लौटते हुए वह हौसला करके पुलिस की चौकी की तरफ भी हो आया। उसके अलावा जैसे दुनिया मे किसीको खयाल ही नही था कि आज सुन्दरी-कांड के अभियुक्तों की गिरफ्तारिया हुई हैं और हो रही हैं। हर जगह शान्ति और खामोशी छाई थी। घर की ओर लौटते हुए वह दैनिक 'लोक समाचार' के कार्यालय के सामने से गुजरा। अन्दर छापे की मशीनें घरड़-घरड़ कर रही थीं। उसने सोचा कि वे मशीनें उस समय शायद वही खबर छाप रही हों—सुन्दरी-काड में पन्द्रह सम्भ्रान्त व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गए। सुबह सारे प्रदेश मे लोग उन गिरफ्तारियो की चर्चा कर रहे होंगे। गिरफ्तार हुए व्यक्तियो के नाम हरएक की जबान पर होंगे। शायद कुछ एक के फोटो भी छपें। महीनो तक वे लोग जनता की आंखों मे रहेंगे। बहुत-से लोग दिन ही दिन उनसे रश्क भी करेंगे। मगर सुन्दरसिंह तलवाड़ का नाम उनमें नही होगा। उसने एक लम्बी सांस ली। मन मे अजब बेचैनी भर गई। वह स्वयं नहीं समझ सका कि अभियुक्त करार न दिए जाने से उसके मन को तसल्ली मिली है या निराशा हुई है। वह कुछ देर मशीनो की धावाज सुनकर घर की तरफ चल दिया।

गली मे दाखिल होने से पहले उसे आशा थी कि शायद उसके घर के बाहर हंगामा हो रहा हो, घर की तलाशी हो रही हो और भागवन्ती को डरा-धमकाकर पूछा जा रहा हो कि उसने पति को कहां छिपा रखा है या वह घर से भागकर

...हो गया है। परन्तु गली जितनी उसके जाने के समय सुनसान थी, उतनी ही सुनसान अब भी थी। उसके कमरे की बत्ती, जो वह जलती छोड़ गया था, अब बुझी हुई थी।

"भागवन्ती!" उसने गोड़िया पकड़कर आवाज़ दी।

भागवन्ती सिर-मुंह ओढ़कर लेटी हुई थी। उसने कुनमुनाकर धीरे से कहा कि रोटी छिक्के में रखी है, अगर वह होटल से ही पेट भरकर न आया हो, तो वहां से निकालकर खा ले।

सुन्दरसिंह के मन की खीझ गुस्से में बदल गई। उसने अपने पलंग पर बैठकर जूते झटककर उतार दिए और कहा, "तुझे रोटी की पड़ी है? यहां चाहे किसी-की जान की बनी हो, तुझे क्या परवाह है?"

भागवन्ती धीरे-धीरे उठ गई, मगर सिर-मुंह लपेटे अपने पलंग पर ही बैठी रही।

"जान को क्या बनी है?" उसने पूछा, "फिर पैसे जुए में हार आए हो?"

"हां, मैं रोज़ जुआ खेलता हूं न!" सुन्दरसिंह बड़बड़ाया, "यहां यह नहीं पता कि घड़ी में क्या हो पल में क्या हो, और इसे बातें बनाने की सूझ रही है।"

"तो ऐसा क्यों कर आए हो जो तुम्हें पता नहीं कि घड़ी में क्या हो और पल में क्या हो?" भागवन्ती अब भी ठहरे हुए उदासीन स्वर में बोली, "किसी-का खून कर आए हो?"

"हां, अपना खून कर आया हूं!" सुन्दरसिंह उसी तरह गुस्से में बोला और पगड़ी उतारकर शीशे के सामने चला गया। वहां खड़े-खड़े उसने कहा कि पता नहीं किस समय पुलीस उसे पकड़कर ले जाए, इसलिए वह अब घर-बार ठीक से संभाल ले।

"क्यों, पुलीस को तुम्हें किसलिए पकड़ने आना है?" भागवन्ती अब वास्तव में घबराकर बोली, "होटल से बोतलें-ओतलें तो नहीं पकड़ी गईं?"

सुन्दरसिंह थोड़ा प्रसन्न हुआ कि अब उसका तीर निशाने पर जा लगा है।

"तुझे पता नहीं आज शहर में गिरफ्तारियां हो रही हैं?" उसने फिर भी खीझ बनाए रखते हुए कहा।

"कैसी गिरफ्तारियां?"

"कैसी गिरफ्तारियां ?" सुन्दरसिंह अपने पलंग पर लौट आया। "गिरफ्तारियां कैसी होती हैं ? पुलीस उन सब लोगों को हथकड़ियां लगा रही है जिनके नाम वह लड़की उन्हें बता रही है।"

"कौन लड़की लोगों के नाम पुलीस को बता रही है ?" भागवन्ती की घबराहट जाती रही और उसके स्वर में भी झुंझलाहट भर गई, "आज फिर पी-पिला आए हो ?"

"सारी दुनिया आज सुन्दरी की चर्चा कर रही है और इसे मैं बताऊं कि वह कौन है !" सुन्दरसिंह ने महत्त्व के भाव से बाहें पीछे कर लीं, "मैं कह रहा हूं कि घर संभाल ले, हो सकता है कि रात को ही पुलीस यहां छापा मार ले।"

"मगर पुलीस को हमारे यहां किस बात के लिए छापा मारना है ?" भागवन्ती उसे गौर से देखने लगी कि वह ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कह रहा है।

"वह मेरा नाम पुलीस को बता देगी तो पुलीस यहां छापा मारेगी कि नहीं ?" सुन्दरसिंह ने सोचा कि अब उसने बात खोल दी है तो भागवन्ती रोना-पीटना आरम्भ कर देगी। मगर भागवन्ती उसी तरह स्थिर बैठी रही।

"उसे तुम्हारे नाम से क्या मतलब है ?" उसने पूछा।

सुन्दरसिंह ने मुश्किल से अपनी मुस्कराहट को दबाया और कहा, "वह एक दिन यहां आई जो थी।"

परन्तु यह देखकर सुन्दरसिंह को सख्त निराशा हुई कि उसके ब्रह्मास्त्र का भी भागवन्ती पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि भागवन्ती की आंखों का भाव तिरस्कार-पूर्ण हो उठा।

"रहने दो सरदारजी," उसने कहा, "मन के लड्डू मत फोड़ो। उसे आप ही के पास तो आना था ! जाओ जाकर रोटी खा लो। और नहीं खानी है तो बत्ती बुझाकर सो रहो। सारी उम्र बीत गई आपको सपने देखते।"

"तू मत मान⋯", सुन्दरसिंह ने उलझे हुए मगर शिथिल स्वर में कहा, "मैं तो आप कहता हूं कि मुझसे गलती हुई है। मगर जो गलती होनी थी सो हो गई। तू घर की देखभाल⋯।"

"बस करो सरदारजी, बस करो," भागवन्ती ने उसकी बात बीच में ही काट दी और सिर-मुंह ओढ़कर लेटती हुई बोली, "खामखाह की बातें करके

क्यों जबान मोटी करते हो ? उठकर बत्ती बुझा दो, मुझे नींद आ रही है।"
और उसने करवट बदलकर उसकी तरफ पीठ कर ली।

सरदार सुन्दरसिंह का मन बुरी तरह खीझ गया और वह उठकर कमरे में टहलने लगा। उसने एक बार मेज़ का दराज खोलकर बन्द कर दिया। फिर पलंग को थोड़ा आगे को सरका दिया। खिड़की के पास खड़ा होकर वह फिर नीचे देखने लगा। वही नीरवता छाई थी। उसके मन की बेचैनी बढ़ गई। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे या करे जिससे भागवन्ती को विश्वास हो जाए कि वह जो कह रहा है वह सच है और एक बार वह माथे पर हाथ मार-मारकर रो उठे। मगर बहुत सोचकर भी कोई तरीका उसकी समझ में नहीं आया। हवा का एक ठंडा झोंका लगने से वह खिड़की के पास से हट आया। भागवन्ती तब तक ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे भरने लगी थी। उसने हिंस्र पशु की-सी आँखों से भागवन्ती के सोए शरीर को देखा और बत्ती बुझाकर चौके में चला गया।

पांचवें माले का फ्लैट

आवाज़ ठीक सुनी थी। साफ़ नाम लेकर पुकारा गया था, "अविनाश !"

पर सोचा, ग़लतफ़हमी हुई है। पुकारने को राह-चलती भीड़ में कोई भी पुकार सकता है, पर यहां इस नाम से जानता कौन है ? जो भी जानता है, घिसे-पिटे दफ़्तरी नाम से ही जानता है। ए० कपूर के ए० को कोई गिनती में नहीं लाता। ए० का मतलब अविनाश है या अशोक, यह जानने की ज़रूरत किसी को नहीं। कामकाजी ज़िन्दगी के सब काम कपूर से चल जाते हैं। जो अधूरापन रहता है, वह मिस्टर या साहब से पूरा हो जाता है। 'क्या हालचाल है, मिस्टर कपूर ?' 'कहिए, कपूर साहब, क्या हो रहा है आजकल ?'

मगर नाम साफ़ सुना था…

भीड़ बहुत थी। सोचा इसलिए ग़लतफ़हमी हुई होगी। या इसलिए कि फ़रवरी की हवा में बसन्त की हल्की ताज़गी महसूस हो रही थी। जाने कैसे ? यों तो सिवाय गर्मी और बरसात के इस शहर में मौसम का पता ही नहीं चलता। आसमान बादलों से न घिरा हो, तो हल्का सफ़ेदी बना रहता है। बरसों के इस्तेमाल से उड़ा-उड़ा फीका-फीका-सा एक रंग नज़र आता है। हवा चलती है, तो खूब तेज़ चलती है, नहीं चलती, तो नहीं ही चलती—समुद्र के ज्वार-भाटे का-सा अन्दाज़ रहता है उसका। दिन और रात में भी ज़्यादा फ़र्क नहीं होता—सिवाय अंधेरे और रोशनी के। जहां दिन में अंधेरा रहता है, वहां रात

को रोशनी हो जाती है; जहां दिन में रोशनी रहती है, वहां रात
जाता है। खाना न इस मौसम मे पचता है, न उस मौसम मे। मगर
वह शाम अपने मे कुछ अलग-सी थी। हवा में वसन्त का हल्का आभा
और पश्चिम का आकाश भी और दिनों से सुन्दर लग रहा था। साढ़े
बजते धूप भी लग आई थी। मैं राह-चलते लोगों को देख रहा था
मछलियों की बात सोच रहा था। मन हो रहा था कि कहीं अच्छी करारी
मिल जाए, तो पांच पैसे की ले ली जाए।

पुकारा किसीने अविनाश को ही था। अपने लिए विश्वास इसलि
नहीं हुआ कि आवाज़ किसी लड़की की थी—लड़की की या स्त्री की।
फर्क होता है, मगर बहुत नहीं। इतने महीन फर्क को समझने के लिए
अभ्यास की ज़रूरत है।

बम्बई शहर और मैरीन ड्राइव की शाम। ऐसे में अपने को पुकारे
लड़की! होने को कुछ भी हो सकता है, पर अपने साथ अक्सर नहीं होता।

जैसे चल रहा था, दस-बीस कदम और चलता गया। मुड़कर पीछे न देखता
तो न भी देखता। पर अचानक, यों ही, उत्सुकतावश कि जाने अपने को ही
किसीने पुकारा हो, घूमकर देख लिया। एक हाथ को अपनी तरफ हिलते देखा,
तो अविश्वास और बढ़ गया। बढ़ने के साथ ही अचानक दूर हो गया। चेहरा
बहुत परिचित था। पहचानने में उतनी देर नहीं लगी जितनी कि चेहरे से ज़ाहिर
थी। दरअसल हैरानी यह हुई कि वह फिर से यहां कैसे!

भेल और नारियलवालों से बचता हुआ उसकी तरफ बढ़ा। आवाज़ देने
के बाद वह ज़रा-सी-न्हरा रुक गई थी। उसके बाद उसे पहचानने और उस तक
पहुंचने की सारी ज़िम्मेदारी जैसे मेरे ऊपर हो। पास पहुंच जाने पर भी अपनी
जगह से एकदम नहीं हिली। दूर था, तो बन्द होंठों से मुसकरा रही थी; पास
पहुंचा तो खुले होंठों से मुसकराने लगी, बस। भौंहों पर आई-सी सेंगिन की
गहराई को चमकाती हुई बोली, "पहचाना नहीं?"

कैसे कहता कि सवाल बेवकूफाना है? न पहचानता तो इतना रास्ता चलकर
आता? सिर्फ इतना कहने के लिए कि 'माफ कीजिएगा, मैंने आपको पहचाना
नहीं।' कौन सीम गर्द चलकर आता है?
ना ही

वह हंस दी, जाने आदत से या खुशी से। मैं मुसकरा दिया बिना किसी भी वजह के।

"पहले से काफी बड़े नजर आने लगे हो," उसने कहा और अपना पर्स हिलाने लगी। शायद साबित करने के लिए कि वह खुद अभी उतनी ही शोख और कमसिन है। पहले सोचा कि उसे सच-सच बता दूं कि वह कैसी नजर आती है। पर शराफत के तकाजे से वही बात कह दी जो वह सुनना चाहती थी, "तुममें इस बीच खास फर्क नहीं आया।"

वह फिर हंस दी। मैं फिर मुसकरा दिया, पर इस बार बिना वजह के नहीं।

उसने पर्स हिलाना बन्द कर दिया और उसमें से मूंगफली निकाल ली। कुछ दाने मुंह में डाल लिए और बाकी मेरी तरफ बढ़ाकर बोली, "अब तक अकेले ही हो?"

जल्दी में कोई जवाब नहीं सूझा। पहले चाहा कि झूठ बोल दूं। फिर सोचा कि सच बता दूं। मगर मन ने झूठ-सच दोनों के लिए हामी नहीं भरी। वहीं से यह घिसी-पिटी बात लाकर जबान पर रख दी, "अकेला तो वह होता है जो अकेलेपन को महसूस करे।"

उसे पर्स में और दाने नहीं मिल रहे थे। कुछ देर इधर-उधर टटोलती रही। किसी कोने में दो-चार दाने हाथ लग गए, तो उसकी आंखें खुशी से चमक उठीं, निकालकर एक-एक करके चबाने लगी।

उसके दांत अब भी उसी तरह तीखे थे। मूंगफली निगलते हुए गरदन पर उसी तरह लकीरें बनती थीं। "अच्छा है, तुम महसूस नहीं करते," उसने कहा और दाने चबाती रही।

मैं उसका नाम याद करने की कोशिश कर रहा था। बहुत दिन वह नाम जबान पर रहा था। ऐसे नामों में से था, जो कि बहुत-सी लड़कियों का होता है। हर तीसरे घर में उस नाम की एक लड़की मिल जाती है। उन दिनों, छः-सात साल पहले, लगातार बीस-बाईस दिन उन लोगों से मिलना-जुलना रहा था। वे दो बहनें थीं, हालांकि शक्ल-सूरत में कहीं भी नहीं लगती थीं। बड़ी के चेहरे की हड्डियां चौकोर थीं, छोटी के चेहरे की गोलाकार। रंग दोनों का गोरा था, मगर छोटी ज्यादा गोरी लगती थी। आंखें दोनों की बड़ी-बड़ी थीं, मगर छोटी की ज्यादा बड़ी जान पड़ती थीं। बातूनी दोनों ही थीं, पर छोटी

का बातूनीपन असरता नहीं था। छोटी का नाम था प्रमिला, उर्फ़ पामी, उर्फ़ मिस पी०। और बड़ी का नाम था कि याद ही नहीं आ रहा था। जिन दिनों उनसे परिचय हुआ, बड़ी की शादी होकर तलाक़ हो चुका था। इसलिए वह ज़्यादा बचपने की बातें करती थी। हर बात में दस बार अपना नाम लेती थी। "मैंने अपने से कहा, सरमा···" हाँ, सरमा नाम था। कहा करती थी, "मैंने कहा, सरमा, तू हमेशा इसी तरह बच्चों-की-बच्ची ही बनी रहेगी।"

अपना नाम उसे पसन्द नहीं था, क्योंकि स्पेलिंग बदलकर उसमें मॉडेर्निज़्म नहीं लाई जा सकती थी। प्रमिला कभी 'ए०' को 'ओ०' में बदलकर प्रोमिला हो जाती थी, कभी 'आर' ड्रॉप करके पामेला बन जाती थी। इसे प्रमिला से इस बात की भी जलन थी कि वह अभी क्वाँरी क्यों है। मिलने-जुलनेवाले लोग बातें इससे करते थे, ध्यान उनका प्रमिला की तरफ़ रहता था।

"प्रमिला के

अपना पल्ला कन्धे से सरक जाने दिया। उंगलियां इस तरह ब्लाउज के बटनों पर रख लीं जैसे उन्हें भी खोल देना हो। "आज गरमी बहुत है," यह इस तरह कहा जैसे शहर का तापमान ठीक रखने की जिम्मेदारी बात सुननेवाले पर हो। फिर शिकायत का दूसरा पहलू पेश किया, "दिल्ली में फरवरी का महीना कितना अच्छा होता है!"

वह मुकाम आ गया था जहां 'अच्छा, फिर मिलेंगे' कहकर एक-दूसरे से अलग हो जाना होता है। चाहता तो मैं खुद ही कह सकता था, पर तकल्लुफ में उसके कहने की राह देखता रहा। उसने भी नहीं कहा। उसका शायद इस तरफ ध्यान ही नहीं गया। बेतकल्लुफी से उसने मेरी कुहनी अपने हाथ में ले ली और बोली, "चलो, फ्लोरा फाउण्टेन चलते हैं। पम्मी ने कहा था, आठ बजे मैं उसे वोल्गा के बाहर मिल जाऊं। तुम्हें साथ देखकर उसे बहुत खुशी होगी।"

पम्मी को पहचानने में थोड़ी दिक्कत हुई—मतलब मुझे दिक्कत हुई। वह तो जैसे देखने से पहले ही पहचान गई। "ओह!" उसने चौंककर कहा, "अविनाश, तुम! बम्बई में ही हो तब से?"

उसके चेहरे का सलीब जाने कहां गुम हो गया था। गालों में इतनी गोलाई भर आई थी कि हड्डियों का कुछ पता ही नहीं चलता था। सिर्फ ठोडी का गड्ढा उसी तरह था। बाहें वजन में पहले से दुगनी नहीं, तो ड्योढ़ी जरूर हो गई थीं। बाकी सब साइज साड़ी में ढके हुए थे। हर लिहाज से बड़ी बहन अब वही लगती थी।

बोलना चाहा, तो जल्दी में जबान नहीं हिली। हाथ एक-दूसरे में उलझकर रह गए। अपना खड़े होने का ढंग बिल्कुल गलत जान पड़ा। "हां, यहीं हूं," इस तरह कहा कि खुद अपने को हंसी आने को हुई। पर वह सुनकर सीरियस हो गई।

कोफ्त हुई कि क्यों तब से यहीं हूं। कोई भला आदमी इतने साल एक शहर में रहता है? कहीं और चला गया होता, तो वह इतनी सीरियस तो न होती।

"उसी फ्लैट में?" उसने दूसरा नजला गिराया। एक शहर में रहे जाना किसी हद तक बरदाश्त हो सकता है, मगर उसी फ्लैट में बने रहना हरगिज

नहीं । खास तौर से जब फ्लैट उस तरह का हो…

समझ में नहीं आ रहा था कि किस टांग पर वजन रखकर बात क… ही टांगें गलत लग रही थीं । पहनी हुई पतलून भी गलत लग रही थी । … चीज ठीक नहीं थी । पहले पता होता, दूसरी पतलून पहनकर आता । कम… बीच का बटन टूटा हुआ था । पता होता तो बटन लगा लिया होता । … कहना मुश्किल लगा कि हां, अब तक उसी फ्लैट में हूं । सिर्फ सिर हिला …

'उसी पांचवें माले के फ्लैट में ?" पता नहीं, उसे जानकर खुशी हु… बुरा लगा । यह शिकायत उससे उन दिनों भी थी । उसकी खुशी और नारा… में फर्क का पता ही नहीं चलता था ।

जेब में ढूंढ़ा, शायद चारमीनार का कोई सिगरेट बचा हो । नहीं थ… अनजाने में दियासलाई की डिबिया जेब से बाहर आ गई, फिर शर्मिन्दा होक… वापस चली गई । "हां, उसी फ्लैट में," किसी तरह लफ्ज़ों को मुंह से धकेल… और सूखे होंठों पर ज़बान फेर ली । होंठ फिर भी तर नहीं हुए ।

"अब भी उसी तरह पांच मंज़िल चढ़कर जाना पड़ता है ?" बार-बार कुरेदने में जाने उसे क्या मज़ा आ रहा था । शायद चुइंग-गम नहीं थी, इसलिए मुंह चलाने के लिए ही पूछ रही थी । उन दिनों चुइंग-गम बहुत खाती थी । कभी प्यार से मुंह बनाती, तो भी लगता चुइंग-गम की वजह से ऐसा कर रही है । चेहरे का सलीब उससे और लम्बा लगता था । मैंने एकाध बार मज़ाक में कहा था कि वह बबल-गम खाया करे, तो उसका चेहरा गोल हो जाएगा । उसने शायद इस बात को सीरियसली ले लिया था ।

"हां," मैंने मार-खाये स्वर में कहा, "बिना चढ़े पांचवीं मंज़िल पर कैसे पहुंचा जा सकता है ?"

"सोच रही थी कि शायद अब तक लिफ्ट लग गई हो ।"

…बहुत गुस्सा आया । लिफ्ट जैसे बाहर से लग जाती हो, या छतें फाड़कर …गाई जा सकती हो । लगनी होती तो शुरू से ही न लगी होती ? कितनी… …ी परेशानियां उससे बच जाती । कम से कम उस एक दिन की घटना तो… …होने से बच ही सकती थी ।

"जब तक मकान न टूटे, लिफ्ट कैसे लग सकती है ?" अपनी तरफ से बड़ा …बनकर कहा । सोचा कि अब वह इस बारे में …

उसने फिर भी पूछ ही लिया, "तो तुमने जगह बदल क्यों नहीं ली ?"

पीठ में खुजली लग रही थी, पर उसके सामने खुजलाते शरम आ रही थी। कमर और कन्धों को ऐंठकर किसी तरह अपने पर काबू पाए रहा। "ज़रूरत ही नहीं समझी," पीछे जाते हाथ को वापस लाकर कहा, "अकेले रहने के लिए जगह उतनी बुरी नहीं।"

वह थोड़ा शरमा गई, जैसे कि बात मैंने उसे सुनाकर कही हो। गोल चेहरे पर झुकी-झुकी आँखें बहुत अच्छी लगीं। पहले उसकी आँखें इस तरह नहीं झुकती थीं। "अब तक शादी नहीं की ?" हाथ के पैकेटों की गिनती करते हुए उसने पूछा। आवाज़ से लगा, जैसे बहुत दूर चली गई हो। सवाल में लगाव ज़रा भी नहीं था। हैरानी, हमदर्दी कुछ नहीं। उत्सुकता भी नहीं। ऐसे ही जैसे कोई पूछ ले, 'अब तक दांत साफ नहीं किए ?'

मन छोटा हो गया। अफसोस हुआ कि अपने अकेलेपन का ज़िक्र क्यों किया ? क्यों नहीं वक्त निकल जाने दिया ? अब जाने वह क्या सोचेगी ? जाने उसकी वजह से ···या जाने उस फ्लैट की वजह से···

पर अब चुप रहते बनता नहीं था। झक मारकर कहना पड़ा, "करनी होती तो तभी कर लेता।"

उसने जिस तरह देखा, उसके कई मतलब हो सकते थे—तुम झूठ बोलते हो, तुममें किसीने की ही नहीं, या कि देखती तुम किससे करते, या कि सच अगर तुम्हारी बिल्डिंग में लिफ्ट लगी होती···

"अब भी क्या बिगड़ा है ?" वह अपने पैकेटों को सहेजती हुई बोली, "अभी इतने ज्यादा बड़े तो नहीं हुए कि···" अचानक बड़ी बहन ने आकर उसे बात पूरी करने से बचा लिया। वह इस बीच न जाने कहाँ गुम हो गई थी। मुझे याद भी नहीं था कि वह साथ में है। आते ही उसने हाथ झाड़कर कहा, "कहीं नहीं मिली।"

हमने हैरानी से उसकी तरफ देखा। उसने मुँह बिचका दिया। "सारे बाज़ार में नहीं मिली।"

"क्या चीज़ ?"

"मूंगफली, भुनी हुई मूंगफली। पता होता तो मैरीन ड्राइव से खरीद लाती।"

फुटपाथ। पेडेस्ट्रियन क्रॉसिंग। डोंट क्रॉस। क्रॉस नाउ।
पैकेट लिए-लिए दो लड़कियों के आगे-पीछे चलना। (लड़कियाँ—मुविधा के लिए, उन दिनों की याद में) उन दोनों का आगे या पीछे रहना। बीच में आपस में बात करना। हंसना। प्रमिला का कहना, "दीदी, तुम्हारा जवाब नहीं।" दीदी का मुंह खोले आंखों से मुझसे कॉम्प्लिमेंट चाहना। कहना, "आज शाम कितनी अच्छी है!" मेरा तारमान को याद रखना। खिसियानी हंसी हंसना। बोलने के वक्त चुप रहना, चुप रहने के वक्त बोल पड़ना। हंसी की बात में सीरियस रहना, सीरियस बात में मुसकरा देना। सामने से आते परिचितों का मतलब-भरी नजर से देखना। किसीको आंख मारना, किसीको रोककर पूछ लेना, "मजे हो रहे हैं, मजे!"
जाने कैसा-कैसा लगा। जैसे बरसों से वे पैकेट उठाए हों। बरसों से वही फुटपाथ पैरों के नीचे हो। वही पेडेस्ट्रियन क्रॉसिंग सामने हो। डोंट क्रॉस। क्रॉस नाउ। बरसों से वह कह रही हो, "दीदी, तुम्हारा जवाब नहीं।" पास से कोई पूछ रहा हो, "मजे हो रहे हैं, मजे?"
एक मूंगफली वाला झरोखे के पास दिखाई दे गया। सरला फ्रेम के नीचे निकलकर सीधी उसकी तरफ चली गई। झपटती हुई जैसे कि उसके भाग का डर हो। दो-एक कार वालों को ब्रेक लगानी पड़ी। एक ने मुड़कर मेरी देख लिया। मैं दम साधे नाक की सीध में चलता रहा। प्रमिला ने चलते-चलते पूछ लिया, "इस तरह खामोश क्यों हो?"

"खामोश ! नही तो ।" कहकर मैं सीटी बजाने लगा।

"हमने तुम्हें बोर तो नहीं किया ?"

अपने पर गुस्सा आया, क्यो उसे ऐसा महसूस करने दिया ? क्यो नही कुछ न कुछ बात करता रहा ? कितनी ही बार सोचा था कि उनसे कहीं चलकर चाय पीने को कहूं। पर डर था कि पैसे कम न पड़ें। पहले पता होता तो किसीसे उधार माग लेता या पहली तारीख को बचाकर रखता। हमेशा जरूरत के वक्त ही पैसे कम पडते थे। तब भी तो यही हुआ था। उस दिन ताश मे पैसे न हारे होते···

सरला ने मूगफली लेकर बटुए मे भर ली थी। अब एक-एक दाना निकालकर खा रही थी। बीच-बीच मे हम लोगो की तरफ देख लेती थी, जैसे हम लोग रनर्ज-अप हों। इससे पहले कि हम लोग पास पहुचे, वह अगली सड़क भी क्रॉस कर गई। एलिनालिया के बाहर खडी होकर मूंगफली चबाने लगी। जब तक हम वहा आए, वह चर्चगेट के बाहर पहुच गई।

प्रमिला गम्भीर हो गई थी। शायद पैकेटों के बोझ से। गोरी-गदराई बांहें लाल हो आई थीं। पलकें भारी लग रही थीं, जैसे नीद आई हो। "अब किधर चलना है ?" सरला के पास पहुंचकर उसने पूछा, जैसे कह रही हो—'क्यों मुझे खामख्वाह साथ घसीट रही हो ?'

"बैक होम," सरला ने पटाख से जवाब दिया, जैसे पूछने, बात करने की जरूरत ही नहीं थी, जैसे यहीं तक लाने के लिए मुझसे पैकेट उठवाए गए थे।

"पैकेट ले लें ?" प्रमिला ने गहरी नजर से उसे देखा। उसने आखें झपक दीं। साथ ही कहा, "बेचारे को और कितना थकाएगी ?"

मन हुआ कि एकाध पैकेट हाथ से गिर जाने दू, ऐसे कि बडी को झुककर उठाना पड़े। पर अचानक शरीर मे झुरझुरी दौड़ गई। पैकेट लेने-लेने मे प्रमिला का हाथ बाह से छू गया था। अच्छा लगा कि आस्तीन चढ़ा रखी थी, वरना झुरझुरी न होती। पैकेट बहुत संभालकर देने की कोशिश की। काफी वक्त लिया कि शायद फिर से उसका हाथ बाह से छू जाए। मगर नही हुआ। इससे आखिरी पैकेट सचमुच हाथ से छूट गया। प्रमिला ने आंखें मूंद लीं। जाने उसमे कौन-सी नाजुक चीज बन्द थी।

गिरा हुआ पैकेट खुद ही उठाना पडा। टटोलकर देखा कि कुछ टूटा तो नही। कोई टूटनेवाली चीज नहीं लगी। शायद कपड़ा था। "आई एम सॉरी,"

पैकेट उसे दे। हाथ बढ़ा। सोचा, शायद इस बार हाथ में हाथ छू जाए मगर
छुआ। वह पैकेट लेकर उसपर से धूल झाड़ने लगी।

"कुछ टूटा तो नहीं?" मैंने पूछा।

उसने सिर हिला दिया, जैसे टूटने पर भी नज़ाकत के मारे इन्कार कर रह
हो। फिर पैकेट को बच्चे की तरह छाती से चिपका लिया। मन हुआ कि मैं भी
दो उंगलियों से उसे बच्चे की तरह सहला दूं। पुचकारकर कहूं, "क्यों बबलू, तोड़
तो नहीं सकी?"

"चलें?" प्रमिला ने बड़ी की तरफ देखा। बड़ी ने कलाई की घड़ी की तरफ
देखा। फिर स्टेशन की घड़ी की तरफ देखा। फिर मैरीन ड्राइव से आती
गाड़ियों पर एक नज़र डाली। फिर सांस भरकर तैयार हो गई। "आओ,
चलें।"

कुछ सेकण्ड और गुज़र गए। इस दुविधा में कि पहले कौन चले, वे खामोश
मुझे देखती रहीं। मैं उन्हें देखता रहा। अचानक बड़ी मुड़कर अन्दर को चल
दी। "हाय, फास्ट गाड़ी जा रही है," उसने लगभग दौड़ते हुए कहा।

छोटी ने चलते-चलते एक बार और देख लिया। आंखें हिलाईं। हाथों को
जोड़ने के ढंग से जुम्बिश दी। होंठों को कुछ कहने के ढंग से हिलाया। उसके
बाद इस तरह घिसटती हुई चली गई, जैसे चलाने वाली बिजली बड़ी के पैरों में हो।

कुछ देर वहीं खड़ा रहा। गाड़ी को जाते देखता रहा। फिर अपनी नंगी
बांह को सहलाता हुआ बस-स्टॉप पर आ गया।

पहली बस मिस कर दी। दूसरी भी मिस कर दी। तीसरी मिस नहीं कर
सका, क्योंकि स्टॉप पर अकेला रह गया था। दो सेकण्ड सोचता रहा। इससे
कण्डक्टर नाराज़ हो गया। फुटबोर्ड पर पांव रखा, तो उसने डांट दिया, "नहीं
जाना मंगता तो इदर ही खड़ा रहो न। बहुत अच्छा-अच्छा शक्ल देखने को
मिलता है।" मुझपर कोई असर नहीं हुआ तो वह बिना टिकट दिए आगे चला
गया। वहां से बार-बार मुड़कर देखता रहा, जैसे सोचता हो कि मैं उसे मनाने
ॱ।

एक लड़की के पास जगह खाली थी। मन हुआ बैठ जाऊं, मगर खड़ा रहा,
से देखता रहा। लड़की बुरी नहीं थी। खासी अच्छी थी। बाहें ज़रा दुबली
बस। शायद स्लीवलेस ब्लाउज़ की वजह से लगती थी। लोकट और

स्लीवलेस। उन दिनो प्रमिला भी ऐसे ही कपड़े पहनती थी। लोकट और स्लीवलेस। बाहे उसकी ऐसी दुबली नही थी। रोयें भी उनपर इतने नही थे। खामख्वाह मसल देने को मन होता था। उससे एक बार कहा भी था। वह सिर्फ अपना होंठ काटकर रह गई थी।

कण्डक्टर से नहीं रहा गया। खुद ही टिकट देने चला आया। उम्मीद अब भी थी उसे कि मैं माफी मागूंगा, या कम से कम मुसकरा दूंगा। मगर मैं मुसकरा नही सका। होंठ बहुत खुश्क थे। कण्डक्टर ने अपना गुस्सा टिकट पर निकाल लिया। इतने जोर से पंच किया कि उसका हुलिया बिगड़ गया।

घर से एक स्टॉप पहले, मेट्रो के पास उतर गया। सोचा, रात के शो का टिकट खरीद लू। टिकट मिल रहे थे मगर तीन-पचास के। एक-पिचहत्तर के बाहर 'सोल्ड आउट' का बोर्ड लगा था। तीन-पचास गिनकर जेब से निकाले, फिर वापस रख दिए। उस क्लास मे कभी गया नही था। दो मिनट क्यू मे खड़ा रहकर लौट आया।

हवा थी। गर्मी भी थी। सामने गिरगाव की सड़क थी। आसानी से वॉक कर सकता था। मगर घर आने को मन नही था। खाना खाने जाने को भी मन नहीं था। न ईरानी के यहा, न गुजराती के यहा, न ब्रजवासी के यहा। रोज तीनों जगह बदल-बदलकर खाता था। एक का जायका दूसरे के जायके से दब जाता था। पैसे अदा करने मे सहूलियत रहती थी। चेहरे भी नये-नये देखने को मिल जाते थे। शिकायत भी तीनों मे की जा सकती थी।

मगर तीनो जगह जाने को मन नही हुआ। कही और जाकर खाने को भी मन नही हुआ। भूख थी। दिनो बाद ऐसी भूख लगी थी। मगर जाने, बैठने और खाने को मन नही हुआ। अपने पर गुस्सा आया। कितनी बार सोचा था कि मक्खन-डबलरोटी घर मे रखा करूं। तरकारी-भरकारी भी वहीं बना लिया करूं। मगर सोचने-सोचने मे साल साल निकल गए थे।

सोचा, घर ही चलना चाहिए, पर कदम ही नही उठे। अधेरे जीने का खयाल आया। एक के बाद एक—पाँच माले। पहले माले पर सारी बिल्डिंग की सड़ांध। दूसरे पर खोपड़े की बास। तीसरे पर गुड़ और अनारदाने की बू। चौथे पर आयुर्वेदिक औषधियों की गन्ध।

पांचवें माले की बू का ठीक पता नहीं चलता था। प्रमिला ने तब कहा था

कि सबसे तेज़ बू यहीं है। सरला इससे सहमत नहीं थी। उसका कहना था
सबसे तेज़ गन्ध आयुर्वेदिक औषधियों की है।

कितनी ही देर वहां खड़ा रहा। सब जगहों का सोच लिया कि कहां-कह
जाया जा सकता है। कहीं जाने को मन नहीं हुआ। लगा कि सभी जगह बेगाना-
पन महसूस होगा। पुरी देखकर कहेगा, "आओ, आओ। और दस मिनट न
आते, तो हम लोग खाना खाकर घूमने निकल गए होते।" भटनागर शायद
अन्दर से आंखें मलता हुआ निकले और कहे, "अरे तुम, इस वक्त? खैरियत
तो है?"

सड़क पार कर ली। गिरगाव के फुटपाथ पर आ गया। प्रिंसेज़ स्ट्रीट के
क्रॉसिंग पर कुछ देर रुका रहा, फिर आगे चल दिया।

ईरानी के यहां से मक्खन और डबल रोटी ले ली। बिस्कुटों का एक पैके
भी खरीद लिया। कुछ रास्ता चलकर याद आया कि सिगरेट जेब में नहीं है
पनवाड़ी के यहां से दो डिबिया चारमीनार की ले लीं। फिर इस तरह आगे
चला जैसे घर पर मेहमान आए हों, जाकर उनकी खातिरदारी करनी हो।

सीढ़ियां गिनी हुई थीं, फिर भी गिनता हुआ चढ़ने लगा, जैसे फिर से गिनने
में फर्क आ सकता हो। संख्या एक सौ बीस से एक सौ सोलह-सत्रह पर आई
जा सकती हो। मगर चौबीस तक गिनकर मन ऊब गया। दूसरे माले से गिनना
छोड़ दिया।

उस दिन यहीं तक आकर प्रमिला ऊब गई थी। "अभी और कितने म
चढ़ना है?" उसने पूछा था।

"तीन माले और हैं," वह हिम्मत न हार दे, इसलिए एक माले का झू
ोल दिया था। खुद जल्दी-जल्दी चढ़ने लगा था कि तीसरे माले से पहले और
ात न हो। हाथों में चीज़ों को सम्भालना मुश्किल लग रहा था। खाने-पीने का
ितना ही सामान साथ लाया था—बिस्कुट, भुजिया, अण्डे, चिउड़ा। वहां
प पीने का सुझाव सरला का था। "इस तरह तुम्हारा फ्लैट भी देख लेंगे,"
ने कहा था।

प्रमिला शुरू से ही इस बात से खुश नहीं थी। वह पिक्चर देखना चाहती
-हैमलेट'। एक दिन पहले मैं उनसे यही कहकर आया था। खुद ही उनसे
ट' की तारीफ की थी। पचासेक रुपये एक दोस्त से उधार ले लिए थे, मगर

चालीस से ज्यादा उनके यहां ताश मे हार गया था — उनके भाई के पास, जोकि इस बीच सत्ती से सतीश हो गया था। शर्मा के यहां वे लोग ठहरे थे। उसीने उनसे परिचय कराया था। वह उस वक्त घर पर नही था। शाम की ड्यूटी पर गया था। वह होता तो और दस-बीस उधार ले लेता। जब उन दोनो को साथ लेकर निकला, जेब मे कुल छः रुपये बाकी थे।

उनके साथ ट्रेन मे आते हुए कई-कई बातें सोची कि कह दूं, भीड़ मे किसी-ने जेब काट ली है या किसी तरह पैर मे मोच ले आऊं या आठ बजे का कोई अपाइंटमेंट बता दू, पर कहते वक्त जो बात कही वह ज्यादा वज़नदार नहीं थी। कहा कि पिक्चर में बहुत रश है, आने वाले पूरे हफ्ते की सीटें बुक हो चुकी हैं।

प्रमिला को यही बुरा लग गया। वह एकाएक खामोश हो गई। सरला मुसकरा दी, "अच्छा ही है," उसने कहा, "तुम आज इतने पैसे हारे भी तो हो।"

इस बात ने काफी देर के लिए मुझे भी खामोश कर दिया।

तीसरे माले तक आते-आते प्रमिला हांफने लगी थी। आखो मे खास तरह की शिकायत थी। जैसे कह रही हो, 'पिक्चर नहीं चल सकते थे, तो यहा लाने की बात भी क्या टाली नहीं जा सकती थी?' सरला आगे-आगे जा रही थी और बार-बार उसकी तरफ देखकर हंस देती थी।

चौथे माले से पाचवें माले की सीढी पर मैंने कदम रखा, तो प्रमिला जहां की तहा ठिठक गई।

"अभी और ऊपर जाना है?" उसने पूछा। मुझे अपने झूठ पर अफसोस हुआ।

"यह आखिरी माला है," मैंने कहा। सरला एक बार फिर हंस दी। प्रमिला की आंखों मे रंगीन डोरे उभर आए। "कैसी जगह है यह रहने के लिए!" उसने बुदबुदाकर कहा और सरला की तरफ देख लिया, इस तरह जैसे सरला की बात अपने मुह से कह दी हो।

ऊपर पहुंचकर दरवाजा खोला, बत्ती जलाई। सब समान बिखरा पड़ा था, उससे कहीं बुरी हालत मे जैसे उन लोगों के आने के दिन पड़ा था। उस दिन तो कुछ चीजें फिर भी ठीक-ठिकाने से रखी थीं।

...उन लोगों के लिए चाय बनाने लगा था। सरला घूमकर कमरे की चीज़ों को देखती रही थी। "यह पलंग कब का है? मराठों के ज़माने का?... पढ़ने की मेज़ पर यह क्या चीज़ रखी है? साबुन की टिकिया? मैंने समझा पेपरवेट है..."

प्रमिला सारा वक्त खामोश खिड़की के पास खड़ी रही थी।

लौटने से पहले सरला दो मिनट के लिए गुसलखाने में गई, तो प्रमिला ने पहली बात कही, "टिकटों का पता पहले से नहीं कर सकते थे?"

कुछ जवाब देते नहीं बना। हारी हुई नज़र से उसकी तरफ़ देखता रहा। उसने फिर कहा, "मैं अपने लिए नहीं कह रही थी। वह पहले ही कितना कुछ कहती रहती है। अब घर जाकर पता है, क्या-क्या बातें बनाएगी?"

"मुझे इसका पता होता तो..."

"पता होना चाहिए था न!" उसका स्वर तीखा हो गया, "ज़रा-सी बात के लिए अब..."

तभी सरला गुसलखाने से आ गई। हंसते हुए उसने कहा, "यह गुसलखाना तो अच्छा-खासा अजायबघर है। मैं तो समझती हूं कि अन्दर जानेवालों से एक-एक आना टिकट वसूल किया जा सकता है..."

और प्रमिला हम दोनों से पहले बाहर निकलकर ज़ीने पर पहुंच गई थी।

मक्खन, डबलरोटी और बिस्कुट का डिब्बा मेज़ पर रख दिया। कुछ देर चुपचाप पलंग पर बैठा रहा, फिर शेल्फ से एक पुरानी किताब निकाल लाया। बहुत दिन उस किताब को सिरहाने रखकर सोया करता था। किताब प्रमिला से ली थी। उन्हीं दिनों एक बार उनके यहां से ले आया था। इसलिए नहीं कि पढ़ने का खास शौक था, बल्कि इसलिए कि अंदर प्रमिला का एक फोटो रखा नज़र आ गया था। प्रमिला जानती थी। जब किताब लेकर चला, तो वह मेरी आंखों में देखकर मुसकरा दी थी। तब परिचय शुरू-शुरू का था। वह अक्सर करती थी।

लौटाने गया था। तब पता चला कि वे लोग दो दिन पहले

. कितना-कुछ सोचकर गया था कि उससे उस दिन के लिए माफ़ी

मांगूंगा। कहूंगा कि अब फिर किसी दिन जरूर वे मेरे साथ पिक्चर का प्रोग्राम बनाएं···

उस दिन अपने कमरे को भी अच्छी तरह ठीक करके गया था। यह सोचा भी नहीं था कि वे लोग इतनी जल्दी वापस चले जाएंगे।

उनके आने से पहले ही शर्मा ने बात चलाई थी। कहा था कि देखकर बताऊं मुझे वह लड़की कैसी लगती है। यह भी कि वे लोग जल्दी ही शादी करना चाहते हैं।

बाद में उसने नहीं पूछा कि वह मुझे कैसी लगी। कभी उन लोगों का ज़िक्र ही नहीं किया।

किताब खोली। पुरानी फटी हुई किताब थी, पॉकेट-बुक सीरीज की। एक-एक वर्का अलग हो रहा था। वह फोटो अब भी वहीं था—चौवन और पचपन सफे के बीच। देखकर लगा, जैसे अब भी वह उसी नजर से देख रही हो, उसी तरह कह रही हो, "पिक्चर नहीं चल सकते थे, तो यहां खाने की बात भी क्या टाली नहीं जा सकती थी?"

फोटो हाथ में लेकर देखता रहा। फिर वहीं रखकर किताब बन्द कर दी। उसे पलंग पर छोड़कर उठ खड़ा हुआ। फिर पलंग से उठाकर मेज पर रख दिया और खिड़की के पास चला गया। बाहर वही छतें थीं, वही सूखते हुए कपड़े, वही टूटी-फूटी बच्चों की गाड़ियां, पुरानी कुर्सियां, कनस्तर, बोतलें···

लौटकर कुर्सी पर आ गया। कितनी ही देर बैठा रहा। फिर एकाएक उठकर किताब को हाथ में ले लिया। फिर वहीं रख दिया। अन्दर जाकर छुरी ले आया और डबलरोटी से स्लाइस काटने लगा। फिर आधे कटे स्लाइस को वैसे ही छोड़कर खिड़की के पास चला गया। वहां से, जैसे उसकी नजर से, कितनी देर, कितनी ही देर, अपने को और अपने कमरे को देखता रहा, देखता रहा।

तरफ घूमकर हल्की मुसकराहटो के बाद फिर सीधी हो गई। नीलिमा भारद्वाज को अपना नाम बुलाए जाने का एहसास तुरन्त नहीं हुआ। पर इससे पहले कि मिस मैथ्यू अगला नाम बुलाती, वह भटके के साथ बोल उठी, "प्रेज़ेंट, मिस!"

रजिस्टर बन्द करके मिस मैथ्यू ने किताब खोल ली। शिवजीत ने भी वह पन्ना खोलकर सामने रख लिया जहा से उन्हे पढाई करनी थी। मिस मैथ्यू की चीखती हुई पतली आवाज़ कमरे मे गूंजने लगी। शिवजीत ने कई बार कोशिश की कि सामने के शब्दो के साथ उस आवाज़ का सम्बन्ध जोडता चल सके। लेकिन छपे हुए शब्द उसे सिर्फ स्याही के छोटे-छोटे दाग नजर आ रहे थे और मिस मैथ्यू की आवाज़ लग रही थी जैसे वह छत के पंखे की 'हिचकू-हिचकू' और बाहर लॉन मे चिरती लकडी की 'सी-सा सी-सा' का ही एक हिस्सा हो। हाज़िरी का जवाब देने के बाद से उसके कान काफी सुर्ख हो गए थे। उस सुर्खी की आच उसे अपने गालो पर फैलती महसूस हो रही थी। पीठ और गरदन की गाठ पर जैसे छिपकली चिपक गई थी। उसने दो-एक बार गरदन ऊची करके उस छिपकली को झाड देने की कोशिश की। मगर इससे उसे लगा जैसे छिपकली गांठ के अन्दर घसती जा रही हो। वह आखें झपकता हुआ कुछ देर मिस मैथ्यू की तरफ देखता रहा, फिर किताब कुहनियो के बीच रखकर चेहरा हाथों पर टिकाए सामने के उलझे हुए शब्दो को अलग-अलग करने की कोशिश करने लगा।

शिवजीत अबरोल···।

उसके दिमाग में रोल-काल अब तक चल रही थी। वह रोल-काल हर बार विभूति श्रीवास्तव से शुरू होती थी और नीलिमा भारद्वाज पर आकर समाप्त हो जाती थी। हर बार शिवजीत अबरोल पर आकर मिस मैथ्यू की आखें पल-भर उसके चेहरे पर अटकी रहती थीं। हर बार नीलिमा भारद्वाज मुसकराहटों के हल्के वक्फे के बाद एक भटके के साथ कहती थी, "प्रेज़ेंट, मिस!" उसके बाद दो-तीन नाम और लेकर मिस मैथ्यू रजिस्टर बन्द कर देती थी, फिर खोल लेती थी, और रोल-काल नये सिरे से शुरू हो जाती थी—विभूति श्रीवास्तव··· मंगल तनेजा···।

छह-सात दिन पहले तक मंगल तनेजा के बाद जो नाम आता था, वह था··· शिवजीत सचदेव। मिस मैथ्यू बिना रुके सब नाम बोलती जाती थी। वह बिना सोचे जवाब दे देता था, "प्रेज़ेंट।" मगर उस दिन पहली बार मिस मैथ्यू ने शिव-

साथ उन लोगो का किसी बात पर झगडा हो रहा है। झगड़े मे बार-बार उसका नाम आ जाता है। झगडने वालो मे एक आदमी वह भी है···पापा। उस आदमी से वह दिल्ली जाने पर मिला करता है। वह उसे अपने साथ घुमाने ले जाता है। कभी चिड़ियाघर मे, कभी शकर के गुडियाघर मे। उसे किताबे और खिलौने खरीद देता है। फिर उसे 'चाचा जी' के घर के बाहर छोड जाता है जहा वह ममी के साथ ठहरा होता है। पर आज वह आदमी पहली बार मसूरी मे उनके यहा आया है। ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा है। कह रहा है वह शिवजीत को अपने साथ लेकर जाएगा। वह नहीं समझ पा रहा कि इसमे एतराज़ की कौन-सी बात है। पापा के साथ जाएंगे, तो शंकर का गुड़ियाघर देखेंगे। पनीर के सैंडविच खाएंगे। आंटी पूछेगी, "तू अब किस क्लास मे पढता है, शिवजीत?" फिर कहेगी, "देखो, यह लड़का किस तरह शरमाता है!" वह पापा का हाथ कसकर और आटी का हाथ हल्के से थामे हुए दोनो के बीच चलता रहेगा। फिर उसके जन्म-दिन पर एक पार्सल आएगा। कैमरा या ट्राजिस्टर। ममी कहेगी, "रख दे अल-मारी मे। तेरे पास अपने वाला ट्राजिस्टर तो है ही।" वह ममी के सामने ममी वाला ट्रांजिस्टर चलाएगा। सोम मामा का लाया हुआ। ममी की गैरहाज़िरी मे कभी-कभी पापा वाला ट्राजिस्टर भी चला लेगा। ··मगर ममी तो कह रही है, वह पापा के साथ जाने ही नही देगी। कभी नही जाने देगी। तो अब पापा के साथ जाकर शकर का गुड़ियाघर कभी नहीं देखेंगे?···

···ममी तमतमाई हुई बाहर से आती है। "तुझसे कहा था बाहर जाकर खेल, तू अब तक यही क्यो खड़ा है?" उसका खेलने को मन नही है। कहीं जाने को मन नहीं है। लेकिन वह चुपचाप बाहर चला जाएगा। एक कबूतर पकड़कर उसके पैर मे डोर बाधने की कोशिश करेगा। फिर उस कबूतर को उडाएगा। घर लौटने तक झगड़ा करने वाले जा चुके होगे। घर खाली होगा। ममी भी नही होगी। चादराम दूध का गिलास लिए-लिए उसके पीछे-पीछे घूमेगा। "दूध पी ले, बाबा!" लेकिन वह दूध नही पिएगा। ट्राजिस्टर सुनेगा। चादराम दूध पिलाने की जिद करेगा, तो वह हाथ मारकर दूध का गिलास उलटा देगा। चादराम उसे चपत दिखाएगा। वह उसके हाथ पर काट लेगा। फिर ट्राजिस्टर बगल मे लिए मुह ढककर बिस्तर पर पड़ जाएगा ··

…एक बन्द कमरा। अबराल अंकल के घर का। अबरोल आंटी के मरने के बाद से ममी हर शाम वहीं बिताती हैं। बन्द दरवाज़े पर बाहर से खट्-खट्। "ममी, दरवाजा क्यों नहीं खोलतीं ?" अन्दर से अबरोल अंकल की आवाज़, "अभी बाहर खेल शिवजीत, तेरी ममी सो गई है कुछ देर के लिए।" वह चुप-चाप खेलता रहेगा, मगर दरवाज़े के पास से नहीं हटेगा। ममी सो रही है, तो भी दरवाजा बन्द क्यों है ? वह तो रोज़ ममी के पास सोता है…रात को। फिर इस समय क्यों वह ममी के पास नहीं जा सकता ? थोड़ी देर में दरवाज़ा खुलेगा। अबरोल अंकल मुसकराते हुए बाहर आकर ठण्डे हाथों से उसके गाल सहलाएंगे। "आ रही है अभी तेरी ममी बाहर।" थोड़ी देर में ममी बाहर आएगी। पर ऐसे नहीं जैसे नींद से उठी हो। होंठों पर ताजा लिपस्टिक। बाल जैसे अभी-अभी बांधे गए। अबरोल अंकल से कहेगी, "इसके लिए वे लाने हैं जाकर…बाइनाक्यु-लर्ज़ किसी दिन… कितने दिनों से मांग रहा है। इसके पास हैं पहले…वहां से आए हुए…पर पांच-छह साल के बच्चों लायक हैं वे…।" अबरोल अंकल लाएंगे। उसके गालों को फिर ठण्डे हाथों से छुएंगे। कहेंगे, "मैं लेता आऊंगा किसी दिन बाज़ार जाऊंगा, तो…।"

…मसाने पर पेशाब का दबाव। पर अभी पेशाब रोके रहेगा। घर आकर करेगा। यह घर अबरोल अंकल का है। उनके बच्चों में से कोई देख लेगा कि उसने हार्निया की पेटी बांध रखी है, तो ? ममी कब से कहती हैं, "तेरा आपरेशन बम्बई चलकर कराना है।" पापा भी हर बार दिल्ली में कहते थे "तेरा आपरेशन बम्बई चलकर कराएंगे… तू लिखना मुझे किन दिनों बम्बई चल सकता है दस-पंद्रह रोज़ के लिए।" वह कहता था, "आप ममी को लिखकर पूछ लें।" पर पापा ममी को नहीं लिखते थे। ममी पापा को नहीं लिखती थी। सिर्फ पेटी बांधती हुई वह देती थी, "तेरा आपरेशन कराना है कभी चलकर।" स्कूल में भी वह इसी वजह से पेशाब रोके रहता था। अगर लड़कों ने उसकी पेटी देख ली, तो ? घर आते ही दौड़ता हुआ बाथ-रूम जाता था। अब भी ममी जल्दी चलें, तो किसी तरह घर पहुंचते ही बाथरूम की तरफ भागेगा। कहीं ऐसा न हो कि बाथ-रूम के बाहर ही पेशाब निकल जाए जैसा कि उस दिन हुआ था।…कहीं यह भी न हो कि ममी पा… अबरोल अंकल को वह सब बताने लगें। "इसके पापा के ताया जी को भी थी य… बीमारी, चाचा को भी…खानदानी है इन लोगों में यह।" मगर ममी ने शुरू…

कहनी यह बात, तो वह जबर्दस्ती उसका मुंह बन्द कर देगा। किसीके सामने यह बात नहीं कहने देगा···

···लदता सामान। चादराम चेहरा लटकाए कुलियों-मजदूरों से धीमे स्वर में बात करता हुआ। "हम तो कब से देख रहे थे। अब खुलेआम हो गया है बस।" चादराम की नौकरी छुड़ा दी गई है। वह कल-परसों अपने गांव चला जाएगा। वे लोग भी अब स्कूल के क्वार्टर में नहीं रहेंगे। अबरोल अंकल के घर चले जाएंगे। "अबरोल अंकल नहीं···अब से वे पापा हैं तुम्हारे।" उसे पहले से अन्देशा है कि उससे ऐसा कहने को कहा जाएगा। अरुण कपूर दो-तीन दिन से स्कूल में उससे पूछ रहा था, सब लड़के-लड़कियों के सामने, "क्यों शिवजीत, डाक्टर अबरोल, एम० बी०बी०एस० क्या लगते हैं तुम्हारे?" उस दिन से ही जिस दिन से ममी ने स्कूल से छुट्टी ले रखी थी। एक दिन उसने कहा था, "अंकल लगते हैं वे मेरे।" दूसरे दिन दांत पिचका दिए थे। तीसरे दिन रो दिया था। अब उनका सामान भी अबरोल अंकल के घर चला जाएगा, तो अरुण स्कूल में फिर पूछेगा। इस बार वह उसके बाल नोच लेगा···

···दो बिस्तर। एक पर ममी। दूसरे पर अबरोल अंकल। "अबरोल अंकल नहीं···" उसके और अबरोल अंकल के बीच ममी एक बीमार की तरह लेटी है। उसे तेज पेशाब लग रहा है, पर उसका कहने का हौसला नहीं हो रहा। अबरोल अंकल अपनी तरफ से बहुत आहिस्ता बात कर रहे हैं, शब्दों को गड़मड़ाते हुए— "अब भी साथ सोया करेगा यह? इतना बड़ा हो गया है, इसे अकेले सोना चाहिए। और भी तो चारों बच्चे अलग कमरे में सोते हैं।" ममी भी उतने ही आहिस्ता बात करती है। "इसे नहीं सुला सकती अकेला। रात को सोए-सोए अब भी इसका पेशाब निकल जाता है।" वह अपना पेशाब और भी कसकर रोक लेता है। अब चाहे जो हो जाए, वह रात को बिस्तर में पेशाब नहीं निकलने देगा। कल से खुद ही ममी से कहकर दूसरे कमरे में सो जाएगा। अबरोल अंकल और उनके बच्चों के सामने कभी पेटी नहीं बदलेगा। ममी से कह देगा कि किसी-को उसकी पेटी की बात न बतलाए···

···जीना। उसे ऊपर से नीचे चले आने को कहा गया है। पर वह आधा जीना उतरकर वहीं बैठ गया है। ममी स्कूल से एक चिट्ठी लेकर आई है। ऐसे हो रही है जैसे चार मील की रिले-रेस दौड़कर आई हो। अबरोल अंकल ने

डा० हरदेव अबरोल !

"शिवजीत।" मिस मैथ्यू उसके पास आ गई थी। सामने का पन्ना तब तक उसने पेंसिल से स्याह कर दिया था। लकीरों में उलझी लकीरें। अधिकाश अक्षरों की गोलाइयां और तिकोन अन्दर से भरे हुए। "यह क्या कर रहे हो तुम?'

उसने मिस मैथ्यू की तरफ देखा। सज़ा से डरती नजर से मुंह से कुछ कहना चाहा, मगर कह नहीं सका। सिर्फ देखता रहा।

"तुम्हारी तबीयत ठीक है?"

"नहीं मिस।"

"तो तुमने कहा क्यों नहीं? अच्छा है तुम आधे दिन की छुट्टी लेकर घर चले आओ।"

सारी क्लास उसकी तरफ देख रही थी। वह किताबें समेटता उठ खडा हुआ।

"जाऊं मिस?"

"हां। कल तबीयत ठीक हो, तो आना। नहीं तो अर्जी भेज देना।"

वह क्लास-रूम से बाहर निकल आया। बाहर बरामदे या लॉन में कोई नहीं था···सिवा उन मजदूरों के जो नई इमारत के लिए लकड़ी चीर रहे थे। सी सा सी-सा सी-सा। स्कूल इतना सुनसान और अकेला उसे कभी नहीं लगा था। वह बरामदे में उतरकर लॉन में आ गया। लकड़ी का बुरादा चारों तरफ बिखर रहा था। वह उसमें पैरों के गाढ़े-गाढ़े निशान बनाता कुछ कदम चलता रहा। फिर स्कूल की घण्टी के पास रुककर पीतल की चकती में अपना अक्स देखता रहा। जब स्कूल के लोहे के गेट की गोल नाली उसने पार की, तो सामने चढ़ाई की सड़क उसे बहुत ठण्डी महसूस हुई। घर वहां से दो फर्लांग पर था, फिर भी उसे लगा कि अभी काफी लम्बा रास्ता चलकर उसे जाना है। सात-आठ दिन से वह उस रास्ते से आ रहा था, पर अब तक उसे इसकी आदत नहीं हुई थी। पहले स्कूल के सिरहाने अहाते में ही उसका क्वार्टर था, स्कूल से निकलते ही वहां पहुंच जाता था। ममी उससे डेढ़ घण्टा बाद स्कूल से आती थी, इसलिए सारा घर उसे अपना अकेले का लगता था। चादराम भी सिर्फ उसीके लिए वहां होता था। मगर इन दिनों ममी स्कूल आती ही नहीं थीं और उसके घर पहुंचने से पहले ही नीना और मीना वहां

आ चुकी होती थी। सुखदेव और वसन्त एक घण्टा बाद आते थे। घर काफी खुला था···मगर वह वहां पहुंचते ही किताबें पटककर ट्रांजिस्टर बजाना शुरू नहीं कर सकता था। ममी का कहना था, उसे स्कूल से आकर बच्चों के साथ 'खेलना' चाहिए और वह 'खेलने' की उदासी लिए हुए ही घर में दाखिल होता था। यूं भी अग्रवाल अंकल की डिस्पेंसरी घर के साथ लगी होने से वहां किसी भी समय शोर नहीं मचाया जा सकता था।

अपने को घसीटकर सड़क के एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक ले जाते हुए उसे फिर अपने मसाने पर सख्त दबाव महसूस होने लगा। स्कूल से निकलते हुए उसे याद नहीं रहा था कि वहां से पेशाब करके घर के लिए चलना है। घर में पेटी का पता सभीको था। सुखदेव दो-एक बार उसकी पेटी छूकर देख भी चुका था मगर अपने घर की तरह अधनंगा होकर पेटी उघाड़े वह एक दिन भी वहां बाथ-रूम की तरफ नहीं भागा था। जहां वह था, वहां से अगले खम्भे तक पहुंचते-पहुंचते उसके लिए चलना मुश्किल होने लगा। स्कूल चार-पांच खम्भे पीछे रह गया था, घर चार-पांच खम्भे आगे था। एक बार उसने सोचा कि जल्दी से घर की तरफ दौड़ने लगे। फिर सोचा कि दौड़कर वापस स्कूल चला जाए। मगर वह किसी भी तरफ न जाकर वहीं रुक गया। घर में ममी इस समय अकेली ही होंगी, पर उससे पूछ-ताछ करेंगी कि वह स्कूल से इतनी जल्दी क्यों चला आया है। स्कूल में तब तक घण्टी बज जाएगी और मिस मंप्पू की नज़र उनके क्लास-रूम से निक-लते हुए उसपर पड़ गई, तो वह पूछेंगी कि वह अब तक वहीं क्यों घूम रहा है। उसने पहाड़ी की तरफ मुंह करके वहीं खड़े खड़े नेकर के बटन खोल लिए। मसाने का दबाव हल्का होने के साथ ही उसे फिर अपने आपरेशन का ध्यान हो आया। ···उसने सोचा और अपनी ही आपरेशन करा दिया होता···

प्रथम प्रकाशित संग्रह

इंसान के खंडहर [१९५०]		
इंसान के खंडहर [खंडहर]	एक आलोचना	दोराहा
धुंधला दीप	लक्ष्यहीन	वासना की छाया में
मरुस्थल	सीमाएं	मिट्टी के रंग
उर्मिल जीवन	कवल	
नये बादल [१९५७]		
नये बादल	उसकी रोटी	सौदा
मलबे का मालिक	मंदी	फटा हुआ जूता
अपरिचित	हवा-मुर्ग	भूखे
शिकार	उलझते धागे	छोटी-सी चीज़
एक पंगयुक्त ट्रैजेडी		
जानवर और जानवर [१९५८]		
काला रोज़गार [रोज़गार]	आर्द्रा	मिस्टर भाटिया
परमात्मा का कुत्ता	आखिरी सामान	क्लेम
मवाली	जानवर और जानवर	
एक और ज़िंदगी [१९६१]		
सुहागिनें	गुनाह बेलज्जत	मिस पाल
आदमी और दीवार	जीनियस	वारिस
हक हलाल	बस-स्टैंड की एक रात	एक और ज़िंदगी
फौलाद का आकाश [१९६६]		
ग्लास टैंक	सोया हुआ शहर	जंगला
पांचवें माले का फ्लैट	फौलाद का आकाश	पहचान
सेफ्टी पिन	ज़ख्म	एक ठहरा हुआ चाकू

• • •